शोध-प्रविधि

शोध-प्रविधि

डॉ विनयमोहन शर्मा

।। प्रारम्भिक ।।

देश के प्राय सभी विश्वविद्यालयों मे शोध काय हो रहा है। मानविकी तथा विनान विषयों म प्रतिवष शोध प्रबन्ध प्रस्तुत होते हैं। उनकी सख्या प्रतिवर्ष बढती जा रही है। यदि सचमुच प्रत्येक विषय में नये नये तथ्य प्रकाश मे आ रहे हो या प्रकाशित तथ्यो की ऐसी नयी व्याख्या हो रही हो, जिससे ज्ञान की अभिवद्धि होती हो तब तो 'प्रबन्धो' की वद्धि अभिनन्दनीय है, पर वास्तविकता यह है कि विश्वविद्यालयो म बहुत सा शोध-काय शोध के लिए नही उपाधि और जीविका का माग प्रशस्त करने के लिए हो रहा है। शोधार्थी विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित समय (दो वष) के भीतर येन केन प्रकारेण 'काय को समाप्त करने का भरसक प्रयत्न करता है। परिणाम यह होता है कि 'काय' में सकलन का भाग अधिक होता है, शोध का कम। अनेक शोधार्थी शोध की प्रविधि से अनभिन रहते हैं और इसी से उनके लेखन म वैज्ञानिकता का अभाव बुरी तरह खटकता है।

काय' को वीयवान बनाने के लिए उपनिषदकार विद्या, श्रद्धा और उपनिषद् की उपस्थिति अनिवाय मानते हैं। इन शब्दो की व्याख्या करते हुए स्वामी श्री प्रत्यगात्मानन्द लिखते हैं—"विद्या का अथ यहाँ प्रयोग पद्धति अथवा 'आट' है। वतमान काल में कोई भी काय सुष्ठु सफलभाव से करने के लिए जो Correct technique (सही प्रविधि) है उसे ही उसका 'आर्ट' कहते हैं। श्रद्धा का अथ है, कार्य के साथ हृदय का योग। कार्य में दद होने का अथ है उसमे सचमुच का interest या रुचि लेना। इसमे आन्तरिकता एकान्तिकता, विश्वास आन हैं और उपनिषद अर्थात् रहस्य अथवा अन्तर्निहित तत्त्व का ज्ञान काय की सफलता और श्रेष्ठता के लिए आवश्यक है।"

जब तक शोध की ठीक प्रविधि का ज्ञान नही होगा, शोधकाय के प्रति श्रद्धा—अटूट लगन—नहीं होगी तब तक शोध विषय का रहस्य उदघाटित नही होगा, क्योंकि उपनिषदकार के शब्दो म 'सत्य' का मुख हिरण्यमय पात्र से ढँका रहता है यानी अज्ञान से आवत्त रहता है, अत इस आवरण को हटाने के लिए शोधार्थी को उसकी प्रविधि से अवगत होना होगा। श्रद्धा के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, (श्रद्धावान लभते ज्ञानम्) ये श्रुति सम्मत आप्त वचन जीवन की प्रत्येक साधना म सहायक होते हैं।

अत शोध विषय के काय में सलग्न होने के पूव शोध विद्या का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। विदेशी विश्वविद्यालयो म तो इनके लिए विशेष परीक्षा

देनी होती है। कतिपय भारतीय विश्वविद्यालयों ने भी पी एच० डी० के लिए पञीकृत होने के पूर्व प्री० पी एच० डी० परीक्षा अनिवार्य कर दी है। यदि एम० ए० में निबन्ध प्रश्नपत्र के विकल्प में शोध प्रविधि का प्रश्नपत्र रख दिया जाय तो प्री० पी-एच० डी० की परीक्षा की आवश्यकता कम हो जायगी या नहीं रह जायेगी। प्रस्तुत पुस्तक किसी पाठ्यक्रम के अनुसार नहीं लिखी गयी। *भोपाल विश्वविद्यालय के कुलगुरु श्री व० सु० कृष्णन् के संरक्षण में जब विश्व*विद्यालय की अनुसन्धान परिषद् की स्थापना हुई तब उन्हीं के सुझाव पर मुझे परिषद में 'शोध प्रविधि' पर कुछ व्याख्यान देने पड़े, जो इस पुस्तक के मुख्य आधार हैं।

इसमें सहायक सन्दर्भ सामग्री के रूप में कुछ परिशिष्ट जोड़े गये हैं। हिन्दी में उपाधिप्राप्त विषयों की सूची भी दी गयी है। वह अद्यतन नहीं हो पायी है। उसके देने का उद्देश्य हिन्दी के शोध विषयों की पुनरावृत्तियों को रोकने में सहायता पहुँचाना है। एक विषय पर एकाधिक शोध-कार्य हो सकते हैं पर एक ही दृष्टिकोण को लेकर नहीं होने चाहिए। यदि किसी ऐसे विषय पर शोध-उपाधि मिल गयी है जो अधूरा है या उस विषय पर नयी जानकारी प्राप्त हुई है तो उस पर पुनः शोधकार्य नये ज्ञान को उद्घाटित करने की दृष्टि से किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक आप एक बार शोधित विषय पर कोई नये तथ्य अथवा नयी व्याख्या प्रस्तुत करने की स्थिति में न हों तब तक पुनः उसी विषय को लेकर 'पुरानी शराब को नयी बोतल' में भरने की उक्ति को चरितार्थ न करें।

प्रस्तुत कृति शोध प्रविधि की निर्देशिका मात्र है। यदि शोधार्थियों को इससे तनिक लाभ हुआ तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा। पुस्तक में शोध प्रक्रिया और शोध प्रविधि एक ही अर्थ में व्यवहृत हुए हैं।

अन्त में अनुसन्धान परिषद के संरक्षक भोपाल विश्वविद्यालय के कुलपति श्री व० सु० कृष्णन, अध्यक्ष डा० भगवतीप्रसाद शुक्ल, सचिव श्री प्रभाकर श्रोत्रिय तथा अन्य सभी सदस्यों का आभारी हूँ जिन्होंने मेरी शोध प्रविधि व्याख्यान-माला आयोजितकर इस पुस्तक के प्रणयन का अवसर दिया। पुस्तक के प्रकाशक श्री मलिक जी ने इसे छापने में जो तत्परता और रुचि प्रदर्शित की, इसके लिए उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ। यदि टंकणकर्त्ता श्री सुरेन्द्रनाथ शुक्ल को उनकी सतर्कता के लिए धन्यवाद न दिया जाय तो सामाजिक अन्याय होगा।

— *विनयमोहन शर्मा*

ई १/१४३ अरेरा कालोनी
भोपाल ६

अनुक्रम

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

परिशिष्ट

प्रथम भाग

1

शोध क्या है ?

शोध, खोज अनुसंधान, अन्वेषण गवेषणा सभी हिन्दी मे पर्यायवाची शब्द हैं। इसी को मराठी मे सशोधन और अग्रेजी म रिसर्च कहते हैं। खोज मे सर्वथा नूतन सृष्टि का नही अज्ञात का ज्ञात करने का ही भाव है। मनुष्य बुद्धिसम्पन्न प्राणी होने के कारण अपनी सचेतावस्था से ही जिज्ञासु रहा है। वह 'अहम' (आत्मा) 'इदम' (सृष्टि या जगत) और 'स' (ब्रह्म परमात्मा) को जानने के लिए पयुत्सुक रहा है। जगत म वह क्यो है ? जगत ही क्या है ? मुझे और जगत को यहा लाने वाला कौन है ? मेरा और जगत् का परस्पर क्या सम्बन्ध है आदि प्रश्न उसे झकझोरते जा रहे हैं। उसकी ज्ञान की पिपासा कभी तृप्त नही हुई। उसकी इसी अतृप्ति ने अनेक भौतिक तथा आध्यात्मिक रहस्यो को तथ्य रूप प्रदान कर मानव की ज्ञान सपदा मे लगातार अभिवृद्धि की है। बहुत-सा ज्ञान सहज इन्द्रियगम्य है और कुछ ऐसा भी है जो सहज इन्द्रियगम्य नही है, परन्तु उसके अस्तित्व को एकदम नकारा भी नही जा सकता। शेक्सपियर के 'हैमलेट नाटक म जब हमलेट का पिता प्रेत-रूप म प्रकट होकर बातें करने लगता है तो हैमलेट के मित्र हारेशियो का सिर घूम जाता है, उसे देखा दृश्य अनदेखा लगता है। कहता है—

"O day and night, but this is wonderous strange" (हे दिन, हे रात, यह है क्या ? यह तो चमत्कारपूर्ण आश्चर्य है।) हमलेट भी प्रेतदर्शन से पहले तो चौंकता है। फिर सँभलकर मित्र को समझाता है—

'And therefore as a stranger give it welcome There are more things in the heaven and earth Horatio than are dreamt of in your philosophy"

(इसलिए इस आश्चय का भी स्वागत करो धरती और आसमान पर एसी अनन्त वस्तुएँ हैं होरेशियो, जिनकी तुम्हारे 'दशन' ने कभी कल्पना भी नही की होगी।) कहने का तात्पय यह है कि अनुसधान के लिए विभिन्न क्षेत्रो म गुजाइश पाई जाती है। जो तथ्य दृष्टि मे ओझल हैं उन्हे भी प्रत्यक्ष

मरन की ओर शोधार्थी संलग्न रहते हैं। प्रेत विद्या का अनुसंधान भी देश विदेश में मौजूद हैं। जब ब्रह्माण्ड के अनेक अदृश्य रहस्यों को अनुसंधानों ने रहस्य नहीं रहने दिया तब मरणोपरान्त जीवन भी कब रहस्य बना रह सकता है ?

उपनिषद्कार कहते हैं—

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्य अपिहितं मुखम

हिरण्यमय पात्र प्रतीकात्मक शब्द है जो माया या अज्ञान का द्योतक है। सत्य अर्थात् ज्ञान अज्ञान के आवरण में छिपा रहता है। उसे निरावरण करने का काय तत्त्वदर्शी (अन्वेषक) का है। वह आप्त-वचन को निष्क्रिय भाव से स्वीकार नहीं करता।

कालिदास कहते हैं—

पुराणमित्येव न साधु सर्वम् न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम,
सत परीक्षान्तरद भजन्ते मूढ़ पर प्रत्ययनेय बुद्धि ।
—मालविकाग्निमित्र

प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री डेविड बाम भी यही कहता है—"नई सृष्टि का अथ यह हुआ कि यह न ही पुराने क्रमों की नकल करती है न ही उनकी मौलिक सच्चाई के विपरीत जाती है। वह पुराने क्रमों की हमारी समझ को नए सन्दर्भों में ढालती है और इसके साथ साथ हमारे ज्ञान के आयाम को विस्तृत करती है।

पौराणिक मान्यता रही है कि चन्द्रलोक में प्राणियों का अस्तित्व है। वज्ञानिकों का विश्वास था कि चन्द्रमा पृथ्वी का अग है, पृथ्वी का आकार चपटा है, पर जिज्ञासु मनुष्य ने प्रचलित मान्यताओं पर विश्वास नहीं किया। वह अपने बुद्धिबल से चन्द्र तक पहुचने के उपकरण आविष्कृत करने में सफल हुआ। अन्तरिक्ष में उडकर चन्द्रलोक में उतरा फिरा वहाँ के उसने पत्थर बटोरे और वहीं से पृथ्वी के दशन किए और पुन पृथ्वी पर लौटकर अपने अनुभवों को प्रकट किया—चन्द्रमा पर जीवसत्ता नहीं है पृथ्वी अडाकृति है।' यात्राओं से कई अज्ञात तथ्य ज्ञात हुए हैं और अभी भी अनेक अज्ञात तथ्यों की खोज जारी है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि खोज एक स्वत प्रवहमान क्रिया है जिसका आदि तो है पर अन्त नहीं है।

इसी प्रकार भारतीय पुराणों के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों की धारणा थी कि वे पडितों के कल्पना विलास मात्र और भोली जनता को धर्मविश्वासी बनाने के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। परन्तु सत्यानुरागी शोधकर्ताओं पर्जीटर आदि

ने उनमे अनेक ऐतिहासिक तथ्य खोजकर उनका महत्त्व प्रतिपादित किया है।[1] अथववेद मे पुराणो को सृष्टि-रचना के ग्रंथ कहा गया है। सायणाचाय ने पुराण का यही अथ किया है। शकराचाय ने भी उपनिषद मे आए 'पुराण' पद का यही अथ किया है। पुराणो की वणन की अपनी शली है जो प्रतीकात्मक है, आलकारिक है। उनमे ऐतिहासिक पात्रो का समावेश कर कथाओ का रूप दिया जाता है। जो पुराणो की शली से परिचित नहीं हैं वे उनमे निहित सत्य को ग्रहण नही कर सकते। वेदो के सम्बन्ध मे भी पाश्चात्यो की भ्रातिपूण धारणा थी परन्तु मेक्समूलर जसे शोधकर्ताओ ने उसमे एक समृद्ध ज्ञान का भण्डार खोज निकाला और आर्य-जाति की विचारगरिमा का उदघाटन किया।

ज्ञान के क्षेत्र मे शोध का कार्य निरन्तर जारी रहता है—शोध ज्ञान की किसी एक सीमा तक पहुचकर रुक नही जाता, वह आगे बढता ही जाता है। विज्ञान के सिद्धान्तो को लोग प्राय शाश्वत मानते रहे हैं। अब यह मान्यता भी खण्डित होने लगी है। वे परिस्थिति विशेष मे भले ही सत्य अथवा अकाट्य रहे हो पर उनकी सत्यता और अकाट्यता सावकालिक सिद्ध नही हो पायी। उदाहरणाथ—पहले अणु को पदार्थ का न्यूनतम अश माना जाता था पर आधुनिक शोध ने परमाणु को उसका न्यूनतम अश सिद्ध किया है। यद्यपि इसे आधुनिक शोध कहा गया है परन्तु भारतीय साख्यकारो ने इसका सदियो पूव अन्वेषण कर लिया था। वे तो परमाणुओ को तन्मात्राओ से निर्मित मानते हैं। अत परमाणु भी पदाथ का सूक्ष्मतम अवयव नही है। परमाणु से सूक्ष्म तन्मात्राएँ हैं जिनका आधुनिक वैज्ञानिक सभवत अनुसधान करें। इसी प्रकार पहले पदाथ (मेटर) और ऊर्जा (इनर्जी) को दो भिन्न तत्त्व माना जाता था, पर अद्यतन आविष्कार ने दोनो को एक ही सिद्ध कर दिया है। आइसटाइन की इस सिद्धि से प्रेरित होकर जमनी के वैज्ञानिक हान और स्टासमान को पदाथ की ऊर्जा मे परिवर्तित कर देने म सफलता प्राप्त हुई। यूरेनियम पदाथ यदि विशेष मात्रा मे एक साथ रख दिए जाएँ तो उसके परमाणु अपने-आप टूटने लगते हैं और इस टूटन से भयकर अग्नि (ऊर्जा) नि सत होती है। एटम बम' बनाने में यही प्रक्रिया काम मे लाई जाती है।

पहले विज्ञानवेत्ता काल को, जिसे भवभूति ने 'निरवधि' कहा है (कालोहि निरवधि विपुला च पृथ्वी), सेकण्ड तक विभाजित कर पाए थे। परन्तु अब नये अनुसधानो के परिणामस्वरूप सेकण्ड भी विभाजित किया जा चुका है।

---

1 देखिए पुसाल्कर का ग्रथ 'स्टडीज इन एपिक्स एण्ड पुराणाज ऑफ इण्डिया'।

सन 1955 की आधुनिक घडी म सेवण्ड को 91931770 भागा म विभाजित किया गया। भारतीय तत्त्वान्वेषी इससे भी सूक्ष्मकाल का विभाजन कर चुके है। शोधकर्ता का काय भूले हुए तथ्य को पुन प्रकाश में लाना है और उसे पूव ज्ञान की शृखला से जोड दना है। प्राचीन काल स ही मनुष्य ने सृष्टि के जड चेतन तत्त्वो के सम्ब ध म जो खोज की है वह साहित्य दशन, ज्योतिष, विज्ञान आदि शास्त्रो की उपलब्धि बन गई है। मन का स्वभाव ही मनन करना है। इसी स्वभाव क कारण वह कभी ज्ञात तथ्या का समथन करता है, कभी उनकी नई व्याख्या करता है और इस प्रकार ज्ञान को अद्यतन बनाए रखता है। भलीभाति व्याख्यासहित परिकल्पना या समस्या का हल करन की व्यवस्थित तथा तटस्थ प्रक्रिया का नाम ही शोध है।

प्राचीन काल से ही शोध होता रहा है। प्रत्येक युग म नए तथ्य नए विचार आविष्कृत हुए हा, यह बात नही है परन्तु पुराने विचारो को नवीन रूप देने की क्रिया निश्चय होती रही है। ज्ञात तथ्य की युगानुरूप व्याख्या भी शोध का अग माना जाता है। विज्ञान का सृजनशील विकल्प तभी सभव है जब हम अब तक की जानी हुई मौलिक समानताओ तथा असमानताओ क अथ की सीमित प्रकृति को समझ लें।—तब मन पुराने बधना से मुक्त होकर सावधान और शीघ्र ग्राहक बन जाता है जिससे नए क्रमो की खोज कर सके जिससे विचारों तथा अवधारणाओ की नई बनावटों को ज म दे सके ।

(मतान्तर मे प्रो० वाम)

बादरायण के ब्रह्मसूत्रो की शकराचाय रामानुजाचाय, निम्बार्काचाय, मध्वाचाय, वल्लभाचाय आदि न अपने मतो के अनुकूल व्याख्या की जिसम उनकी मौलिक सूझबूझ के दशन होते हैं।

महर्षि पतञ्जलि न कात्यायन के वार्तिको पर भाष्य लिखकर जा नवीन उदभावनाएँ की हैं वे आज भी विद्वानो मे समादृत हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी को हृदयग्राह्य करने के लिए महर्षि के भाष्य का निर्विवाद महत्त्व है। भरत के नाट्यशास्त्र म रस निष्पत्ति के सूत्र—विभावानुभावव्यभिचारिसयोगात रस निष्पत्ति की व्याख्या करने म उनके परवर्ती आचार्यों ने जो श्रम किया उसकी मीमासा, न्याय तथा साख्य आदि से प्रभावित जो व्याख्या की, वह क्या शोध का अग नही है? प्राचीन आचाय या तो स्वतत्र ग्रथ रचना करत थे या अपने पूववर्ती आचार्यों के प्रधान मता पर वार्तिक भाष्य आदि लिखकर उनका नया अथ प्रतिपादित करते थे। वार्तिक मे उक्त अनुक्त, दुरुक्त पर चिन्तन मनन किया जाता है। एस अनेक उदाहरण दिए जा सकते ह जिनम आचार्यों न अपने पूववर्ती आचार्यों क ज्ञान म नया अथ भरकर उसे युगानुरूप बनान का प्रयत्न किया है। तात्पय यह है कि शोध नए तथ्या की खोज ही

नहीं उनकी तर्कसम्मत व्याख्या भी है।

यूरोप में अरस्तू ने निगमन तर्क प्रणाली से निर्णायक तथ्य प्रस्तुत करने का उपक्रम किया। इस पद्धति में पूर्वमान्य सिद्धान्त को प्रधान आधार मान लिया जाता है। अनुमानित विश्वास को विशिष्ट उदाहरण द्वारा पुष्ट कर निष्कर्ष निकाला जाता है। जैसे—

प्रधान आधार-वाक्य	देवपुरुष अप्रतिम होते हैं
गौण आधार-वाक्य	राम देवपुरुष हैं।
निर्णय	अतः राम अप्रतिम हैं।

यूरोप में तर्क की इस पद्धति ने अनुसंधान में वैज्ञानिक प्रक्रिया को जन्म दिया है। भारतीय नैयायिक की तर्क-पद्धति में अनुमान को स्पष्ट करने के लिए तीन नहीं पाँच वाक्यों का प्रयोग होता है। जैसे—

राम अप्रतिम हैं—	प्रतिज्ञा
क्योंकि वे देवपुरुष हैं—	हेतु
सभी देवपुरुष अप्रतिम होते हैं—	*जैसे कृष्ण, बलराम, बुद्ध, ईसा*
राम भी देवपुरुष हैं	उपनय
अतः वे अप्रतिम हैं—	निगमन

यूरोप में बाद के तार्किकों को अनुभव हुआ कि शोध की प्रथम निगमन प्रणाली निर्दोष नहीं है। इसमें पूर्व निर्धारित विश्वास या मान्यता को लेकर अग्रसर होना पड़ता है। अतः बेकन आदि चिन्तकों ने प्रत्यक्ष निरीक्षणजन्य अनुभव को प्रमुखता प्रदान कर अनुसंधेय तथ्य की ओर अग्रसर होने की विधि पुरस्सर की। इसमें विशेष से सामान्य तथ्य तक पहुँचने की क्रिया निहित है। इसे Inductive method of reasoning (तर्क की आगमन प्रणाली) कहा जाता है। इस पद्धति को पूर्व उदाहरण से इस प्रकार समझाया जा सकता है—राम अप्रतिम हैं क्योंकि उनके कृत्य देवपुरुष के समान हैं। (पर वेदान्ती *और मीमांसक प्रथम तीन अवयवों को ही पर्याप्त मानते हैं)*। अतः देवपुरुष अप्रतिम होते हैं।

पर यह पद्धति भी सर्वथा निर्भ्रान्त और वैज्ञानिक नहीं जान पड़ी। बेकन परिकल्पना की स्थापना के ही विरुद्ध है जिसे ठीक नहीं समझा गया। क्योंकि शोध का कोई ध्येय-लक्ष्य निर्धारित किए बिना शोधार्थी अंधकार में ही भटकता रहता है। हाँ इस बात का ध्यान अवश्य रहे कि येनकेनप्रकारेण परिकल्पना को सिद्ध करने का दुराग्रह न हो। बेकन की आगमन पद्धति की आलोचना करते हुए लाराबी ने लिखा है—

"यदि कोई यों ही तथ्यों को बटोरना मात्र चाहता हो तो बात दूसरी है। ज्ञान का अन्वेषी वस्तुओं को निरुद्देश्य देखकर शान्त नहीं रह सकता उसे

उन्हें सोद्देश्य देखना ही चाहिए, अर्थात् उसे किसी परिकल्पना के साथ उनका निरीक्षण-परीक्षण करना चाहिए।

आइन्स्टीन ने भी आगमन पद्धति का विरोध किया है।

डार्विन द्वारा इन दोनों पद्धतियों का समन्वय किया गया है। इस समन्वित पद्धति में शोधार्थी किसी प्राक्कल्पना (Hypothesis) को लेकर चलता है और ज्यों-ज्यों तथ्य एकत्र होते जाते हैं, उसका अनुमानित तथ्य या तो सिद्ध हो जाता है या असिद्ध। यदि असिद्ध हो जाता है तो वह पुन नव प्राक्कल्पना का आधार लेकर तथ्यों का संकलन करता है और उनके आधार पर किसी विशेष निष्कर्ष पर पहुँचता है। इसे स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। मान लीजिए, आपको तुलसी की दार्शनिकता पर शोध-कार्य करना है। आप पहले अपनी समस्या को समझने का प्रयास करते हैं। दार्शनिकता का अर्थ निश्चित करते हैं। फिर तुलसी का ब्रह्म, जगत् और आत्मा के सम्बन्ध म क्या विश्वास है, इसे जानने का प्रयत्न करते हैं। आपके मन मे जिज्ञासा होती है—क्या तुलसी ब्रह्म की सत्ता म विश्वास करते हैं? यदि करते हैं तो उसका क्या स्वरूप निर्धारित करते हैं? ब्रह्म के स्वरूप के सम्बन्ध म उनकी क्या मान्यताए हैं—उसका मानव की आत्मा और जगत् से पूववर्ती दार्शनिकों ने क्या सम्बन्ध माना है? आपको अध्ययन से ज्ञात हो जाता है कि तुलसी के पूव मुख्य रूप से य मान्यताएँ प्रचलित थी कि (१) ब्रह्म को सत्य और जगत को माया (असत्य) और आत्मा को ही ब्रह्म का रूप माना गया है। (२) ब्रह्म को सत्य, जगत् को भी सत्य और आत्मा को ब्रह्म का अंश माना गया है और ब्रह्म की सत्ता सचराचर म व्याप्त प्रतिपादित की गई है। अब आपके सामने समस्या है कि तुलसी को किस मत का सिद्ध किया जाए? मान लीजिए आप शोधकार्य के पूव यह मानकर चलते हैं कि तुलसी शांकर मतावलम्बी हैं अर्थात् ब्रह्म को सत्य और जगत् को माया मानते हैं। यह आपकी अभी प्राक्कल्पना ही है। इसी प्राक्कल्पना के आधार पर आप तुलसी साहित्य से ब्रह्म और जगत् सम्बन्धी उदाहरण एकत्र करते हैं। व्यवस्थित रूप से आप उनका विश्लेषण कर किसी निष्कर्ष पर पहुचते हैं। अन्त मे आप अपनी प्राक्कल्पना का या तो समर्थन पाते हैं या विरोध। परिणामत आपको अपने प्रधान आधार तथ्य म उचित संशोधन करना पडता है और तथ्यों से जो निष्कर्ष निकलता है उसे ही स्वीकारना पडता है। इसे ही आगमन और निगमन प्रणाली की मिश्र-पद्धति कहते हैं। यही वर्तमान वैज्ञानिक शोध पद्धति कहलाती है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

2

वैज्ञानिक अध्ययन के सोपान

ज्ञान को प्राप्त करने के लिए जिस विशिष्ट पद्धति या प्रविधि का उपयोग किया जाता है उसे ही वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं। स्टुआर्ट का कथन है कि विज्ञान, **पद्धति में निहित है विषय-वस्तु में नहीं।**

'विषय-वस्तु अर्थात अनुसंधेय वस्तु भिन्न भिन्न हो सकती हैं पर उनका ज्ञान प्राप्त करने की प्रविधि का एक ही मार्ग है—वह है विज्ञान का।

वैज्ञानिक अध्ययन के विकास को लुंडबर्ग ने चार सोपानों में व्यक्त किया है—

पहला सोपान है—उद्देश्यहीन निरीक्षण। मनुष्य अपने दैनिक जीवन में अनेक घटनाओं दृश्यों का निरुद्देश्य निरीक्षण करता रहता है। निरीक्षण करते-करते सहसा कोई सत्य उसके मस्तिष्क में कौंध जाता है। न्यूटन को पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का ज्ञान निरुद्देश्य निरीक्षण से ही हुआ था। उसने देखा वृक्ष से सेब नीचे गिरता है, ऊपर फेंकने पर चीजें नीचे ही गिरती हैं। सहसा उसके मस्तिष्क में यह तथ्य कौंध उठा कि पृथ्वी में कोई ऐसी शक्ति है जो ऊपर के पदार्थों को नीचे आकर्षित करती है।

दूसरा सोपान व्यवस्थित अनुसंधान का है। मनुष्य की बुद्धि जैसे-जैसे परिपक्व होती गई, वह तार्किक बनती गई। उसने ज्ञान को प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित रूप से प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। सोद्देश्य क्रमबद्ध अध्ययन से जो निष्कर्ष निकला वही वैज्ञानिक नियम बन गया।

तृतीय सोपान वह है जिसमें अध्येता विषय को निश्चित कर लेता है पर उस पर अध्ययन करने के लिए **कोई विशिष्ट परिकल्पना का निर्वाचन नहीं** करता। परिणामतः अध्ययन की कोई दिशा निर्धारित नहीं हो पाती। इस स्थिति में उसे कामचलाऊ परिकल्पना से काम लेना पड़ता है और ज्यों ज्यों तथ्य एकत्र होते जाते हैं वह उस कामचलाऊ परिकल्पना को या तो त्याग देता है या उसमें सुधार कर लेता है। अध्ययन का यह तृतीय सोपान अधिक विश्वसनीय सिद्ध हुआ।

चतुर्थ सोपान में अध्ययन कामचलाऊ परिकल्पना या नई परिकल्पना के साथ प्रारम्भ नहीं होता। इससे पूर्व निर्धारित नियम या सिद्धान्त की परीक्षा मात्र की जाती है। परीक्षा के लिए नये-नये प्रयोग किए जाते हैं।

3

शोध की वैज्ञानिक प्रणाली

यह युग विज्ञान का है। अत प्रत्येक समस्यामूलक तथ्य की परीक्षा वैज्ञानिक ढंग से की जानी है। वैज्ञानिक प्रणाली आजकल के शब्दों में वैज्ञानिक निरीक्षण, विभाजन और तथ्यों की व्याख्या है। आजकल की इस व्याख्या में वैज्ञानिक निरीक्षण शब्द साभिप्राय है। यों हम दृष्टिपथ में आनेवाली प्रत्येक वस्तु को सहज भाव से देखते ही रहते हैं पर जब किसी वस्तु को विशेष प्रयोजन से देखते हैं तब वह देखना वैज्ञानिक निरीक्षण कहलाता है। उदाहरणार्थ आप जब किसी कविता को सहज ही न पढ़कर उसमें निहित काव्य-सौन्दर्य का विश्लेषण करने लगते हैं तब आप वैज्ञानिक अध्ययन की ओर प्रवृत्त होते हैं। आप उसके भाव पक्ष और उसके कला-पक्ष, भाषा, छन्द अलंकार आदि की परीक्षा करते हैं।

तात्पर्य यह कि वैज्ञानिक निरीक्षण सोद्देश्य होता है।

कार्ल पियर्सन ने वैज्ञानिक प्रणाली के निम्न लक्षण प्रस्तुत किए हैं—

(1) तथ्यों का सतर्कतापूर्वक सम्यक विभाजन और क्रमानुसार उनके परस्पर सम्बन्ध का संयोजन तथा

(2) सर्जनात्मक कल्पना के आधार पर वैज्ञानिक नियम का निर्धारण।

वैज्ञानिक पद्धति से जो निष्कर्ष निकाला जाए जो नियम निर्धारित किया जाए वह सर्वदेशीय और सार्वकालिक हो। यह बात यद्यपि कही जाती है पर यह प्रत्येक वैज्ञानिक नियम के सम्बन्ध में सत्य सिद्ध नहीं होती। परिस्थिति और कतिपय शर्तों के साथ ही वैज्ञानिक नियमों की अकाट्यता सिद्ध हो सकती है। शोधकर्ताओं के नये आविष्कारों ने विज्ञान जगत की मान्यताओं को खण्डित कर दिया है, जिनका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं।

शुद्ध विज्ञान में जब नियम या निष्कर्ष सर्वकालिक एवं सर्वपारिस्थिक नहीं रह जाते तब साहित्य शिक्षा, समाज, विज्ञान आदि मानविकी विषयों में निष्कर्ष जहां मानवचिन्तन युगानुरूप तथ्यों को व्याख्यायित करता है कैसे अकाट्य या शाश्वत रह सकते हैं? एक सामान्य उदाहरण हिन्दी साहित्य के कवि केशवदास का ही लीजिए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी रचनाओं में कुछ अंश उद्धृत कर उन्हें हृदयहीन और अकवि घोषित किया। बहुत समय तक केशव का मूल्यांकन आचार्य शुक्ल के निष्कर्षों के आधार पर होता रहा पर अब केशव की उन्हीं पंक्तियों को, जिनके आधार पर केशव आचार्य द्वारा अकवि, निर्णीत

हुए थे, नया अथ दिया जा रहा है और उनसे केशव सहृदय कवि निर्धारित किए जा रहे हैं। साहित्य के निष्कष युगानुरूप निष्कष और व्याख्यानुसार परिवर्तित होते रहते हैं। ज्ञान नव नव अनुभवो के कारण विस्तृत या व्याख्यायित होता जाता है।

4

शोध-प्रकार

(1) उद्देश्य की दृष्टि से

शोध दो प्रकार के हो सकते हैं। एक प्रकार वह है जिसका उद्देश्य केवल वैज्ञानिक पद्धति से अनुमानित परिकल्पना के आधार पर किसी तथ्य या सिद्धान्त का शोध करना है। इसे शुद्ध शोध (Pure Research) कहते हैं। उदाहरणाथ आइस्टाइन के पदाथ और ऊर्जा को अभिन्न सिद्ध करने के अनुसन्धान को हम शुद्ध शोध के अन्तगत रख सकते हैं। दूसरा प्रकार वह है जिसका उद्देश्य शुद्ध शोध के परिणाम को व्यावहारिक बनाने की दिशा मे प्रयत्न करना होता है। इसे व्यावहारिक या कायशील शोध (Practical or Action Research) की सज्ञा दी जाती है। आइन्स्टाइन के शुद्ध शोध को आधार बनाकर एटम बम बनाने का जो शोध काय किया गया वह व्यावहारिक या कायशील शोध के अन्तगत आएगा।

(2) काल की दृष्टि से

(1) ऐतिहासिक शोध मे मानव के विविध दिशाओ जसे साहित्य, सस्कृति, भाषा, विज्ञान आदि मे होनेवाले भूतकालिक प्रयत्नो, कार्यो का वैज्ञानिक पद्धति से अन्वेषण होता है, जिससे अतीत को वतमान परिप्रेक्ष्य मे समझने की सुविधा हो सके।

(2) व्याख्यात्मक या वणनात्मक शोध मे मानव जीवन की सभी वतमान समस्याओ पर चाहे वे साहित्य, समाज विज्ञान या शुद्ध विज्ञान से सम्बन्ध रखती हो, अनुसन्धान किया जाता है। वणनात्मक शोध मे तथ्यो का सकलन मात्र न होकर उनकी व्याख्या होती है और मूल्याकन होता है। सामाजिक विज्ञानियो ने इस प्रकार के शोध का निश्चित पारिभाषिक शब्द स्थिर नही किया। कोई इसे 'वणनात्मक शोध' और कोई 'सर्वे शोध' कहते हैं। पहला

नामकरण भी बहुत एवायक नही है। प्राय सभी प्रकार के शोधो म वर्णन या व्याख्या होती है। गवेंशोध विशय प्रकार की शोध-समस्या के रूप म कार्यान्वित होता है।

सर्वेक्षण या सर्वे शोध—इसका प्रयोग शिक्षा तथा समाजशास्त्रीय विषयों म होता है। इसम समाज से सम्बद्ध तथ्या का निरीक्षण और सकलन किया जाता है। उसका सामान्य सांख्यिकी से सम्बन्ध रहता है। यह निश्चित समस्या का सावधानीपूर्ण विश्लेषणसहित तर्कपूर्ण हल प्रस्तुत करता है। इस प्रणाली के अन्तगत, शैक्षणीय समाजशास्त्रीय अर्थशास्त्रीय, भाषा विज्ञानीय आदि सर्वे-कार्य सम्पन्न होता है। The Social survey is in brief a method of analysis in scientific, and orderly form and for defined purposes of a given social situation or problem or population —Morse

(3) प्रयोगात्मक शोध स सावधानीपूर्वक नियन्त्रित परिस्थिति मे किसी समस्या का क्या परिणाम निकलेगा, यह ज्ञात होता है। यह विज्ञान की प्रयोगशाला की प्राचीन पद्धति है। यह प्रविधि अन्य प्रकार के शोधो से अधिक जटिल है। इसकी उपयोगिता सुव्यवस्थित और नियन्त्रित प्रयोगशालाओ म ही साधित हो पाती है। इसे शालीय कक्षाओ म भी कि हा सीमाओ के अन्तगत प्रयुक्त किया जा सकता है।

यदि दो स्थितियाँ प्रत्येक दशा मे समान हो और उनमे से एक म एक तत्त्व को जोड दिया जाए पर दूसरे म न जोडा जाए तो उस स्थिति से जो अन्तर आएगा, वह जोडे हुए तत्त्व का परिणाम होगा। अथवा दो समान स्थितियो म से केवल एक से एक तत्त्व घटा दिया जाए तो घटाने से जो अन्तर आएगा वह उस घटाए हुए तत्त्व का परिणाम होगा।

एकल विभेद नियम (ला आफ सिंगल वेरीएशन) प्रयोगशाला मे होने वाले प्रयोगो का प्राय आधार बनता है। राबट बायल ने इसी प्रविधि के आधार पर गसो का नियम निर्धारित किया। मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला मे भी इस नियम के आधार पर प्रयोग किए जाते हैं। वद्यकीय शोध (मेडिकल रिसर्च) भी इसी नियम के आधार पर किए जाते हैं। द्वितीय महायुद्ध के समय वद्यकीय शोध-कमीशन ने कुछ ऐसी औषधियो की परीक्षा करनी चाही जो समुद्र की बीमारी मे लाभप्रद हो। छह महीने तक डॉ० डेविड टेलर ने 20 हजार सनिको पर दवाइयो का प्रयोग किया। ये सनिक स्वेच्छ रूप मे एक लाख सनिको म से चुने गए थे। कई औषधियो का उपयोग किया गया। अन्त मे बेलोडीना और बारबीटुरेट से तैयार की गई औषधियाँ अधिक प्रभावकारी सिद्ध पाई गइ। प्रयोग करते समय कुछ सनिको को कोई भी

औषधि नही दी गई और कुछ को दी गई । जिन्हे नही दी गई वे बीमार पडे और जिन्हें दी गई, वे बीमारी से बचे रहे ।

यहाँ 'लॉ आफ सिंगल वेरीएशन' (एकल तत्त्व विभेद नियम) का आधार लिया गया । शिक्षा मे छात्रा की बौद्धिक क्षमता आदि की जाँच के समय भी इसी नियम को आधार बनाया जाता है । इस नियम को जॉन स्टुअट मिल ने प्रतिपादित किया था । इस नियम को और स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम एक और उदाहरण नीचे दे रहे हैं—

मान लीजिए क-ख-ग व्यक्तियो के एक समूह के भोजन-तत्त्व हैं। और द-ख-ग व्यक्तियो के दूसरे समूह के भोजन-तत्त्व हैं ।

दोनो समूहो के व्यक्तियो के वजन और स्वास्थ्य मे कोई अन्तर नहीं है । डाक्टरी परीक्षा से यह निश्चित हो चुका है । वजन बढ़ाने के लिए हम गाय के दूध तत्त्व 'द' की क्षमता का प्रयोग करना चाहते हैं। हमने दूसरे समूह के व्यक्तियों को गाय का दूध 'द' तत्त्व दिया और पहले समूह के व्यक्तियो को उससे वचित रखा । पन्द्रह दिन के पश्चात हमने डॉक्टरी जाँच म पाया कि प्रथम समूह के व्यक्तियो के वजन म कोई वृद्धि नही हुई पर द्वितीय समूह के व्यक्तियो का वजन बढा । हमन दोनों समूहो के व्यक्तियो के भोजन म पदार्थों और मिकदारो मे कोई अन्तर नही होने दिया था । केवल दूसरे समूह के भोज्य पदार्थों म गाय का दूध जोड दिया था । अत सिद्ध हुआ—'दूध भारवधक तत्त्व' है । दूसरे समूह के भोजन मे एक तत्त्व बढाया गया और पहले समूह के भोजन में एक तत्त्व की कमी रखी गई । फल अभिवृद्ध-तत्त्व का कारण है ।

अब यदि दोनो समान स्थितियो के समूहो मे प्रत्येक मे 'द तत्त्व जोड दिया जाए तो दोनो समूहो का परिणाम एक होगा जिसे हम 'व कहेंगे ।

क+ख+द=व

क+ख+द=व

अत 'द कार्य का परिणाम 'व' हुआ ।

यहाँ यह स्मरण रहे कि यह कारण-काय-सम्बन्ध तभी सिद्ध होगा जब हम परिस्थितियो पर समान रूप से नियत्रण रख सकें। इस नियम की कठिनाई यही है कि परिस्थितियो की समान स्थिति बनाए रखना सहज साध्य नही है ।

इसी नियम को हम एक आलेख द्वारा प्रस्तुत कर रहे हैं—

परिस्थिति के तत्त्व त

क	ख	द

—परिणाम—व

इसलिए सिद्ध हुआ कि द का परिणाम व होता है।

5

शोध और समीक्षा

क्या शोध समीक्षा है ? क्या समीक्षा शोध नहीं है ? दोनों प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' और 'नहीं' में दिए जा सकते हैं। शोध, *समीक्षा नहीं है पर उसमें समीक्षा* का अंश रहता है। जब तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है तब उनका मूल्यांकन भी किया जाता है। इस दृष्टि से 'शोध' में समीक्षा का समावेश अवश्यम्भावी हो जाता है। इसके विपरीत 'समीक्षा' में 'शोध' का अंश आवश्यक नहीं है। जहाँ शोध में तटस्थता की अनिवार्यता होती है वहाँ समीक्षा में तटस्थता अनिवार्य नहीं होती। समीक्षा में समीक्षक का समीक्ष्य कृति के प्रति तटस्थ भाव धारण करना आवश्यक नहीं है। समीक्षा आत्मपरक अधिक होती है। प्रभाववादी समीक्षा तो स्वयं एक 'साहित्य' का रूप धारण कर लेती है। मार्क्सवादी समीक्षा में मार्क्स के सिद्धान्त कृति के मूल्यांकन की कसौटी बनते हैं। समीक्षक का 'वाद' प्राय कृति की समीक्षा का आधार बनता है। आत्मपरकता शुद्ध शोध में प्राय बाधक बनती है, बनी है।

'शोध' का प्रस्तुतीकरण विशिष्ट प्रविधि के अनुरूप होता है। समीक्षा के प्रस्तुतीकरण की कोई निर्दिष्ट प्रविधि नहीं होती। प्रत्येक समीक्षक अपने ढंग से उसे प्रस्तुत करने में स्वतन्त्र है।

शोध के प्रस्तुतीकरण की प्रविधि विषय के अनुरूप भिन्नता धारण करती है। साहित्य की समीक्षा के प्रस्तुतीकरण में समीक्षक की अपनी रुचि प्रधान होती है उसका माध्यम गद्य या पद्य बन सकता है। समीक्षा सूत्र का रूप धारण कर सकती है। यथा—

1 सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केशवदास
2 उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थ गौरवम् दण्डिनः पदलालित्यम् माघे सन्ति त्रयोगुणाः)

अथवा दीध भाप्य (व्याख्या) आदि का रूप धारण कर सकती है। शोध पद्य मे नही, गद्य मे ही तकपूण विश्लेपणात्मक निष्कष सहित प्रस्तुत होता है। अत शोध और समीक्षा के अपने भिन्न भिन्न क्षेत्र हैं। निष्कप यह है कि शोध समीक्षासहित होता है, परन्तु समीक्षा का शोधसहित होना बिल्कुल आवश्यक नहीं है।

6

शोध का अधिकारी कौन है ?

प्रश्न उठता है कि जितने छात्र विश्वविद्यालय क शोध-अध्यादश के नियमा के अ तगत पजीकृत होते हैं क्या वे सब सचमुच शोध के अधिकारी हैं ? शोधकर्ता मे जिन गुणा की आवश्यकता अपेक्षित है उन्हें नीचे चचित किया जाता है—

(1) जिज्ञासा—ज्ञान के प्रति अटूट औत्सुक्य। शोध, ज्ञान उपलब्धि के प्रयोजन से किया जाता है। जिस व्यक्ति म तथ्यो को जानने की तीव्र व्याकुलता हो वही शुद्ध अनुसधित्सु हो सकता है। ब्रह्म सूत्रकार बादरायण 'ब्रह्म' के रहस्य को समझने का प्रारम्भ ही 'जिज्ञासा' से करत हैं—"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'। वे नय दशन का सूत्रपात न कर श्रुति वर्णित ब्रह्म का ही अनुसधान करना चाहते हैं। परन्तु जो, पक्वान (Cooked Matter) सेवन का आदी है अर्थात पूववर्ती विचारको के विचारा का चवण-मात्र करना जानता है उसे शोध का अधिकारी नही माना जा सकता। ऊपर हमने कुछ विद्वानो के कार्यों का उल्लेख किया है कि उन्होंने ज्ञान की प्राप्ति के लिए कितनी लगन और तत्परता प्रदर्शित की। ज्ञान का जिज्ञासु विपरीत परिस्थितियो पर भी विजय प्राप्त करता है और अपने लक्ष्य तक पहुचे बिना विश्राम नही लेता। हमारे कई छात्र पजीकृत होने के बाद महीनो मौन रहते हैं। पूछने पर कोई न कोई अपरिहाय आपत्ति का वणन करने लगते हैं। कुछ समय बाद मिलने पर कोई दूसरी अडचन आ जाने का उदास मुद्रा म उल्लेख करते हैं। और इस तरह महीनो-वर्षों उनका शोधकाय चलता रहता है परन्तु कागज़ पर नही उतरता। शोध की पहली शर्त विषय के प्रति जिज्ञासा है। इसके अभाव म शोधकाय हो ही नहा सकता।

(2) गृहीत विषय का ज्ञान—जो विषय लिया जाए उसका उसे ज्ञान होना चाहिए। आज तो स्थिति यह है कि छात्र निर्देशक के पास पहुचता है। कहता है, मुझे कोई विषय दीजिए। जब उससे पूछा जाता है कि कहो तुम किस विषय पर काय कर सकते हो, तो चट कह देता है, 'साहब, आप जो भी विषय देंगे उस पर मैं मनोयोग के साथ काय करूँगा। इसका अर्थ यह है कि वह किसी एक विषय के प्रति आस्थावान नही है। जब तक शोधार्थी का कोई अपना विषय नही होता तब तक उसकी कार्य मे रुचि नही बढ सकती। जिस विषय को वह अपने अध्ययन के लिए चुन ले उस विषय पर कितना कार्य हो चुका है इसका उसे ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। तभी वह जान सकेगा कि उस विषय की ऐसी कौन सी दिशा है जो अछूती रह गई है और जिस पर वह अपने काय से उसकी पूर्ति कर सकता है। विषय पर उपलब्ध सामग्री का ज्ञान न होने से ही पिष्टपेषण होता है।

(3) क्षमता—गृहीत विषय पर कार्य करने की क्षमता आवश्यक है। एक बार एक प्रौढ शोधार्थी मेरे पास आए। कहने लगे, मैं विश्व आलोचना साहित्य पर काय करना चाहता हूँ। यह तो आप मानेंगे ही कि इस विषय पर किसी ने हिन्दी मे काय नही किया है। मैंने कहा, हिन्दी मे किसी को काय करने का साहस ही नही हुआ। आपका साहस प्रशसनीय है पर क्या मैं जान सकता हूँ कि आप विश्व के साहित्य से कितने परिचित हैं ? क्या आप भारतीय भाषाओ के साहित्य से भी परिचित हैं ? उन्होंने बिना झिझक के कहा—"आप चिन्ता न कीजिए। मैं परिचित हो जाऊँगा। यद्यपि मैं ससार की भाषाएँ नही जानता परन्तु अग्रेजी म प्राय प्रत्येक भाषाओ के आलोचनात्मक इतिहास मौजूद हैं। मैं पढकर काम चला लूगा। बस आप मेहरबानी करके मेरा पजीयन करा दीजिए।' मैंने उनसे अधिक बहस नहीं की। अपनी असमर्थता दिखाकर उनसे छुट्टी ले ली।

शोधार्थी का विषय लेते समय अपनी क्षमता और अपनी सीमाओ का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। जिस भाषा का उसे ज्ञान नहीं है उस भाषा के साहित्य पर अनुवाद के सहारे शोधकाय नही हो सकता। किसी एक विषय का अनुसधान अन्य विषयों के ज्ञान की भी अपेक्षा रखता है। उदाहरणार्थ यदि तुलसी की दार्शनिकता पर कोई काय करना चाहता है तो उसके लिए तुलसी साहित्य का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं। उसे भारतीय दशन का भी ज्ञान प्राप्त करना होगा। तुलसीकालीन धार्मिक और राजनीतिक इतिहास से भी परिचित होना पडेगा। तुलसी की भाषा अवधी के परिचय के बिना तुलसी का सांगोपाग अध्ययन सभव नहीं है। 'कबीर' पर शोधकाय सिद्ध और नाथ साहित्य के अध्ययन के बिना अधूरा ही रहेगा। और इसके लिए अपभ्रश का

सामाय तथा तत्कालीन धार्मिक स्थिति का अच्छा नान आवश्यक है। अत शोधार्थी का कार्य एक भापा और एक विषय के नान से सम्पन्न नही होता। साहित्य और विशेपकर विनान के शोधार्थी को प्रबन्ध की भापा के अतिरिक्त जमन, रूसी या फ्रेंच भापा का प्रमाणपत्र आवश्यक होता है। हिन्दी के शोध कर्ता के लिए हिन्दी के अतिरिक्त सस्कृत और एक या दो भापाओ का नान भी आवश्यक है। प्राय देखा गया है कि शोधार्थी सस्कृत अक लिखने मे भी प्रमाद कर जाते हैं। प्रथम, द्वितीय तृतीय, चतुय पचम तक तो ठीक-ठीक लिख जाते हैं परन्तु जब पचम की तुक पर पष्ठम लिखा जाता है तो शोधार्थी को उपाधि प्रदान करने की सस्तुति क्षोभजनक होती है। प्रबन्ध मे अनानवश वतनिया की अशुद्धियाँ पाई जाती हैं जिन्हें टकण दोप कहकर क्षमा कर दिया जाता है।

(4) काय-सलग्नता—शोधार्थी को अपये कार्य म जुटे रहने की धुन हानी चाहिए। सामग्री उपलब्ध करने मे बाधाएँ आती हैं। कभी-कभी अपमानित भी होना पडता है। लोग सन्देह की दष्टि से भी देखने लगते हैं। शारीरिक कष्ट भोगने तक की नौबत आ सकती है। अत प्रत्येक परिस्थिति से जूझने के लिए शोधार्थी को तत्पर रहना चाहिए और अपने काय मे लेपमात्र भी ढिलाई न आन देनी चाहिए। कई विद्वाना ने अस्वस्थावस्था म भी अपने गृहीत काय को करने मे प्रमाद नहीं किया।

(5) कृतज्ञता—शाधकर्ता को अपने काय-सपादन मे कई व्यक्तिया तथा सस्थाआ का सहयोग प्राप्त करना पडता है। अत उसके स्वभाव मे कृतनता का भाव हाना चाहिए अयथा वह किसी से उदारतापूवक दुलभ सामग्री प्राप्त नही कर पाएगा। एक प्रसिद्ध पुरातत्वन न मुझस कहा था कि मैंने नगण्य से नगण्य सहायता का आभार माना है और इससे मरे काय मे बडी सहायता मिली है। डा० ग्रियसन म यह गुण प्रचुर माना मे था। यही कारण है कि वे भापा और साहित्य के अध्ययन तथा शोध-काय को सरलता से सम्पादित कर सके। शाध का काय एक व्यक्ति द्वारा साध्य नही होता, उसमे अनेक व्यक्तिया की सहायता अपेक्षित होती है। Research is a team work (शोध टोली-काय है)। यदि शाधकर्ता अपने सहयोगिया के प्रति उदार तथा कृतन नही रहता तो उसे उनसे पर्याप्त और उचित सहायता नही मिलती। कुछ शोधकर्ता जिनसे सामग्री प्राप्त करत हैं उनका नामोल्लेख तक नही करते। इसस उनकी असस्कारिता तो प्रकट होती ही है उनका भावी 'काय' भी कष्टसाध्य हो जाता है।

(6) लेखन-क्षमता—शोधार्थी की जब तक अपनी भापा पर समुचित अधिकार नही होगा उसका प्रबन्ध' शिथिल ही रह जाएगा। भापा शथिल्य

उसकी गरिमा को घटा देता है। विषय ज्ञान के रहते हुए भी भाषा दोष के कारण कई बार 'प्रबन्ध' अस्वीकृत कर दिए जाते है। साहित्य की अन्य विधाओं—नाटक, कहानी, उपन्यास म प्रसगानुसार भाषा दोष गुण माना जाता है। नाटक मे अशिक्षित असस्कारी पात्र प्राञ्जल भाषा बोलकर 'नाटक म अस्वाभाविकता का दोष उत्पन्न कर देता है। इसके विपरीत उसकी भाषा मे 'च्युति सस्कृति' उसका गुण माना जाता है। प्रबन्ध की भाषा अखबारी भाषा नही हो सकती। वह प्रौढ और विषयानुरूपिणी पारिभाषिक सम्पन्न होनी चाहिए।

(7) वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तटस्थता—शोधकर्ता को अपने विषय-प्रतिपादन मे तटस्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता होती है। भावुक और स्वमताग्रही अच्छा शोधकर्ता नही हो सकता। तटस्थता से ही सत्य का सधान सम्भव है। उदाहरण के लिए यदि आप तुलसी के जन्म-स्थान का निर्धारण करना चाहते है तो आपको इस विषय पर विद्वानो के विभिन्न मतो की तटस्थ दृष्टि से परीक्षा करनी होगी। कुछ विद्वान उनका जन्म स्थान सोरो कुछ तारी, कुछ राजापुर और कुछ अयोध्या प्रतिपादित करते हैं। यदि आप स्थान विशेष के प्रति पूर्वाग्रही हैं तो आप भिन्न भिन्न मतो की निष्पक्ष परीक्षा नही कर पाएँगे। इसीलिए शोधकर्ता के लिए तटस्थव्रती होना अनिवाय शर्त है। अंग्रेज़ी मुहावरे म कहा जा सकता है कि "Researcher must possess scientific frame of mind

वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाला व्यक्ति सहज श्रद्धालु नही होता वह प्रत्यक तथ्य को तर्क की कसौटी पर कसन के उपरान्त किसी निष्कर्ष पर पहुचता है। इसका यह अथ भी नही कि वह दूसरो के अनुभवो स लाभ नही उठाता। उठाता है पर तर्क की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही। तटस्थता और वस्तुपरकता (objectivity) वैज्ञानिक प्रणाली के अध्ययन करने वाले शोधार्थी के अनिवाय गुण हैं। ग्रीन के शब्दो म 'Objectivity is the willingness and ability to examine evidence dispassionately' (Sociology p 2)

(वस्तुपरकता साक्ष्य (प्रमाण) की तटस्थ भाव से परीक्षण करने की इच्छा तथा योग्यता म निहित रहती है।)

7

शोधकार्य—एक दृष्टि

भारत म अंग्रेजो के आगमन के पश्चात् से आधुनिक शोध प्रणाली के आधार पर शोध-काय प्रारम्भ हुआ। लाड कजन ने पुरातत्त्व सामग्री की रक्षा का कानून बनाकर हमारी प्राचीन सस्कृति के पुनरुद्धार मे प्रशमनीय योगदान दिया। कलकत्ते मे सर विलियम जोन्स के प्रयत्न स रायल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना हुई जिसके शोध जरनल के माध्यम से भारतीय भाषा, साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व आदि के सम्बन्ध म जो शोधकाय प्रकाश म आया है वह अत्यन्त महत्त्व का है। स्वय जोन्स सस्कृत के विद्वान थे। उन्होंने यूरोप के भाषाशास्त्रियो का ध्यान सस्कृत की ओर आकृष्ट कर यह निर्दिष्ट करने का प्रयत्न किया कि सस्कृत का सम्बन्ध ग्रीक और लेटिन से अधिक है और इस तरह उन्होंने आर्य भाषा के मूल स्रोत की ओर शोधकार्य करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया। जोन्स के पूव सन 1588 मे फ्लोरेंस के फिलिप्पो सारसेट्टी न सस्कृत ईरानी, ग्रीक लेटिन तथा अन्य यूरोपीय भाषाओ की समानताओ की चर्चा की थी। फिलिप्पो व्यापारी था—विभिन्न देशो म भ्रमण कर उसने उनम भाषा की समानता परिलक्षित की थी। आज भाषाविज्ञानी यूरोपीय भाषाओं का विस्तारपूवक अध्ययन कर इस निष्कष पर पहुचे हैं कि इन सबका स्रोत कोई एक मूल भाषा अवश्य रही है जिसका काल निर्धारित करना कठिन है। फिर भी उन्होंने उस आदि भाषा की कुछ ध्वनियों का बहुत-कुछ अनुमान लगा लिया है।

रूस के बारानिकोव्ह ने महाभारत तथा रामचरितमानस का रूसी मे अत्यन्त श्रम और लगन से रूपान्तर किया है। उनकी रामचरितमानस पर लिखी भूमिका भी उनके शोधपरक चिन्तन को प्रकट करती है। रूस के ही एक विद्वान ने कुछ वष पूव हिन्दी भाषा का व्याकरण लिखा है जिसमे उनकी हिन्दी भाषा की वतमान प्रवृत्ति का सूक्ष्म अध्ययन मिलता है। जमन सस्कृतज्ञ विन्टरनित्स ने भारतीय साहित्य का जो इतिहास लिखा है वह भारतीय विद्वानो के लिए भी सदभ-ग्रथ बन गया है। विन्टरनित्स म शोधक की सच्ची भावना थी। जहा व सन्देह मे पड गए वहा उन्होंने अपने कथन के पूव सम्भवत (Probably) का प्रयोग किया है। वे लिखत हैं जब तक मुझे कोई तथ्य निश्चित रूप से ज्ञात न हो जाए तब तक तो मुझे अपने कथन के साथ इसी शब्द का प्रयोग करना पडेगा। भारत म प्राचीन साहित्य के लिए उन्हें कई

स्थलो पर अनुमानित परिकल्पना के साथ काय प्रारम्भ करना पडा है। जब तक अपने कथन के समथन म असदिग्ध प्रमाण प्राप्त न हो सकें तब तक अनुसधाता को दढतापूवक कोई निष्कष पाठको पर नही थोपना चाहिए। प्रो० मेकडोनाल्ड (ऑक्सफोड विश्वविद्यालय के वदिक साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान) के ग्रथो का भारतीय प्राच्यविद्या प्रेमियो म बडा आदर है। डा० कीथ प्रो० लुईस आदि यूरोपीय विद्वानो के भारतीय भाषा और साहित्य के क्षेत्र म शोधित काय से विदेशी विद्वानो की ज्ञान पिपासा इतनी तीव्र है कि ये हमारे धम तथा दशनो पर भी बडे श्रम स अनुसधान कर उनका इतिहास लिखते हैं। प्रो० हाप्किन्स फकुहार आदि का इस दिशा म बहुमूल्य योगदान है।

फादर थामस स्टिफेन्सन ने जो अक्तूबर 1579 मे गोवा आए थे सस्कृत, मराठी और कोकणी का अध्ययन कर कोकणी भाषा का प्रथम व्याकरण लिखा। यह एक यूरोपीय द्वारा रचित भारतीय भाषा का प्रथम व्याकरण था। फादर जोहान अन्स्ट (Ernst) प्रथम यूरोपीय थ जिन्होने सस्कृत भाषा का व्याकरण लिखा। बाप और ग्रिम ने सस्कृत, ग्रीक, लेटिन और अन्य भाषाओ का तुलनात्मक व्याकरण लिखा। रुसी विद्वान बोहॅलिक (Bohtlingk) और राथ ने सेंटपीटसबग म सस्कृत और जमन-कोश कई जिल्दो मे सन 1852 1875 के मध्य प्रकाशित किया।

विल्सन ने ऋग्वेद और विष्णु पुराण का विस्तृत टिप्पणियो सहित प्रकाशन किया। बाद म इन्होंने भारतीय रगमच पर भी पुस्तक लिखी। मक्समूलर ने ब्रिटेन म बठे बैठे ही सन 1849 से 1874 तक पच्चीस वर्षों मे ऋग्वेद का प्रामाणिक सस्करण तयार किया। उन्होने अपन सहयोगियो क साथ Sacred Books of the East सीरीज म 49 ग्रथ प्रकाशित किए। प्रिंसप ने अशोक शिलालेखो की लिपि पढ़ने मे सफलता प्राप्त की। कनिंघम ने पुरातत्त्व क क्षेत्र म महत्त्वपूण काय किया। हडप्पा और मोहनजोदडो के उत्खनन स नई सभ्यता प्रकाश म आई है पर अभी उसपर अधिक स अधिक शोधकाय होना शेष है। प्रश्न यह है कि क्या वह सभ्यता वदिक सभ्यता से सम्बद्ध है या किसी और सभ्यता का अवशेष है ? सीलो आदि क अक्षरो की लिपि भी शाध्य है।

वदिक साहित्य पर लुडविग और गाल्डनग का काय महत्त्वपूण है। (सन 1893 1975)

अग्रजी (ब्रिटिश) शासन म प्रारम्भिक काल म कतिपय विद्याप्रेमी आई० सी० एस० अधिकारी अपन विभिन्न शासकीय कार्यों क अतिरिक्त भी भारतीय भाषा और सस्कृति का गहन अध्ययन करत रहे हैं जिसम भारतीय विद्वानो का भी प्रेरणा मिलती रही है। जाज ग्रियसन क नाम स हिन्दी साहित्य और भाषा के अध्येता अपरिचित नहीं हैं। उनक गुरु ज० एडकिन्स

बडे मेधावी थे। उन्होंने पाणिनि की अष्टाध्यायी कठस्थ कर ली थी और उसका उसी प्रकार पाठ कर सकते थे जिस प्रकार कोई भारतीय पडित कर सकता था। सस्कृत व्याकरण की कठिन से कठिन गुत्थियों वे उचित सूत्रों के उद्धरणों के साथ सुलझा देते थे। सस्कृत के अतिरिक्त फ्रेंच, लेटिन, अग्रेजी, रूसी, चीनी, हिन्दी, तमिल, तलगु आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। भाषाओं के साथ साथ वनस्पति विज्ञान मे उनकी रुचि थी। वे वाद्ययत्र वायलिन के भी अच्छे वादक थे। खेलों मे मुगदर छडी, जुजुत्सु मे उनकी गति थी। एटकिन्सन्स के समान ही परिश्रमी शोधकर्ता पेरिस के प्रो० सलवेल लेवी थे जो अनेक यूरोपीय भाषाओं के अतिरिक्त चीनी, तिब्बती, पाली, सस्कृत आदि भाषाओं के आचार्य थे। दिन रात शोध मे जुटे रहते थे। रूसी सस्कृत पडित श्चेवर्स्की के सम्बन्ध मे राहुलजी का कहना था कि सस्कृत तथा दर्शन का इतना प्रकाण्ड पडित मैंने नही देखा। जर्मन प्रोफेसर रम्यूडर भारतीय पुरालिपि के महान विद्वान थे। धर्मकीर्ति के न्यायबिन्दु और प्रमाणवार्तिक पर उनका अध्ययन गहन था। ग्रियर्सन स्वय कई भाषाओं के गम्भीर विद्वान थे, पर हिन्दी के प्रति उनकी विशेष रुचि थी। भाषाशास्त्र के अध्ययन का परिणाम उनका भारतीय भाषा सर्वेक्षण ग्रथ है जो कई भागों मे प्रकाशित हुआ है। जिस समय हिन्दी के विद्वान् शोध के प्रति उदासीन थे उस समय ग्रियर्सन, हानले, ग्रीव्ज बीम्स, टर्नर टॉड तेसीतोरी आदि ने हिन्दी भाषा और साहित्य पर महत्त्वपूर्ण शोध-ग्रथ प्रकाशित किए। इन्हीं विद्वानों ने लोक भाषा के अध्ययन की भी नींव डाली। उसे ग्रामस्तर से ऊपर उठाकर नगरमच पर आसीन किया। ग्रियर्सन ने बिहार के ग्राम्य जीवन की शब्दावली मे लोकगीत मुहावरे आदि सकलित किए। उनके ग्रन्थ के आधार पर हिन्दी मे लोक साहित्य का अध्ययन आगे बढा। बीम्स ने भारतीय आर्य भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण लिखकर हिन्दी को प्रमुख भाषा सिद्ध करने का प्रयास किया।

बीम्स आई० सी० एस० थे। वे बगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि क्षेत्रों मे रहे और वहाँ प्रचलित प्रत्येक भाषा की प्रवृत्ति का सूक्ष्म अध्ययन करते रहे। मराठी और गुजराती के सम्बन्ध मे उनकी जानकारी सीमित थी। अत इन भाषाओं के सम्बन्ध मे उन्होंने अधिकारपूर्वक निष्कर्ष नही निकाले हैं। अत एक ईमानदार शोधकर्ता के नाते उन्होंने यह स्वीकार भी किया है। हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास लिखने का श्रेय भी विदेशी विद्वान तासी को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विद्वानों के कार्य विश्वविद्यालयों के बाहर स्वय स्फूर्त शोध प्रवृत्ति के परिणाम हैं। विश्वविद्यालयों मे भी शोधकार्य का प्रारम्भ पाश्चात्य विद्वानों द्वारा हुआ है। सर्वप्रथम सन 1911 मे फ्लोरेंस विश्वविद्यालय से एल० पी०

तेस्सी तोरी ने रामचरितमानस और रामायण का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। सन् 1918 में लन्दन विश्वविद्यालय ने डॉ० कारपेन्टर को तुलसीदास दर्शन पर शोध उपाधि प्रदान की। सन् 1931 में लन्दन से एफ० ई० के० ने कबीर और उनके अनुयायी पर उपाधि प्राप्त की। सन् 1950 में धर्म मन्दिर (बाम्बीन) ने तुलसी के रामचरितमानस के स्रोत और रचनाक्रम पर डी० लिट० की उपाधि प्राप्त की। इससे पता चलता है कि उस समय तक कि विदेशों पर सामान्य विद्वान् न थे। उन्हीं विदेशी भाषाओं में तुलसीदास की साहित्यिक महत्ता प्रतिपादित की थी। लन्दन विश्वविद्यालय ने प्रथम भारतीय मोहिउद्दीन कादरी को हिन्दुस्तानी ध्वनियों पर शोध उपाधि प्रदान की। धीरे-धीरे ... के दूसरे-तीसरे दशक में भारतीय विश्वविद्यालय भी इस दिशा में जागृत हुए और उनमें शोधकार्य को महत्त्व दिया जाने लगा। हिन्दी भाषा के क्षेत्र में सर्वप्रथम डॉ० बाबूराम सक्सेना को अवधी के विकास पर और साहित्यिक क्षेत्र में काशी विश्वविद्यालय से डॉ० बड़थ्वाल को हिन्दी निर्गुण संत साहित्य पर डी० लिट० की उपाधि प्रदान की गई। इस सम्बन्ध में एक रोचक प्रसंग का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। जिस समय डॉ० बड़थ्वाल ने शोध विषय के पंजीकरण का आवेदन प्रस्तुत किया उस समय प्रो० वाइसचांसलर श्री आनन्द शंकर ध्रुव ने जो स्वयं संस्कृत-गुजराती के प्रकाण्ड विद्वान् थे, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष बाबू श्यामसुन्दरदास से पूछा कि "क्या हिन्दी साहित्य में भी शोधकार्य हो सकता है?" बाबू श्यामसुन्दरदास को उन्हें हिन्दी साहित्य की गरिमा और विपुलता से अवगत कराने में भारी श्रम उठाना पड़ा। जब प्रबन्ध प्रस्तुत हो गया तो विश्वविद्यालय ने उनके परीक्षक हिन्दी के प्रसिद्ध विदेशी विद्वान नियुक्त किए जिनमें डॉ० ग्रियर्सन भी एक थे।

विदेशी परीक्षकों ने बड़थ्वाल के प्रबन्ध की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। बड़थ्वाल का प्रबन्ध सन् 1934 में स्वीकृत हुआ। तब से देश में प्रायः उन सभी विश्वविद्यालयों में, जहाँ हिन्दी विभाग हैं शोधकार्य हो रहा है और खूब हो रहा है। परन्तु उसमें शुद्ध शोध सामग्री कितनी है इस पर प्रश्न का चिह्न लगाया जा सकता है। सन 1963 तक लगभग 542 प्रबन्ध स्वीकृत हो चुके थे। गत आठ वर्षों में यह संख्या दुगुनी तिगुनी हो गई हो तो आश्चर्य नहीं है। शोधार्थियों की संख्या वृद्धि का मुख्य कारण देश की बेकारी कहा जा सकता है क्योंकि बहुधा देखा गया है कि ज्यों ही शोधकर्ता कहीं सेवारत हो जाता है वह शोधकार्य से तुरन्त विरत हो जाता है। वास्तविकता यह है कि विश्वविद्यालयों में जो शोधकार्य हो रहा है वह शुद्ध शोध की दृष्टि से कम, अधिकारी उपाधि की दृष्टि से अधिक हो रहा है।

डॉ० सत्येन्द्र ने सन् 1959 तक प्रकाशित शोध प्रबन्धों की एक तालिका

बनाई है जिससे ज्ञात होता है कि अनेक विषयों पर दुहरा तिहरा कार्य हुआ है। उदाहरणार्थ (1) महाकाव्य में नायक, नारी, नाट्यतथ्य, परम्परा, (2) हिन्दी साहित्य की आलोचना का उद्भव और विकास, (3) गद्य-काव्य (4) नाटक साहित्य का इतिहास, (5) प्रेमचन्द (6) भारतेन्दु-युगीन नाट्य साहित्य, (7) कामायनी (8) मैथिलीशरण गुप्त, (9) वृन्दावनलाल वर्मा, (10) रामचन्द्र शुक्ल, (11) जयशंकर प्रसाद, (12) म० प्र० द्विवेदी, (13) गांधीवाद आदि।

उपर्युक्त दुहराहट तिहराहट के विषय 1959 तक ही सीमित नहीं रहे, वे आज भी विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत पंजीकृत होते जा रहे हैं। कई विश्वविद्यालय अनुसंधेय विषयों की कमी और शोध छात्रों की संख्या वृद्धि देखकर जीवित साहित्यकारों पर भी शोधकार्य को प्रोत्साहन दे रहे हैं। मेरी सम्मति में जीवित साहित्यकारों पर शोध तटस्थ भाव से प्रायः सम्भव नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त उन पर पत्र-पत्रिकाओं में प्राय आलोचनात्मक लेख, समीक्षात्मक स्वतन्त्र पुस्तक आदि का प्रकाशन बराबर होता रहता है। अतः शोधार्थी अपने प्रबन्ध में कुछ नया नहीं दे पाता। आधुनिक साहित्य पर विश्वविद्यालय के बाहर अत्यधिक कार्य हो चुका है। फिर भी शोध विद्यार्थी आज के साहित्य पर ही कार्य करना चाहता है। अतः शीर्षक बदल-बदलकर पुराने विषय नए बनाये जा रहे हैं। तब दुहराहट, तिहराहट चौराहट क्या नहीं होगी? निराला के महावसान के पश्चात अनेक विश्वविद्यालयों ने निराला पर शोध उपाधि प्रदान कर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। मैंने स्वयं ऐसे प्रबन्ध देखे हैं जिनमें निराला के साहित्य पर गहन अध्ययन की अपेक्षा श्रद्धांजलि की मात्रा ही प्रमुख थी। मुक्तिबोध जीवितावस्था में परम उपेक्षित कवि रहे, पर ज्योंही दिल्ली के इण्डियन इंस्टीटयूट ऑफ मेडिकल साइन्स में स्वर्गवासी हुए, वे महान कवि घोषित किये जाने लगे (मैं यहां उनकी कवि प्रतिभा का अस्वीकार नहीं कर रहा हूं। मैं विषयों की दुहराहट के प्रसंग में उनकी चर्चा कर रहा हूं) और एकाधिक विश्वविद्यालय में शोध विषय के रूप में सम्मानित हुए।

यह बात नहीं है कि किसी की कृति या प्रवृत्ति पर विभिन्न दृष्टिकोणों से चिन्तन नहीं किया जा सकता। पर आपत्ति वहीं होती है जहां शोधार्थी का न कोई अपना चिन्तन होता है और न शोध की दृष्टि। पूर्ववर्ती आलोचकों के विचार कभी उद्धरण चिह्नों सहित और कभी चिह्नों रहित प्रबन्ध के पृष्ठों में उतरते आते हैं। पूर्ववर्ती विचारकों के विचार उद्धृत करने में भी कोई आपत्ति नहीं है पर उन विचारों पर शोधकर्ता की *अपनी अनुकूल प्रतिकूल टिप्पणी भी* तो होनी चाहिए।

8
वैज्ञानिक शोध के सोपान

(1) विषय और उसके क्षेत्र की परिकल्पना।
(2) सामग्री संचयन।
(3) सामग्री का विश्लेषण।
(4) निष्कर्ष।

किसी परिकल्पना को लेकर ही विषय के शोधकार्य में प्रवृत्त हुआ जाता है।

शोध विषय किस सिद्धान्त तक पहुँचने के लिए लिया जा रहा है इसकी स्पष्ट धारणा बनाए बिना शोधकार्य में प्रवृत्त होना अंधेरे में भटकने के समान है। प्रारम्भ में हमारी धारणा अस्पष्ट धुंधली भी हो सकती है। परिकल्पना सिद्धान्त के तौर पर नहीं की जाती, वह तो सिद्धान्त को स्थापित करने के लिए अनुमानित की जाती है। वह सिद्धान्त या निष्कर्ष तक पहुँचने का साधन मात्र है। अनुसंधेय विषय के निष्कर्ष की भूमि में कल्पना करना पूर्वाग्रह नहीं कहा जा सकता, पूर्वाग्रह तभी कहा जाएगा जब हम उसके विपरीत तथ्यों के विद्यमान होते हुए भी उसी पर आग्रह जमाए रहें। शोध की निगमन प्रणाली सर्वथा त्याज्य नहीं है। तथ्यों के चयन और विश्लेषण के पश्चात निष्कर्ष पर पहुँचने की आगमन प्रणाली भी शोध की एक प्रविधि है पर निगमन प्रणाली में भी तथ्य चयन होता है और उसके आधार पर परिकल्पना के रूप में परिवर्तन किया जाता है किया जाना चाहिए।

शोध के लिए विषयों की कमी नहीं है कमी है शोध दृष्टि-सम्पन्न प्रतिभा सम्पन्न शोधकर्ताओं की। हिन्दी में शोध प्राचीन, मध्यकालीन तथा अर्वाचीन से सम्बद्ध विषयों पर किया जा रहा है।

9
शोध के विषय

शोधार्थी सर्वप्रथम शोध के विषय का निर्धारण करता है। विषय शोधार्थी की अपनी रुचि और क्षमता के अनुरूप चुना जाना चाहिए। ज्ञान के विभिन्न क्षेत्र हैं और प्रत्येक में शोध की सम्भावनाएं रहती हैं। हिन्दी साहित्य के

अनुसधाता के लिए हिन्दी भाषा साहित्य, इतिहास, प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक साहित्य की विविध प्रवत्तिया, कविया तथा लेखका की उपलब्धियो के अतिरिक्त साहित्यशास्त्र, हिन्दी तथा हिन्दीतर साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से सम्बद्ध विषय हो सकत हैं। इन विविध विषया म विभिन्न विश्वविद्यालयो मे जो काय हो चुका है उसकी जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता है। इसके लिए डा० उदयभानुसिह के 'हिन्दी मे प्रकाशित शोध प्रबन्ध' हिन्दी अनुशीलन (प्रयाग) आदि मे दी गई सूचनाआ को देखन से विषय चयन मे सहायता मिल सकती है। उपयुक्त विषयो के सम्बन्ध मे हम नीचे कतिपय टिप्पणी दे रहे हैं—

(1) हिन्दी-भाषा

हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन यद्यपि बहुत काल स हो रहा है तो भी भाषा प्रवहमान होती है। उसम समय के बीतने के साथ विभिन्न कारणा से परिवतन होता रहता है। अत उसकी प्रकृति एव प्रवत्ति का अध्ययन अपेक्षित होता है। हिन्दी शब्द का सविधान मे यद्यपि अथ-सकोच हो गया है। वह खडी बोली का मानक रूप रह गया है पर भाषा विधानियो ने पश्चिम मे ब्रज, खडी बोली (जिसमे उदू भी सम्मिलित है और जिसे ग्रियसन ने हिन्दुस्तानी का फारसी मिश्रित रूप कहा है), बागड़ू(कौरवी), कन्नौजी, बुन्देली, मालवी निमाडी और राजस्थानी (कुछ विद्वान इसे पश्चिमी हिन्दी के अन्तगत न मानकर स्वतन्त्र भाषा मानते है) और पूव मे अवधी, जिसके अन्तगत बघेली और छत्तीसगढी प्रमुख बोलियाँ हैं तथा बिहारी भाषाओ को (जिसके अन्तगत भोजपुरी, मगही और मथिली[1] का समावेश है) हिन्दी के अन्तगत माना है। इस तरह हिन्दी भाषा का क्षेत्र बडा व्यापक है।

इन प्रमुख भाषा तथा बोलियो के भी भेद विभेद अध्ययन के विषय हो सकत हैं। यथा—

(1) **व्यक्ति भाषा**—भाषाविज्ञानी एक ही व्यक्ति की भाषा का अध्ययन भी करने लग हैं। व्यक्ति बाल्यावस्था से मृत्युपयन्त भाषा का एक ही रूप नही बोलता, उसमे परिवतन आता रहता है।

(2) **भाषा भूगोल**—यह सीमित क्षेत्र की भाषा अथवा बोली के अध्ययन का विषय है। इसमे गहीत क्षेत्र की भाषा का ध्वनि, अथ, सरचना (Structure) आदि की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। भूगोल के नक्शे

1 मथिली को हिन्दी से पथक भाषा मानने की प्रवत्ति बढ रही है। भोजपुरी क सम्बन्ध म भी यही बात है।

तयार करने म भाषा भूगोल की शोध प्रक्रिया का अवलम्बन किया जाता है। भाषा, व्याकरण विविध क्षेत्रीय भाषा रूपो का तुलनात्मक अध्ययन, भाषा अथवा बोलिया के कोश आदि भाषा विज्ञान के अन्तगत अनुसधेय विषय है।

(2) लोक साहित्य

जनसामान्य म प्रचलित अलिखित साहित्य के नामकरण के विषय म विद्वानो म मतभेद हैं। प० रामनरेश त्रिपाठी ने इस ग्राम साहित्य से अभिहित किया है। उन्होने इसी अथ मे लोकगीतो को 'ग्रामगीत' शीषक के साथ प्रकाशित किया था। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे लोकवार्ता कहा। पर 'वार्ता शब्द का अथ सस्कृत कोशो म प्रवाद, किवदन्ती आदि दिया गया है। कौटिल्य अथशास्त्र म वार्ता अथशास्त्र तथा राजनीति के लिए प्रयुक्त किया गया है। महाभारत म वार्ता नूतन समाचार क लिए प्रयुक्त हुआ है। आज भी वह इसी *अथ म व्यवहृत होता है। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने लोक भाषा श*ब्द का प्रयोग किया है। पर यह वास्तविक अथ व्यजक शब्द नही है। इसके लिए 'लोकायन शब्द भी कुछ विद्वानो ने सुझाया है। लोक सस्कृति को भी इसी अथ म चलाए जाने का प्रयत्न किया गया। यद्यपि यह शब्द अभीष्ट अथ का द्योतन करता है फिर भी 'लोक साहित्य' का प्रचलन अधिक होने लगता है जो अग्रेजी के 'फोक लिटरेचर का पर्याय है। राहुल साकृत्यायन ने 'लोक साहित्य शब्द को ही ग्रहण किया था क्योकि उनके सम्पादन म प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (षोडश भाग) का नामकरण 'हिन्दी का लोक साहित्य ही किया गया है। लोक-साहित्य के अन्तगत अध्ययन की दिशाएँ हैं— लोकगीत लोकगाथा लोककथा कहावतें मुहावरे, पहेलियाँ, लोकनाट्य, *अन्धविश्वास जनश्रुतियाँ आदि। हिन्दी लोक साहित्य के अन्तगत* राहुलजी ने मथिली, मगही, भोजपुरी, अवधी बघेली छत्तीसगढी बुन्देली, ब्रज कन्नौजी राजस्थानी माल्वी कौरवी गढ़वाली कुमाऊनी कुलुई चंबियाली भाषाओ क अतिरिक्त पजाबी, डोगरी तथा नपाली का भी समावेश कर लिया है। सभवत ग्रीयसन क समान ही राहुलजी भी पजाबी डोगरी और नपाली तथा पहाडी बोलियो को हिन्दी के अन्तगत मानते थ अन्यथा इनको हिन्दी साहित्य क इतिहास क लोक-साहित्य भाग म सम्मिलित करने का कोई अथ नही है। शुद्ध शोधार्थी यदि इन भाषाओ-बोलियो स परिचित है तो उस इनक लोक साहित्य क अध्ययन पर क्या प्रतिबन्ध हो सकता है? परन्तु हिन्दी साहित्य क अन्तगत शोध विषय बनान म विवादास्पद आपत्ति उठाई जा सकती है।

साहित्य का इतिहास

आदिकाल से लेकर वतमान काल तक के साहित्य निर्देशक इतिहास लिखे गए हैं। इनमे से कई तथ्य सग्राहक कुछ तथ्य समीक्षक, कुछ सग्राहक और समीक्षक दोनो हैं। साहित्य की विभिन्न प्रवत्तिया पर स्वतत्र विधाओ के आलोचनात्मक इतिहासो का भी लेखनकाय हुआ है। हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास गासी द तासी का है जो फ्रेंच भाषा म लिखा गया था। इसका हिन्दुई अश का हिन्दी रूपा तर डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने किया है। तासी के इतिहास का प्रथम भाग सन 1839 म और दूसरा 1847 मे प्रकाशित हुआ था और परिवर्तित सस्करण 1870-71 मे छपा था। फेलन और करीमुद्दीन न प्रथम सस्करण का उर्दू मे अनुवाद किया है। तासी का इतिहास वणक्रमानुसार है। इसमे साहित्य की विविध विधाओ के वर्गीकरण का भी प्रयास है यथा—

आख्यान, आदिकाव्य इतिहास काव्य। पद्य प्रकारा के वर्गीकरण म अभग आल्हा, कडख, कवित्त मलार, कीतन गाली चुटकला, चौपाई आदि। तासी' के पश्चात शिवसिंह सरोज का कविवत्त सग्रह भी इतिहास-लेखन की दिशा मे एक प्रयास कहा जाता है। इसे हम परवर्ती इतिहास लेखको के लिए स्रोत ग्रथ कह सकते हैं। डा० रामकुमार वर्मा न सरोज' के पूवरचित महेशदत्त के काव्य-सग्रह और मातादीन मिश्र के कवित्त रत्नाकर का उल्लेख किया है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने हिन्दी पुस्तक साहित्य म 'सरोज पूव कृतियो की सख्या दस बताई है। 'तासी और सरोज' के आधार पर डा० ग्रियसन ने 'द माडन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान लिखा। ग्रियसन न कविया तथा कृतिया क विवरण म सरोज स पर्याप्त सहायता ली है। ग्रियसन का इतिहास सवप्रथम 'द जनल आव द रायल एशियाटिक सोसायटी आव बगाल' भाग (1) 1888 क विशेषाक रूप मे छपा था। इसका हिन्दी रूपान्तर किशोरीलाल गुप्त ने 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास शीषक से प्रकाशित कराया। इसकी विशेषता के सम्बन्ध में अनुवादक का कथन है—'इस ग्रथ मे हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न काल विभाग भी दिए गए हैं। 'विनोद' म बहुत-कुछ इन्ही काल विभाजनो को स्वीकार कर लिया गया है। इसम प्रत्येक काल की तो नहीं कुछ कालो की सामान्य प्रवत्तिया भी दी गई हैं यद्यपि यह विवरण अत्यन्त सक्षिप्त है। (पृष्ठ 36) ग्रियसन के पश्चात मिश्रबन्धुओ ने 'मिश्र बन्धु विनोद' के नाम से हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा। विनोद के सम्बन्ध मे आचाय रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं हिन्दी कवियो का एक वत्त सग्रह ठाकुर शिवसिंह सेंगर न सन् 1883 ई० म प्रस्तुत किया था। उसके पीछे सन 1889 म सर ग्रियसन ने 'मॉडन वनाक्यूलर

लिटरेचर आव नादन हिन्दुस्तान' के नाम से वसा ही बडा कवि-वत्त सग्रह निकाला। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा का ध्यान आरम्भ ही म इस बात की ओर गया कि सहस्रा हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकें देश के अनेक भागो म राज पुस्तकालयो तथा लोगो के घरा मे अज्ञात पडी हैं। अत सरकार की आर्थिक सहायता से उसने सन 1900 से पुस्तका की खोज का काय हाथ म लिया और सन 1911 तक अपनी खोज की आठ रिपोर्टों मे सकडो अज्ञात कविया तथा ज्ञात कविया के अज्ञात ग्रथा का पता लगाया। सन 1913 म इस सारी सामग्री का उपयोग करके मिश्रबन्धुओ ने अपना बडा भारी कवि वत्त सग्रह मिश्रबन्धु विनोद जिसम वतमान काल के कवियो और लेखका का भी समावेश किया गया 'तीन भागा म प्रकाशित किया। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, भूमिका) मिश्रबन्धुआ का विनोद भले ही इतिहास की वतमान वज्ञानिक परिभाषा मे इतिहास न हो, पर उसम जो सामग्री एकत्र की गई है और जिस रूप म की गई है उसका लाभ उनके आलोचक आचाय शुक्ल ने भी उठाया है। यह बात दूसरी है कि उन्हाने पश्चिमी इतिहास लेखन की प्रचलित 'विधेयवादी प्रणाली' का अनुसरण नही किया। मिश्रबन्धु विनोद के पश्चात आचाय राम चन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास 'हिन्दी शब्द सागर' की भूमिका क रूप म प्रस्तुत होने के बाद पुस्तक रूप मे प्रकाशित हुआ। यह इतिहास जनता की चित्तवत्ति की परम्पराओ का साहित्य परम्परा से जोडने वाला वैज्ञानिक इतिहास कहा जाता है। शुक्लजी अपने इतिहास की भूमिका म इसे स्पष्ट करत हुए लिखत हैं— जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवत्ति का स्थायी प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप मे भी परिवतन होता चला जाता है। आदि स अन्त तक इसी परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चित्तवत्ति बहुत-कुछ राजनीतिक, सामाजिक साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अत कारण स्वरूप इन परिस्थितिया का किंचित दिग्दशन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है। शुक्लजी ने पाश्चात्य साहित्य इतिहास-लखन की विधेयवादी शली को अपनाकर हिन्दी इतिहास-लेखन का नयी दिशा दी पर जसा कि नलिनविलोचन शर्मा का मत है कि शुक्लजी क इतिहास म जो त्रुटि है वह यह है कि अनुपात की दृष्टि से उसका स्वल्पाश ही प्रवत्ति निरूपणपरक है अधिकाश विवरण प्रधान ही है और व स्वय स्वीकार करत हैं कि इसक लिए उनका मुख्य आधार वह 'विनोद है जिसक लखक मिश्रबन्धुआ पर उन्होने अनावश्यक रूप स कटु व्यग्य भी किए हैं। (साहित्य दशन का इतिहास दशन, पृष्ठ 89)

आचार्य शुक्ल के अनुकरण पर डा० रामशंकर शुक्ल ने इतिहास लिखा है। रसालजी के इतिहास के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि वह किसी निश्चित योजना में समन्वित नहीं है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवदी का हिन्दी साहित्य (उसका उदभव और विकास) विशेष रूप से छात्रों को दृष्टि में रखकर लिखा होने से संक्षिप्त है, पर इस रूप में भी उन्होंने ध्यान रखा है कि 'मुख्य प्रवृत्तियों का विवेचन टूटने न पाए और विद्यार्थी शोधकार्यों के अद्यतन परिणामों से अपरिचित न रह जाएँ। उन्होंने उन अटकलबाजियों और अप्रासंगिक विवेचनाओं को भी छोड़ दिया है जिनसे 'इतिहास नामधारी पुस्तकें प्रायः भरी रहती हैं।'

डॉ० रसाल के इतिहास के पश्चात् डॉ० रामकुमार वर्मा का मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का इतिहास, शोध उपाधि की कृति है जिसमें पूर्ववर्ती इतिहासों के गुण-दोषों के साथ ही नए तथ्य भी संकलित किए गए हैं। काल के नामकरण में शब्द वैभिन्न्य है अर्थ-वभिन्न्य प्रायः नहीं है।

इनके अतिरिक्त हिन्दी में छात्रोपयोगी अनेक छोटे मोटे इतिहासों का प्रकाशन हुआ है और होता जा रहा है। उल्लेख्य इतिहास हैं—नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी के आयोजित सत्रह खंडी इतिहासों के प्रकाशित खण्ड तथा भारतीय हिन्दी परिषद प्रयाग द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य का इतिहास के तीन भाग तथा डा० गणपतिचन्द्र गुप्त का हिन्दी साहित्य का वज्ञानिक इतिहास। श्री गुप्त के इतिहास का आधुनिक भाग नामावली संग्राहक अधिक हो गया है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित इतिहास के जो खण्ड प्रकाशित हुए हैं वे अपने पूर्ववर्ती इतिहासों की परम्परा से बहुत दूर नहीं हैं। इस बीच क्षेत्रीय इतिहास भी लिखे गए हैं। उदाहरणार्थ 'पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास (बाली), बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रकाश में आ चुके हैं। मध्यप्रदेश के अत्यन्त संक्षिप्त क्षेत्रीय इतिहास आदेश ने लिखे हैं और इनमें कई साहित्यकारों के नाम नाते हुए हैं। महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र केरल आदि क्षेत्रों की हिन्दी कृतियों पर ग्रंथ लिखे गए हैं। इन प्रादेशिक हिन्दी साहित्य के इतिहासों से प्राप्त सामग्री के आधार पर 'वृहत् हिन्दी साहित्य का इतिहास' का पुनः लेखन किया जाना चाहिए। हिन्दी का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है उसके लेखक उत्तर, मध्य या पूर्व भारत में ही नहीं, दक्षिण सुदूर पूर्व तथा सुदूर पश्चिम तथा सुदूर उत्तर में विदेशों में भी फैले हुए हैं। उनकी कृतियों के सम्बन्ध में खोज और उनके साहित्यिक महत्त्व को इतिहास में स्वीकृति देने की आवश्यकता है। विदेशों में हिन्दी भाषा साहित्य तथा व्याकरण पर शोधकार्य हुआ है। हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक साहित्य तथा भाषा पर विदेशी साहित्यकारों की तलाश की दृष्टि गई है। हमारे शोधार्थी हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों तथा

विधाओं का प्रवत्तिमूलक आलोचनात्मक इतिहास लिख सकते हैं। भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं की विधा विशेष की समान प्रवत्तियों का भी ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक विवेचन किया जा सकता है। साहित्य इतिहास के विभिन्न स्रोतों की भी खोज हो सकती है।

सत साहित्य

हिंदी मे सत साहित्य की ओर अन्वेषकों का अधिक झुकाव पाया गया है। इस ओर सवप्रथम डा० बडथवाल का ध्यान आकर्षित हुआ था। उनका शोध प्रबन्ध परवर्ती सत साहित्य अन्वेषकों का मागदशन करता जा रहा है। सत साहित्य पर महत्त्वपूर्ण कृति उत्तर भारतीय सत साहित्य की परम्परा है जो प० परशुराम चतुर्वेदी का महत्त्वपूर्ण आकर ग्रथ है। उसी के समान अध्ययनपूर्ण ग्रथ दक्षिण भारत की सत परम्परा पर भी तयार किया जा सकता है। सत साहित्य के अनुशीलन के प्रसग म शका उठती है कि क्या आलोच्य सतों की वाणी साहित्य के अन्तगत आ सकती है? आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने उनके वचनों को 'सधुक्कडी भाषा' कहा है। ऐसे बहुत कम सत हैं जिनकी वाणियों मे साहित्य गुण हैं। सतो के दार्शनिक सिद्धान्तों मे नाममात्र को ही भेद दिखाई देता है उनके आचार धम मे ही भेद होने से अनेक सत पथ चल पडे हैं जो सम्प्रदाय भी कहलाते हैं। जब तक किसी सत की वाणी मे साहित्यिकता न हो और उसम उनके दार्शनिक या आचार धम की विशिष्ट प्रवत्ति लक्षित न हो तब तक उसे अनुसधान का विषय नहीं बनाना चाहिए। सत कवि की वाणी विवेचना ही साहित्य-अनुसधान के अन्तगत आ सकती है कोरे सत की नहीं।

कवि विवेचन

प्राचीन कवियों म सूर, तुलसी जायसी, केशवदास आदि पर विभिन्न दृष्टियों स शोधकाय हो गया है और हो रहा है देश मे और विदेशों म भी। राम और कृष्णभक्त कवियों की कृतियों की खोज और उनका विवेचन बराबर हो रहा है परन्तु सूफी कवियों के सम्बन्ध मे जायसी या मझन तक ही दृष्टि गयी है। सूफी नाथों की तरह देशभर में भ्रमण करते थे। उनके काव्य खोजे जा सकते हैं। दक्खिनी हिन्दी के अन्तगत हैदराबाद अचल के सूफी तो खोज निकाले गए हैं। पर अन्य क्षेत्रों के, विशेषकर पश्चिम तथा पूववर्ती अचलों के सूफी-साहित्य का अनुसधान प्रतीक्षित है। सिन्ध म मुस्लिम तथा हिन्दू सूफी कवियों ने यदि हिन्दी म काव्य रचना की है तो उन्हें भी प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

रीतिकाल के दव बिहारी पद्माकर आदि की कृतियों पर साहित्य-मूल्यांकन

की दृष्टि स काय हुआ है, उनका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन भी किया जा सकता है। रीतिकाल के रीतिमुक्त कवियो की ओर शोधार्थियो की अधिक रुझान पायी गयी है रीतियुक्त कवियो पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। रीतिकाल म रीतिग्रंथो का जो प्रणयन हुआ है उसम सस्कृत रीतिकारो का कहा तक अनुकरण और स्वतन्त्र स्थापना कहाँ तक है, यह अनुसधाय विषय है। कहा जाता है हिन्दी का कोई साहित्यशास्त्र नही है। यदि यह तथ्य है तो अनुसधाय है। यदि तथ्य नही है तब भी अनुसधाय है।

समीक्षा शास्त्र की अनक कृतियाँ प्रकाश म आयी हैं। कई सस्कृत काव्य शास्त्र का हिन्दीकरण मात्र हैं और कई पाश्चात्य काव्यशास्त्र का उल्था वणन-मात्र। सस्कृत काव्यशास्त्र को भारतीय काव्यशास्त्र कहा जाता है पर यह नामकरण तभी साथक हो सकता है जब उसमे समस्त भारतीय भाषाओं के काव्यशास्त्र के तत्वो का विवेचन हो। यह सच है कि अनक वतमान भारतीय भाषाओ का साहित्य शास्त्र सस्कृत साहित्य का देशी भाषाकरण मात्र है पर तमिल का काव्यशास्त्र सस्कृत काव्यशास्त्र की प्रतिलिपि नहीं है, उसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता भी है। हम भारतीय भाषाओं के काव्यशास्त्रो के तुलनात्मक अध्ययन की ओर भी दृष्टिपात करना होगा। यदि हमारी गति विदेशी भाषाओं—अग्रेजी रूसी, जमनी फ्रेंच, इतालवी, चीनी, जापानी भाषाओ म हो तो हम उनके साहित्यशास्त्रो का भी भारतीय काव्यशास्त्र के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना होगा। साहित्य को हम भौगोलिक सीमा मे बाँध नही सकते। मानव जाति की सुख-दुख की भावनाओं मे अन्तर नही है, उसकी अभिव्यक्ति का प्रकार भिन्न हो सकता है। यूरोप म किसी एक भाषा के साहित्य का इतिहास लिखते समय समस्त महाद्वीप के साहित्य की प्रवृत्तियो पर भी दृष्टि रखी जाती है।

पाठालोचन

रचना के मूल पाठ के स्वस्थ निर्धारण के प्रसग म स्वीकृत, निपुण तथा विधि विहित प्रक्रिया का नाम पाठालोचन है—पाठ से हमारा तात्पय किसी भाषा म रचित ऐसे अर्थपूण ग्रन्थ से है जो अन्वेषक को न्यूनाधिक रूप म ज्ञात है और जिसके विषय मे निश्चयात्मक रूप से कुछ कहा जा सकता हो।[1]

पाठ से तात्पय रचयिता के स्वहस्तलिखित ग्रन्थ या रचना से है। उससे रचयिता के जीवनकाल या बाद म की गयी प्रतिलिपिया मूल पाठ की यथावत् प्रतिलिपिया हैं यह अनिश्चित रहता है क्योकि उनम पाठभेद मिलता है, सारी

1 भारतीय पाठालोचन की भूमिका (कात्रे—हिन्दी सस्करण) भूमिका।

उपलब्ध प्रतिलिपियाँ मूल रचना से ही की गयी प्राय नहीं होती। यदि की गयी हो तो प्रतिलिपिकार के प्रमाद या संस्कारवश पाठ भेद हो जाते हैं। यदि रचयिता की स्वहस्तलिखित प्रति उपलब्ध हो जाती है तो 'पाठालोचन' का प्रसंग ही नहीं उठता।

पाठालोचित रचना को आलोचक द्वारा मूल रचना का पुनरुद्धार नहीं कहा जा सकता। उसे अधिक से अधिक सन्निकट समझकर संतोष धारण करना पड़ता है। यूरोप में पाठालोचन का कार्य बहुत समय पूर्व प्रारम्भ किया गया था। भारत में भाण्डारकर शोध-संस्थान में डा० सुखटनकर ने 'महाभारत' के पाठ निर्धारण के लिए पाश्चात्य पाठालोचन सिद्धान्त का सहारा लिया। साथ ही भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल भी उसे बनाया गया। पूना के डक्कन कॉलेज के शोध संस्थान के निर्देशक डा० कात्रे ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने अंग्रेज़ी में पाठालोचन की भूमिका लिखकर पाठालोचन शास्त्र को सुलभ बना दिया है। परिणामस्वरूप विभिन्न भारतीय भाषाओं में अलभ्य मूल ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर पुनर्निर्माण हो सका है। हिन्दी में स्व० डॉक्टर माताप्रसाद गुप्त ने इस विज्ञान में दक्षता प्राप्त कर कई प्राचीन ग्रन्थों का पाठ निर्धारण किया है।

बिहारी केशवदास मतिराम हरिश्चन्द्र आदि की कृतियों का पाठालोचन हो चुका है। यदि संयोगवश इन कृतियों की अशोधित पाण्डुलिपि या पाण्डुलिपियाँ पुनः उपलब्ध हो जाएँ तो इनका पुनः पाठालोचन हो सकता है। जायसी की पद्मावत का पाठालोचन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम कलात्मक प्रविधि से किया था उसके बाद स्व० माताप्रसाद गुप्त ने वैज्ञानिक ढंग से उसका पाठालोचन किया। गुप्तजी के पश्चात् स्व० वासुदेवशरण अग्रवाल को नई सामग्री प्राप्त होने पर उन्होंने भी उसका कला तथा विज्ञान की पद्धति से पाठालोचन प्रस्तुत किया। रामचरितमानस के लगभग 11 पाठालोचित संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का नागरी प्रचारिणी संस्करण बहुत समय तक आदर्श माना जाता रहा। उसके पश्चात् गीता प्रेस ने अपना संस्करण प्रकाशित किया। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने मानस के काशिराज की प्रति के आधार पर पाठालोचित नया संस्करण प्रकाशित किया। 'चन्द' के पृथ्वीराजरासो के भी दीर्घ और लघु संस्करण के पाठ निर्धारण का कार्य किया गया है। इसी प्रकार कबीर की वाणियों पर भी कार्य हुआ है। अभी भी प्राचीन तथा मध्यकालीन कृतियों के प्रामाणिक संस्करणों की आवश्यकता बनी हुई है। हिन्दी में पाठानुसंधान के कार्य का इतिहास गत 25 30 वर्षों का ही है। अभी इस क्षेत्र में अधिक कार्य होना शेष है। पर इस कष्टसाध्य कार्य को हाथ में लेने का विश्वविद्यालयीन शोध छात्र का साहस नहीं होता।

सर्वप्रथम तो उसकी पाठप्रक्रिया से भलीभांति अवगत होना पडता है। उसके पश्चात् आलोच्य ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियों को प्राप्त करने में जिस साहस, धैर्य, श्रम और मानापमानरहितता की अपेक्षा होती है वह बहुत कम छात्रों में पाई जाती है।

इस क्षेत्र में जो भी महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है वह उपाधिनिरपेक्ष अन्वेषकों द्वारा हुआ है जिनका न केवल भाषा के वर्तमान रूप से परिचय था, वरन वे लिपियों तथा इतिहासों से भी परिचित थे। प्राचीन हस्तलेख को पढ़ना भी एक प्राचीन विशिष्ट प्रकार की योग्यता चाहता है। हिंदी की अधिकांश पाडुलिपियाँ तो नागरी लिपि में ही हैं पर काल भेद से कुछ वर्णों के लेखन में कुछ अन्तर भी दिखाई देता है, सूफी संतो के हिंदी-ग्रंथ मूल रूप में फारसी लिपि में हैं। तन्जौर (आंध्र), मद्रास, केरल, उडीसा आदि प्रान्तों में हिंदी ग्रंथ प्रादेशिक लिपि में पाए जाते हैं। अतः जब तक आलोच्य ग्रंथ की लिपि का ज्ञान न हो उसका पाठालोचन संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में पाठालोचक अन्य व्यक्ति की भी सहायता ले सकता है पर उसके पाठोच्चार पर शत प्रतिशत विश्वास करना प्राय संभव नहीं होता।

विषय का चुनाव हो जाने के उपरान्त तत्सम्बन्धी प्रकाशित-अप्रकाशित सामग्री का मनोयोगपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। इससे उसकी रूपरेखा और स्पष्ट परिकल्पना बन सकेगी। परिकल्पना विषय के संबंध में शोधार्थी की इस धारणा को प्रकट करती है कि वह किस तथ्य को उद्घाटित करना चाहता है।

10

परिकल्पना के स्रोत

परिकल्पना एक विचार है जो स्वानुभव अथवा परानुभव से उत्पन्न होता है। परिकल्पना निर्माण के निम्नलिखित स्रोत हो सकते हैं—

(1) जो परिकल्पनाएं परीक्षण के उपरान्त वैज्ञानिक सिद्धान्त के रूप में प्रसिद्ध हो जाती हैं वे नई परिकल्पना को जन्म दे सकती हैं। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का परीक्षित नियम है। इसके आधार पर यह देखा गया कि निश्चित ऊँचाई से पर यह नियम लागू नहीं होता। वहाँ पदार्थ पृथ्वी की ओर आकर्षित होकर नीचे नहीं गिरता। वहाँ भारहीनता अनुभव होती है। तब

वैज्ञानिकों को नई परिकल्पना करनी पड़ी। साहित्य से उदाहरण लें। भरत ने यह सिद्धान्त निरूपित किया कि 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्‌ रस निष्पत्ति'। प्रश्न उठा कि नाटक में रस की स्थिति नाटक के पात्र अथवा आश्रय में रहती है या पात्र का अभिनय करने वाले अभिनेता में रहती है या दर्शक में रहती है। भट्ट लोल्लट ने यह परिकल्पना की कि रस की अवस्थिति नाटक के पात्र अथवा अनुकार्य में होती है। उनकी इस परिकल्पना के आधार पर शंकुक ने विचारसरणि को आगे बढ़ाकर चित्र-तुरग-न्याय के द्वारा सिद्ध किया कि प्रेक्षक अभिनेता को ही अनुकार्य मान लेता है और अनुमान द्वारा रसानुभव करता है। शंकुक की अनुमानजन्य रसोत्पत्ति की स्थापना पर फिर आगे विचार हुआ और भट्ट नायक ने यह स्थापना की कि दर्शक पात्रों के वशिष्ट्य को भूलकर उन्हें सामान्य मानकर रसानुभूति करता है। उन्होंने साधारणीकरण सिद्धान्त की स्थापना की। शोध और आगे बढ़ा और अभिनवगुप्त ने रस की अवस्थिति स्पष्ट रूप से प्रेक्षक में मानी।

जनसाधारण की मान्यता है कि प्रकृति में अपार सौन्दर्य है। पर यह परिकल्पना दूसरी परिकल्पना को जन्म देती है जो वाल्टेयर के शब्दों में 'कलात्मक सौन्दर्य प्राकृतिक सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक सुन्दर है।

यह प्रस्थापना यथार्थवादी प्रस्थापना से सर्वथा भिन्न है।

(2) शोधकर्ता की सांस्कारिकता—शोधकर्ता अपने संस्कार के अनुसार ही परिकल्पना का निश्चयन करता है। जयदेव के गीत गोविन्द का, भौतिकतावादी शुद्ध शृंगार की रचना सिद्ध करेगा। इसके विपरीत कृष्णभक्त उसमें आत्मा परमात्मा के विरह मिलन की कल्पना करेगा। उसकी परिकल्पना अध्यात्म मूलक होगी। विद्यापति की पदावली शृंगारिक रचना है, यह एक परिकल्पना परिकल्पक की शृंगारिक मनोवृत्ति के अनुरूप हो सकती है। विद्यापति की रचना भक्तिपरक है यह दूसरी परिकल्पना भक्तिमूलक मनोवृत्ति के अनुरूप हो सकती है।

(3) कभी-कभी दो समान तथ्य प्रकट होने पर यह जानने के लिए परिकल्पना की जाती है कि क्या यही तथ्य अन्यत्र भी दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ नामदेव और कबीर में नाम-महिमा प्रतिपादित है। दोनों निर्गुणी संत हैं। इससे यह कुतूहल होना स्वाभाविक है कि हम यह परिकल्पना करें कि सभी निर्गुणी संतों ने नाममहिमा पर बल दिया है और नानक तुकाराम शंकरदेव आदि संतों का अध्ययन कर अपनी परिकल्पना को सिद्ध पाएँ।

(4) व्यक्तिगत अनुभव से भी परिकल्पना का जन्म होता है। कबीर ने देखा लोग बड़ी-बड़ी पोथियाँ पढ़ते हैं पर उनसे मनुष्य को एक सूत्र में बाँधने का ज्ञान नहीं पैदा हुआ। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर परिकल्पना

की—"पोथी पढ पढ जग मुआ, पडित भया न कोय। ढाई अक्षर प्रेम का पढे सो पन्डित होय। अब इस परिकल्पना की परीक्षा की जा सकती है।

परिकल्पना का रूप सक्षिप्त और स्पष्ट हो क्योकि व्यामिश्र वाक्य मे बुद्धि विमोहित होती है और विमोहित बुद्धि शोध के उपयुक्त नही है।

शोधकाय प्रारम्भ करन के पूव परिकल्पना (Hypothesis) का निर्माण आवश्यक ह या नही इस पर मतभेद है। एकमत के अनुसार परिकल्पना तभी निर्मित की जा सकती है जब विषय का शोधकाय काफी आगे बढ़ जाता है। क्योकि शोधकाय क पूव परिकल्पना की स्पष्ट कल्पना नही हो सकती। इस मत का समथन करत हुए मागरेट स्टसी ने कुछ ऐसे उदाहरण दिय है जिनमें पव परिकल्पना क बिना शोधकाय प्रारभ किया गया और जब विषय स सम्बद्ध पर्याप्त सामग्री एकत्र हो गई तब परिकल्पना निर्मित की गइ और सिद्धान्त स्थापित किये गए। सन 1956 में बोसाड और बाल न यह समस्या ली कि बड परिवार का अपन सदस्यो क सामाजिक सम्बन्धो पर क्या प्रभाव पडता है? उनके पूव इस विषय पर काय हो चुका था, पर परिवार के बडे छोटे रूप को लेकर काय करना शेष था। पूव काय परिवार का सामाजिक सम्बन्धो पर प्रभाव तक सीमित था। बोसाड कार्यारम्भ के पूव स्पष्ट परिकल्पना निधारित नही कर सके। उन्होंने 100 बडे परिवारो का विस्तार के साथ अध्ययन किया। आत्मकथाएँ, जीवनचरित आदि लिखित सामग्री का उपयोग किया। परिवार के सदस्यो से मुलाकातें की। उनका काय सरल नही था क्योकि प्रत्यक परिवार की अपनी विशेषताएँ थी—उन्ह प्रत्येक परिवार से समान तथ्य सामग्री भी नही मिली। पर इससे उन्ह कोई परेशानी नही हुई क्योकि व तो कोई पूर्व परिकल्पना लेकर काय मे प्रवत्त नही हुए थे। वे तो तथ्यो को एकत्र कर उनका वर्गीकरण और विश्लेषण कर, बडे परिवार का उसक सदस्यो क पारस्परिक सम्बन्धो पर निश्चित प्रभाव पडता है, इस निष्कर्ष पर पहुचे। उनके निष्कर्ष की पुन परीक्षा करने के लिए अन्य अनुसधाता आगे आए और भविष्य म भी आते रहग। एक समस्या को एक ही पहलू से नही, अनेक पहलुओ से देखा परखा जा सकता है।

दूसरा मत गूडे और हट्ट का है जो परिकल्पना को शोधकाय के पूव आवश्यक मानत हैं। य दोनो मत विषय क प्रकार को देखकर मान्य या अमान्य किए जा सकत हैं। यदि किसी विषय पर काफी शोधकाय हो चुका है तो उसके अध्ययन के आधार पर हमारे मन म कोई नई कल्पना का उदय हो सकता है और हम अपनी परिकल्पना के आधार पर अपने विषय की रूपरेखा तयार कर कार्यारम्भ कर सकते हैं। और जहा किसी विषय पर काय अधिक नहीं हुआ है वहाँ बिना पूर्व परिकल्पना के भी उस पर कार्यारम्भ किया जा

सकता है। एक दूसरा प्रश्न उठता है कि किसी एक विषय पर हुए काय पर क्या पुन (उसी विषय पर) काय किया जाए या नही ? इस पर मतैक्य नही है। सामान्यत यह कहा जाता है कि शोधित विषय पर काय करने स पिष्टपेषण होगा कोई नया तथ्य सामने नही आ सकगा। इसके विपरीत दूसरा मत यह है कि पूव शोध ठीक हुआ है या नही, इसकी परीक्षा क लिए भी उसी विषय पर शोध किया जाना चाहिए। गूडे और हट्ट का कहना है कि तरुण वनानिका न वद्ध वैज्ञानिका का छिद्रान्वेषण कर कई बार ख्याति अर्जित की है।

वज्ञानिक अनुसधानो म ही नही मानविकी के अनुसधाना म भी ऐस उदाहरण मिलत हैं जहा उसी विषय की नई शाखा न पुरानी शोधा के निष्कर्षों का खडन कर नई स्थापनाएँ की है। हम पहले कह चुक है कि शोध का प्रारभ तो ह पर अन्त नहीं ह।

11

विषय की रूपरेखा

विषय की परिकल्पना निश्चित कर ल्न पर उसकी रूपरखा का प्रश्न उठता है। वास्तव म दखा जाए तो रूपरेखा ता विषय स सम्बद्ध साहित्य को पढ़न क पश्चात स्पष्ट होती है परन्तु जिन विश्वविद्यालया म शोध-आवदन पत्र क साथ विषय की रूपरखा की माँग की जाती है वहा शोधार्थी अस्थायी रूपरखा या सक्षिप्त याजना मूल रूप म प्रस्तुत कर सकता है जिसम वह विषय तथा अध्यायो क शीषक और उनम वर्णित होनवाल प्रसग का एक दो पक्तिया म दे देता है। कुछ विश्वविद्यालया म शोध प्रबध की प्रस्तुति क साथ रूपरखा दने का प्रावधान है। यह नियम अधिक न्यायसगत प्रतीत होता है। इसस परीक्षक के सम्मुख प्रबन्ध की वस्तु का पूरा चित्र उपस्थित हो जाता है पर जहाँ पत्र दने का प्रश्न हो रूपरेखा की प्रस्तुति ना करी नार्थी अस्थायी या काम चलाऊ रूपरखा तयार कर सकता है जो अध्ययन की समाप्ति पर स्थायी और विस्तृत रूप ग्रहण कर लेता है। उसक सक्षिप्त होन का आशय यह नहा है कि उसम कवल अध्याय क शीषक मात्र हों। वास्तविकता यह है कि अध्याया म वण्य विषय का स्थूल सकेत भी किया जाना चाहिए। मात ज्ञानित आपन सूर क व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोध करने का निश्चय किया है। तो एक पद्धति ता

यह है कि आप सूरकालीन परिस्थिति को अपना प्रथम अध्याय बनाएँ, क्योंकि कवि अपनी परिस्थिति से उत्पन्न होता है अथवा परिस्थिति कवि को प्रभावित करती है। दूसरी पद्धति में भूमिका से प्रारम्भ न कर विषय से ही प्रारम्भ करते हैं। प्रथम पद्धति के अनुसार यदि आपकी रूपरेखा का निम्नानुसार संक्षिप्त रूप है तो वह बिल्कुल ही अस्पष्ट है। और अस्पष्ट रूपरेखा से शोध की दिशा भलीभाँति निर्दिष्ट नहीं हो पाती।

सूर का व्यक्तित्व और कृतित्व

रूपरेखा

अध्याय पहला—सूरकालीन स्थिति।
अध्याय दूसरा—सूर का व्यक्तित्व—जीवन-चरित्र।
अध्याय तीसरा—सूर का कृतित्व।
अध्याय चौथा—सूर के काव्य की आलोचना।
अध्याय पाँचवाँ—उपसंहार।

उपर्युक्त रूपरेखा में यह स्पष्ट नहीं होता कि शोधार्थी सूर के अध्ययन से क्या प्रतिपादित करना चाहता है। आपके विषय का शीर्षक तो सूर के जीवन और काव्य की पूरी विवेचना चाहता है। इस प्रकार की तार शैली की अधूरी रूपरेखा में आपका अध्ययन कम सीधी रेखा में आगे बढ़ सकता है? पहले अध्याय को ही लें। उसका आपने शीर्षक मात्र सूरकालीन स्थिति दिया है। पाठक को यह ज्ञान नहीं होता कि आप किन स्थितियों की चर्चा करना चाहते हैं। आपको सूरकालीन स्थिति के आगे ही लिखना चाहिए— राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक। इससे आप आलोच्यकाल के इतिहास-ग्रन्थों को पढ़ेंगे जिनमें सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों का वर्णन मिलेगा। आप भक्तमाल और वैष्णवन की वार्ताएँ भी पढ़ेंगे जिनमें तत्कालीन धार्मिक विश्वासों का परिचय हो सकेगा। दूसरा अध्याय बहुत ही अस्पष्ट है। व्यक्तित्व के क्या उपादान होते हैं इसका भी उल्लेख करना चाहिए क्योंकि उन्हें को आप 'सूर' के जीवन से खोजना चाहेंगे। व्यक्ति समाज का एक घटक है। अतः जब हमने सूरकालीन समाज का रूप प्रथम अध्याय में प्रस्तुत कर दिया तब हम सूर के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने में अधिक कठिनाई नहीं होगी। व्यक्तित्व का अध्ययन गुणात्मक प्रविधि का अंग है। अतः अध्याय का शीर्षक मात्र देने से काम नहीं चलेगा। हमें सूर का व्यक्तित्व—जीवन चरित्र के आगे लिखना होगा—व्यक्तित्व की परिभाषा, पारिवारिक पृष्ठभूमि, अर्थात् सूर की जन्मतिथि, जन्म स्थान तत्सम्बन्धी भिन्न भिन्न मत और उनकी आलोचना, सूर को प्रभावित करने

वाली पारिवारिक घटनाएँ जीवन को प्रभावित करने वाले व्यक्ति—(उनके दीक्षा-गुरु आदि) जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण उनकी प्रयाण तिथि—विविध मतों की समीक्षा। अध्याय की रूपरेखा शीर्षक मात्र न होकर जब तनिक वर्णनात्मक बन गई तब आपको सूर के जीवन से सम्बद्ध सामग्री के स्रोत खोजने में सहायता मिल जाएगी। आप उन प्रलेखों (Documents) की खोज करेंगे जिनमें सूर का उल्लेख सम्भव होगा। सूर अकबर काल में हुए थे। अतः आप उस काल के सरकारी कागजातों की तलाश करेंगे। उनकी वंशावली प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे, भक्त चरितों की खोज करेंगे, ब्रजभूमि में सूर सम्बन्धी किंवदंतियों का एकत्र करने का प्रयास करेंगे और उनके समसामयिक भक्त-कवियों की रचनाओं में उनका उल्लेख ढूंढेंगे। (यदि आप किसी आधुनिक व्यक्ति के जीवन को खोजना चाहेंगे तो आपको उसके लिए अधिक भटकना नहीं पड़ेगा। शासकीय-अशासकीय प्रलेख प्रकाशित साहित्य आदि से व्यक्ति का चरित्र प्रकाश में आ जाएगा। कठिनाई प्राचीनकालीन कवियों के जीवन सूत्र एकत्र करने में होती है। पर जहाँ कवि अपनी रचनाओं में अपना परिचय दे देता है वहाँ शोध की कठिनाई कम हो जाती है) तीसरे अध्याय में सूर का कृतित्व लिखने मात्र से काम नहीं चलेगा। आपको उनकी कृतियों का यथासम्भव रचनाकाल क्रम से उल्लेख करना होगा। चौथे अध्याय में सूर के काव्य की आलोचना शीर्षक से यह ज्ञात नहीं होता कि आप किस दृष्टि से आलोचना करना चाहते हैं। क्या आप इस अध्याय में सूर की समस्त काव्य कृतियों का अध्ययन करना चाहेंगे ? ऐसी स्थिति में यह अध्याय बहुत बड़ा हो जाएगा, एक पुस्तक का ही रूप धारण कर लेगा। आपको इस अध्याय में केवल सूरसागर का ही मूल्यांकन करना होगा अतः इस अध्याय का संक्षिप्त विवरण होगा।

सूरसागर प्रबंध अथवा गीत-काव्य प्रबंध अथवा गीत-तत्त्वों के आधार पर उसका मूल्यांकन—उसका भावपक्ष तथा कलापक्ष (भाषा अलंकार, छन्द आदि) की दृष्टि से परीक्षण सूरसागर पर श्रीमदभागवत तथा अन्य ग्रंथों के प्रभाव का पृथक अध्याय बनाना होगा, जिसे हम पाँचवा अध्याय कहेंगे पर यह अध्याय स्वयं स्वतन्त्र प्रबन्ध का रूप धारण कर सकता है।

छठे अध्याय में सूर की अन्य कृतियों—सूर सारावली आदि की विवेचना, उनकी प्रामाणिकता पर विचार तथा काव्यगत वैशिष्ट्य की परीक्षा। सातवें अध्याय में सूर के काव्य में दर्शन— वल्लभ मत और उसका सूर की कृतियों पर प्रभाव वर्णित होगा। अंतिम अध्याय उपसंहार के अंतर्गत प्रबंध की मुख्य मुख्य प्रस्थापनाओं का सिंहावलोकन होगा। उसके पश्चात आकार ग्रन्थों की अकारादि क्रम से सूची होगी। अधिकांश रूपरेखाओं में सन्दर्भ ग्रन्थसूची नहीं

दी जाती। यदि वह शोध प्रारम्भ के पूव तयार की गई है तो अधूरी ही होगी। एमी दशा मे प्रमुख स दर्भ ग्र थ सूची का लिखित सकेत कर देना चाहिए। हिन्दी म विषय पर सीधा विवचन न होकर ऐतिहासिक पष्ठभूमिपरक विवेचन होता है। और यह विवेचन प्रागैतिहासिक काल से प्रारम्भ होता है जिससे विषय विवेचन हल्का और उसकी भूमिका भारी हो जाती है। कुछ प्रबन्ध तो हजार पृष्ठ से भी अधिक आकार धारण कर लेते हैं। अपनी रूपरेखा मे ऐसे प्रसग या विषयो का निर्देश कर देते हैं जिनके साथ व पूण न्याय नही कर पाते। मेरे सामने एक विश्वविद्यालय से प्राप्त 'अग्रेजी तथा हिन्दी के आधुनिक आचलिक उपन्यासो का तुलनात्मक अध्ययन' विषय की रूपरेखा है जिसके एक अध्याय का उपशीषक है

विश्व की अन्य भाषाओ मे आचलिक उपन्यासो की दशा (1) पाश्चात्य भाषाएँ, (2) पौर्वात्य भाषाएँ (भाषा के बहुवचन की वतनी दो प्रकार से दी गई है (1) भाषाएँ (2) भाषायें और पाश्चात्य की तुक पौर्वात्य से मिलाना तो वतनी रूढि है, पर शुद्ध शब्द है पौरस्त्य।)

प्रश्न यह है कि क्या अनुसधाता पश्चिमी तथा पूर्वी देशो की समस्त भाषाओ म गति रखता है ? यदि रखता है तो वह सचमुच महापण्डित है। एसी दशा म भी क्या पूव की समस्त भाषाओ—चीनी, जापानी, इडोनीशियन आदि भाषाओ के आचलिक उपन्यासो का विवेचन एक ही अध्याय का उपाग बन सकता है ? इस अध्याय का पूरा विवरण भी पढिए—

"द्वितीय अध्याय

हिन्दी एव अग्रेजी आचलिक उपन्यास के विकास की रूपरेखा

(क) हिन्दी एव अग्रेजी आचलिक उपन्यासो की उत्पत्ति एव उनके विकास की पूव की सामान्य परिस्थितियाँ।
    (1) अग्रेजी—सामाजिक राजनतिक आर्थिक, साहित्यिक व धार्मिक।
    (2) हिन्दी—सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, साहित्यिक व धार्मिक।
(ख) हिन्दी एव उसकी पूववर्ती भाषाओ क प्रागौपन्यासिक कथा-साहित्य म आचलिकता।
(ग) अग्रेजी क प्रागौपन्यासिक कथा साहित्य म आचलिकता।
(घ) प्रेमचन्द पूव काल के उपन्यासो म आचलिकता।
(ङ) प्रेमचन्द युग एव स्वातन्त्र्य पूव काल के उपन्यासों म आचलिकता।

(प) स्वातन्त्र्योत्तर युग म हिन्दी म आधुनिक आंचलिक उपन्यास का विकास।
(छ) हार्डी युग तक अग्रजी आचलिक उपन्यास का विकास।
(ज) बीसवी शताब्दी क पूव अमरीकी आंचलिक उपन्यास का विकास।
(त) बीसवी शताब्दी का अग्रजी आचलिक उपन्यास—
    (1) अग्रजी साहित्य।
    (2) अमरीकी साहित्य।
    (3) आग्ल भारतीय साहित्य।
(थ) विश्व की अन्य भाषाओ म आचलिक उपन्यास की दशा।
    (1) पाश्चात्य भाषाए।
    (2) पौर्वात्य भाषाए।
(द) निष्कष।

अब आप ही कल्पना कीजिए कि उक्त प्रबन्ध का दूसरा अध्याय यदि गम्भीरता क साथ लिखा जाए तो कितने हजार पृष्ठ नहीं घर लेगा ? सवप्रथम तो मुझे सन्देह है कि शोधकर्ता हिन्दी अंग्रेजी के अतिरिक्त कोई भारतीय यूरोपीय या पूर्वीय भाषाए जानता है। अध्याय का एक एक उपशीषक स्वतन्त्र शोध प्रबन्ध का विषय है। अनुसन्धाता अपनी रूपरेखा को विद्वत्तापूर्ण प्रदर्शित करने के लिए ऐसे प्रसगो का उसम समावेश कर देता है जिसकी विवेचना करना उसकी सामर्थ्य के बाहर है।

तात्पय यह है कि रूपरेखा का रूप ऐसा हो जो हमारे प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट कर दे। रूपरेखा बनाने के पूव जसा कि हम पहले भी कह आए हैं विषय का प्रारम्भिक ज्ञान तो सम्पादित कर ही लेना चाहिए, क्योंकि प्रबन्ध को सामयिक परिस्थितियो से प्रारम्भ करने की परिपाटी चल पडी है। इसलिए विषय के शीषक के अनुरूप उस प्रारम्भ न कर एकदम परिस्थितियो के वणन से प्रारम्भ किया जाता है। पुन एक शोध प्रबन्ध की रूपरेखा का उदाहरण नीचे दिया जा रहा है। उसका शीषक है—'सेवडा के कवि अक्षर अनन्य और रसनिधि एक अध्ययन। (शीषक म रसनिधि के पश्चात हाइफन नहीं है।)

प्रथम अध्याय—तत्कालीन परिस्थितिया और उनका कवियो पर प्रभाव।
(अ) राजनीतिक परिस्थितियाँ।
(आ) सामाजिक परिस्थितिया।
(इ) धार्मिक परिस्थितियाँ।
(ई) आर्थिक परिस्थितियाँ।

अध्याय के शीषक म परिस्थितिया का कवियो पर प्रभाव दिया गया है, पर उसके अन्तगत केवल परिस्थितियो का उल्लेख मात्र देकर उसे समाप्त कर

दिया गया है। जब शोध मेवडा से कवियों से सम्बंधित है तब परिस्थितियों की चर्चा के पूर्व सवडा की भौगोलिक स्थिति आदि से परिचित कराना आवश्यक था।

कभी-कभी शोधकर्ता अपने विषय का शीर्षक अभिधापरक न रखकर लक्षणापरक रख देते हैं। एक प्रबन्ध का शीर्षक था—*नई कविता के नए हस्ताक्षर*। 'नए हस्ताक्षर' से शोधकर्ता का तात्पर्य नए कवियों से है। तार की भाषा का जैसे 'नई कविता—जीवन के नए सन्दर्भ' का प्रयोग भी उचित नहीं है। इसका 'नई कविता में जीवन के नए सदर्भ' शीर्षक देना चाहिए।

प्रबन्ध की भाषा समाचार पत्रों की भाषा से भिन्न होती है, और होनी भी चाहिए। सामान्य लेख की भाषा में चलते शब्द उछलते वाक्य खण्ड आकर्षण पैदा करते हैं पर शोध प्रबन्ध में विकर्षण।

निष्कर्ष यह है कि रूपरेखा विषय के शीर्षक के अनुसार तैयार की जानी चाहिए। विषय के शब्दों का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसे अध्यायों में विभाजित करना चाहिए। *प्रत्येक अध्याय केवल शीर्षक मात्र न होकर उसकी विषय* वस्तु का निर्देशक भी हो। रूपरेखा तैयार करने के पूर्व विषय पर प्रकाशित आलोचना या शोधपरक साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात हो जाएगा कि उस पर कितना कार्य हो चुका है और कितना, किस दृष्टिकोण से होना शेष है। इस अध्ययन से शोध का लक्ष्य स्पष्ट हो जाएगा और तभी रूपरेखा भी स्पष्ट रूप से तैयार की जा सकेगी।

यहाँ कुछ विषयों के अध्ययन की रूपरेखा सुझाई जाती है—

कवि की भाषा का अध्ययन

किसी कवि की भाषा के अध्ययन को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है—

1 कवि का संक्षिप्त जीवन।
2 भाषा का जीवन से सम्बन्ध।
3 कवि की भाषा विशेष का वर्णन। मान लीजिए कवि की भाषा ब्रज है। तब ब्रज भाषा का उद्गम वह किस अपभ्रंश से उद्भूत है? उसके सम्भावित प्रादुर्भाव का समय। विविध मतों की परीक्षा।
4 भाषा का व्याकरणिक रूप।
   (1) ध्वनियाँ स्वर व्यंजन।
   (2) संज्ञा विशेषण, क्रियाविशेषण लिंग, वचन, प्रत्यय (कारक चिह्न), सर्वनाम उसके भेद क्रियारूप कालभेद, तद्धित रूप।

व्याकरणिक रूप प्रस्तुत करने के बाद कवि की भाषा की परीक्षा कीजिए।

सर्वप्रथम कवि की शब्द सम्पदा का अन्वेषण कीजिए। उसकी रचनाओं में देखिए तत्सम तद्भव, देशज और विदेशी शब्द कितने हैं। उनका अकारादि क्रम से संग्रह कीजिए। शब्दों के पश्चात लोकोक्तियों तथा मुहावरों का संग्रह कीजिए। भाषा में लक्षणा व्यंजना तथा विशिष्ट पद रचना रीति-गुणों के उदाहरण खोजिए और अन्त में कवि की भाषा के सामर्थ्य पर अपना मत निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत कीजिए। परिशिष्ट में शब्द सूची आकर-ग्रंथ-सूची दीजिए। प्रबन्ध की भूमिका में कवि की भाषा पर किए गए कार्य की आलोचनात्मक चर्चा और अपने प्रबन्ध की नई दिशा का निर्देश आवश्यक होगा।

× × ×

कवि के जीवन और कृतित्व के अध्ययन से सम्बद्ध डा० प्रभात के शोध प्रबन्ध मीराबाई की रूपरेखा नीचे दी जाती है—

(1) पृष्ठभूमि

राजनीतिक परिस्थिति आर्थिक परिस्थिति सामाजिक परिस्थिति, शिक्षा पर्व और उत्सव दार्शनिक परिस्थिति धार्मिक परिस्थिति साहित्य संगीत स्थापत्य तथा शिल्प, चित्रकला।

(2) जीवनवृत्त—अध्ययन के आधार

मीरा सम्बन्धी सामग्री का वर्गीकरण

कवियों और भक्तों द्वारा उल्लेख—कबीर सेना हाबी नरसिंह मेहता सूरदास हरिराम व्यास कवि विष्णुदास कृत कुवर बाईनु मोसारू, श्रीहित ध्रुवदास एकनाथ महाराज तुकाराम श्रीनिलोबा महाराज बेणी माधवदास कृत मूल गोसाइ चरित कृष्णदत्त कृत गौतम चन्द्रिका रामकृपाल तथा उसकी टीकाएँ टिप्पणियाँ और दृष्टांत मायादास कृत 'भक्तमाल प्रियादास कृत भक्तमाल की भक्तिरसबोधिनी टीका वष्णवदासजी कृत भक्तमाल का दृष्टांत राघोदास कृत भक्तमाल चतुरदास की टीका सत दरिया साहब नागरीदास वल्लभ सम्प्रदाय का वार्ता साहित्य चौरासी वष्णवन की वार्ता हरिदास का पद रामदान लालस कृत भीमप्रकाश कुवरी के दोहे गरीबदास महीपति कृत भक्तलीलामृत गोपीनाथ कृत चरित्र मीराबाई मीराबाई की परची दयाराम राधाबाई कृत मीराबाई माहात्म्य जसवन्त मीरा जमाजी सवाद भक्ति माहात्म्य चरणदास दयादास जनलछमन नन्दराम, सुन्दरदास

कायस्थ, छीटमदास, प्राणधन, बख्तावर, हरिदास दर्जी, जैतराम के मीरा सम्बन्धी भजन, लोकगीतों में मीरा सम्बन्धी उल्लेख।

अनुश्रुतियाँ और मीरा इतिहास-ग्रंथ राजनीतिक इतिहास-मुहणोत नैणसी की ख्यात, एनल्स एण्ड एण्टीक्विटी आफ राजस्थान रासमाला वीर विनोद हिन्दी साहित्य के प्राचीनतम इतिहास, अन्य प्रमुख इतिहास इतिहासेतर ग्रंथ शिलालेख, आमेर के जगदीशजी मन्दिर का शिलालेख, मेडते की मीरा की मूर्ति पर खुदा लेख, दानपत्र किशनगढ संग्रह का चित्र प्रशस्तिपत्र, अंत साक्ष्य।

(3) जीवन वृत्त रूपरेखा

जन्मतिथि—विभिन्न विद्वानों के मत भाटों द्वारा उल्लेख, निष्कर्ष।

जन्मस्थान और प्रारम्भिक *निवास-स्थल, कालकोट सम्बन्धी भ्रम,* मीरा का पितृकुल, मारवाड के राठौड, मेडतिया शाखा का प्रारम्भ, राव दूदाजी, मीरा के पिता, एक भ्रम मीरा की माता, भाई-बहिन, परिवार की धार्मिक प्रवृत्ति शशव विवाह तिथि।

मीरा का श्वसुर-कुल-पति, तीन मत निष्कर्ष, क्या मीरा के पति भोजराज पाटवी कुंवर थे? मीरा के जीवन संघर्ष (विषपान आदि)।

अन्य घटनाएँ—नागप्रसंग, वैराग्य और भक्ति की तीव्रता चित्तौड-त्याग तीर्थयात्रा। मीरा के गुरु रामानन्द संत रैदास, रैदासी संत विट्ठल, हरिदास दर्जी, माधवपुरी गौरकृष्णदास भक्त, जीवगोस्वामी, पुरोहित गजाधर देवाजी दीक्षागुरु।

भक्तों और संतों से मीरा का सम्पर्क—देवाजी रामदास, गोविन्द दुबे, साचोरा ब्राह्मण कृष्णदास अधिकारी, हितहरिवंश और हितहरिराम व्यास, जीवगोस्वामी, रूपगोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी जगन्नाथ, माधवेन्द्र तथा माधव रामानन्द, नीमानन्द और माधवाचारज अजबकुंवरि बाई, विट्ठल।

अलौकिक घटनाएँ

कुछ अप्रामाणिक प्रसंगोल्लेख—क्या नूतुर वष्णवन की वार्ता में उल्लिखित जमल की वन मीराबाई थी? अकबर तानसेन और मीरा, तुलसीदास और मीराबाई, नरसी मेहता और मीरा के बीच पत्र व्यवहार। मीरा की अन्तरंग सखियाँ और सविकाएँ—मिथुला ललिता। मीरा की मृत्यु कहाँ, कैसे और कब? मृत्यु तिथि, साहित्यकारों के अनुमान भाटों के उल्लेख निष्कर्ष।

(4) रचनाएँ, साहित्यिक कृतित्व

संग्रह केन्द्र, प्रमुख प्रकाशित संग्रह और उनके आधार प्रमुख पत्र पत्रिकाओं तथा खोज रिपोर्टों में प्रकाशित मीरा के पद।

प्रकाशित सग्रहा के स्रोत—मीरा के पद की हस्तलिखित प्रतियाँ विद्यासभाभद्र अहमदाबाद म सुरक्षित पोथियाँ डाही लक्ष्मी लायब्रेरी नडियाड का सग्रह, फाबस गुजराती सभा बम्बई म सुरक्षित हस्तलिखित ग्रथ। श्री सेठ पुरुषोत्तम विश्राम भावजी का वयक्तिक सग्रह रामदासी सशोधन मडल की प्रतिया गुजराती प्रस बम्बई का सग्रह पुस्तक प्रकाश जाधपुर का सग्रह नागरी प्रचारिणी सभा का सग्रह, राम द्वारा थाली बावडी उदयपुर का सग्रह पुरातत्व मन्दिर जोधपुर, स्फुट प्रतिया प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल द्वारा प्रकाश म लाई गई पोथिया श्री हरिनारायण पुरोहित जयपुर का सग्रह अन्य ग्रथा की हस्तलिखित प्रतिया।

मीराबाई की रचनाएँ—गीतगोविन्द की टीका नरसी महता का मायरा नरसी मेहता चि हुडी, रुक्मिणी मगल राग सोरठ का पद मीराबाई का मल्लार राग मीराबाई की गरबी राग गोविन्द फुटकर पद, निष्कप कृतियो का पाठ।

मीरा की प्रतियों के वर्गीकरण के आधार—पूव प्रतिया या सचयन विभिन्न सम्प्रदायो म लिपिबद्ध प्रतिया लिपिकारो की भाषा तथा सकलन का भाषा क्षेत्र प्रक्षेप सम्बन्ध क आधार पर वर्गीकरण। प्रसिद्ध अशा की समस्या—मीरा क बाद की घटनाओ के उल्लेख वाले पद सवादात्मक गीत लिपिकारा की असावधानी मीरा नाम क उल्लेख मात्र स मीराकृत कहे जानेवाले पद चित्रभाव तत्त्व भाषा की दृष्टि से अन्य कविया के पद जो मीरा के नाम स प्रचलित हैं। प्रस्तुत अध्ययन की आधारभूत प्रतियाँ।

(5) साधना पथ

आराध्य—कृष्णोपासका का मत, रामोपासकों का साक्ष्य सत सम्प्रदायो के कथन लोकमत मीरा का वक्तव्य मीरा के जीवन का साक्ष्य नामरूप अवतारी रूप विष्णु व हरि अविनाशी अजय रूप रूप और सज्जा। लीला की सगिनी मुरली लीला भूमि व नावन।

साधन—जीवकोटि, साधकजीव राधा पुनर्जन्मवाद, कम सिद्धान्त, साधना क कारण, भक्ति पद्धति, भक्ति का अथ मीरा की भक्ति नवधाभक्ति एकान्त आसक्तिया प्रपत्ति, पचकम प्रमरूपा भक्ति क साधन प्रधान सहायक अन्तराय बाधा और निषेध।

पूव प्रचलित विचारधाराएँ और मीरा की साधना—वल्लभ प्रभाव पर आधारित दशन और मीरा माधवेन्द्रपुरी की गोपाल भक्ति स साम्य, चतन्यमत द्वैताद्वैतवाद, बल्लभ प्रमाण का अस्वीकार करने वाले चन्न वाली पद्धतियाँ नाममत, सतमत निर्गुणी दशन सूफीमत, निष्कप।

परम्परा और मीरा—वदिक और पौराणिक, द्वितीय उत्थान के भक्त मीराबाई तथा गोदा अडडाल, तृतीय उत्थान के भक्त।

मीराबाइ—सम्प्रदाय।

(6) काव्य गनुभूति और अभिव्यक्ति

भाववाद और अनुभूति—एकान्तिक सयाग वियोग मीरा की रहस्य भावना।

पद रचना—पद परम्परा का उदभव और नामकरण विकास, मीरा क पदा म राग मल्हार राग समय सिद्धान्त, भावानुकूल राग।

गीतितत्त्व—मीरा म गीतितत्त्व, आत्मानुभूति और सयमित भावातिरक, गेयता, अन्विति और सक्षिप्त प्रकार और कोटि।

छन्द विधान—टेक की दष्टि से वर्गीकरण, परम्परागत छन्द प्रयोग, नवीन छन्द।

पूव प्रचलित छन्द—पद्धतिया और मीरा क पद।

भाषा का स्वरूप—सना के रूप सवनाम, क्रिया, एक विशिष्ट प्रयोग, निष्कप।

शब्दावली—मुहावर और लोकोक्तिया।

वण-योजना—नाद सौन्दय, माधुयगुण।

शब्दशक्ति—अभिधा लक्षणा, व्यजना।

चित्रण—आलम्बन चित्र अनुभाव के चित्र, प्रकृति चित्रण। बिम्ब योजना—विशेषताएँ—प्रकार।

अप्रस्तुत विधान—कल्पना, उक्ति सौन्दय शास्त्रीय कवि कोटियाँ और मीरा के काव्य का सामाजिक मूल्य।

(7) तीन परिशिष्ट

(1) मीरा द्वारा सेवित मूर्तिया इसके अन्तगत विभिन्न स्थाना की मूर्तिया दी गई हैं।

(2) मीरा पूव हिन्दी कृष्णकाव्य—विभिन्न धाराएँ, सूफियाना कृष्ण-काव्य शृगारिक कृष्ण काव्य जन दृष्टि से रचित कृष्ण-काव्य नाथ सम्प्रदाय स प्रभावित कृष्ण काव्य जयदेव विद्यापति नामदेव, शकरदव, सधना नाई, चन्द्रिका समय विष्णुदास भीम कुभनदास सूरदास, तत्त्ववेत्ता लालदास, नरसी महता भाल्ण, कशव हरिदास।

(3) मीरा का प्राचीनतम चित्र तथा प्राचीन हस्तलिखित प्रतिया क 5 पृष्ठ फोटो।

टिप्पणी—

शोध प्रबन्ध का शीर्षक केवल 'मीराबाई' है जो बिल्कुल संक्षिप्त है। इसके आगे यदि का व्यक्तित्व और कृतित्व भी जोड़ दिया जाता तो रूपरेखा के पढ़े बिना ही यह ज्ञात हो जाता कि शोधी मीरां के जीवन तथा काव्य-कृतियों का शोधपरक अध्ययन करना चाहता है। रूपरेखा काफी विस्तृत है। प्रतीत होता है यह प्रबन्ध तयार होने के पश्चात निर्धारित की गई है। शोधकार्य ज्यों ज्यों अग्रसर होता जाता है रूपरेखा का संशोधन और संवर्धन होता जाता है। शोध—विषय का शीर्षक मीराबाई होने से शोधी को उसके जीवन तथा साहित्य रूप के प्रत्येक अंग पर विस्तार से विचार करना पड़ा है।

× × ×

हिन्दी में संत साहित्य पर शोधकार्य की ओर अधिक रुझान है। हम डा० बड़थ्वाल की 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय' पर लिखित प्रथम शोध प्रबन्ध की रूपरेखा उनके अनुवाद-ग्रंथ से दे रहे हैं—

पहला अध्याय—परिस्थितियों का प्रसाद

(1) आमुख (2) मुस्लिम आक्रमण (3) वर्ण व्यवस्था की विषमता, (4) भगवच्छरणागति, (5) सम्मिलन का आयोजन, (6) हिन्दी विचारधारा और सूफी धर्म (7) शूद्रोद्धार (8) निर्गुण सम्प्रदाय।

दूसरा अध्याय—निर्गुण संत सम्प्रदाय के प्रचारक

(1) परवर्ती संत (2) जयदेव (3) नामदेव, (4) त्रिलोचन, (5) रामानंद, (6) रामानन्द के शिष्य, (7) रामानन्द का समय, (8) कबीर (9) नानक (10) दादू (11) प्राणनाथ, (12) बाबालाल (13) मलूकदास (14) दीन दरवेश (15) यारी साहब और उनकी परम्परा (16) जगजीवनदास द्वितीय (17) पलटूदास, (18) धनीदास, (19) हरिया द्वय (20) बुल्लेशाह (21) चरनदास (22) शिवनारायण, (23) गरीबदास (24) तुलसीदास, (25) शिवदयाल।

तीसरा अध्याय—निर्गुण सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त

(1) एकेश्वर (2) पूर्ण ब्रह्म (3) परात्पर (4) परमात्मा, आत्मा और जड़ पदार्थ (5) अशाश्वि सम्बन्ध (6) जीवात्मा और जड़ जगत, (7) सत्ज्ञान, (8) उपनिषद् मूलस्रोत (9) निरंजन (10) अवतारवाद।

चतुर्थ अध्याय—(यहाँ चौथा अध्याय ही लिखना चाहिए था क्योंकि प्रारम्भ हिन्दी शब्द पहला अध्याय से किया गया है। अतः हिन्दी का ही शब्द प्रयोग वांछनीय था।)

निर्गुण पथ

(1) प्रत्यावतन की यात्रा (2) मध्यम मार्ग, (3) आध्यात्मिक वातावरण, (4) पथप्रदर्शक गुरु, (5) नाम सुमिरण प्रार्थना, (6) शब्दयोग, (7) अन्तद ष्टि, (8) परया अति अनुभूति, (9) समाज की उन्नति।

पचम अध्याय—(इस अध्याय का नामकरण पाचवा अध्याय ही उपयुक्त कारण से उपयुक्त होता।)

पथ का स्वरूप

1 क्या निगुण पथ कोई विशिष्ट सम्प्रदाय है ?

2 क्या निगुण पथ साम्प्रदायिक है ?

पष्ठ अध्याय—(यहा भी छठा अध्याय लिखा जाना चाहिए था) अनुभूति की अभिव्यक्ति।

1 सत्य का साधन।

2 निगुण बानियो का काव्यत्व।

3 प्रेम का रूपक।

4 उलटबासिया।

परिशिष्ट

1 पारिभाषिक शब्दावली।

2 निगुण-सम्प्रदाय सम्बन्धी पुस्तकें।

3 विशेष बातें।

टिप्पणी

1 डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने हिंदू विश्वविद्यालय की डी० लिट० उपाधि के लिए उपर्युक्त शोध प्रबन्ध अंग्रेजी में प्रस्तुत किया था। उन्होंने अपने जीवन-काल मे उसके तीन अध्यायो का हिन्दी रूपान्तर किया था। शेष अध्यायों का अनुवाद प० परशुराम चतुर्वेदी ने किया है। दोनो अनुवादों की भाषा को एकरूपता देने का श्रम डॉ० भगीरथ मिश्र ने उठाया। विश्वविद्यालय से डी० लिट० के लिए स्वीकृत यह प्रथम सत-साहित्य पर विवेचनात्मक कृति है।

2 रूपरेखा में कहीं निगुण-सम्प्रदाय लिखा गया है और कहीं निर्गुण पथ। क्या अनुवादकों ने दोनो का एक-दूसरे का पयाय मान लिया है ? यदि चतुथ और पचम अध्याय, पहले अध्याय के बाद रखे जाते तो चिन्तनक्रम-प्रवाह अबाधित रहता।

स्थान नामो का अध्ययन

व्यक्ति नामा का अध्ययन हि दी शोधप्रब धा का विषय बन चुका है, पर स्थान नामा क अध्ययन की ओर बहुत कम ध्यान गया है। इस प्रकार का अध्ययन टापोनामी के अ तगत आता है। हि दी म डा० उषा चौधरी न मुरादाबाद जिले के स्थान नामा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन किया है। प्रब ध की विस्तृत रूपरेखा क मुख्य अश नीचे दिए जाते हैं—

✓अध्याय 1—मुरादाबाद जिले का सामान्य परिचय (इसक अ तगत क्षेत्रफल सीमा जलवायु कृषि तथा उद्योग, जाति और व्यवसाय जिले का राजनीतिक इतिहास—उसकी सामाजिक आर्थिक, सास्कृतिक तथा धार्मिक स्थिति भाषा— (खडी बोली तथा हिन्दी की अन्य भाषाएँ) खडी बोली का व्याकरणिक विवेचन विवेचित है।)

अध्याय 2—रूप रचना की दृष्टि से स्थान नामा क प्रकार (इस अध्याय के अन्तगत शब्द रचना स्थान नामा का विश्लेषण सरल और यौगिक स्थान नाम, उपसग प्रत्यययुक्त स्थान नाम, सामाजिक स्थान नाम जातिबोधक पूवसयुक्त पद पशुबोधक पूव सयुक्तपद सीमाबोधक सयुक्तपद जलाशय बोधक सयुक्तपद वनस्पतिबोधक सयुक्तपद दिए गए हैं। इसी प्रकार भेद-तत्त्वो की परिस्थिति दी गई है यथा उपाधिबोधक परपद जातिबोधक परपद स्थान बोधक परपद आदि बहुपदीय स्थान नाम वाक्याशमूलक स्थान नाम का विवचन है)

अध्याय 3—स्थान नामो मे प्रयुक्त शब्दावली के अन्तगत प्राचीन भाषा परम्परा स आगत सस्कृत, विदेशी भाषाओ से गृहीत नाम साकर श द तथा शब्दा का आनुपातिक विवचन दिया गया है।

अध्याय 4—स्थान-नामा का अथ की दृष्टि से विवचन भौगोलिक आधार राजनीतिक आधार सामाजिक आधार, धार्मिक आधार सास्कृतिक आधार और प्राकृतिक आधार पर नामो का निर्माण।

अध्याय 5—स्थान नामो का भाषा और ध्वनि सबधी विवचन।

अध्याय 6—उपसहार

परिशिष्ट 1—स्थान-नामा म प्रयुक्त प्रमुख प्रत्यय पूवपद एव परपद युक्त जिले का मानचित्र सख्या ९।

परिशिष्ट 2— सहायक ग्रथ सूची।

12
सामग्री का सकलन—उसके स्रोत

रूपरेखा तयार हो जाने के उपरान्त सामग्री के सकलन का काय प्रारम्भ होता है। उसके स्रोत दो प्रकार के होते हैं—(1) मौलिक (2) अनूदित। शोधकर्ता को मौलिक स्रोतों की खोज करनी चाहिए। 'सामग्री' निम्न स्रोतों से प्राप्त हो सकती है।

(1) प्रकाशित ग्रन्थ—विषय से सम्बन्धित प्रकाशित ग्रन्थों की सूची तैयार कर लेनी चाहिए। कई पुस्तकालयों के अध्यक्ष इतने प्रबुद्ध होते हैं कि वे आपके गृहीत विषय पर प्रकाशित ग्रन्थों की सूची तैयार करने में सहायता दे सकते हैं। विषय के निर्देशक से भी सहायता ली जा सकती है। प्रकाशित ग्रन्थों को पढने का काय तो रूपरेखा तयार करते समय ही हो जाना चाहिए। नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता और बम्बई में दुर्लभ ग्रन्थ प्राप्त हो सकते हैं। हिन्दुस्तानी एकेडमी नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के पुस्तकालयों में हिन्दी का प्राचीन साहित्य प्राप्य है।

(2) अप्रकाशित ग्रन्थ—(हस्तलिखित ग्रन्थ) हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची अच्छे पुस्तकालयों में विद्यमान रहती है। हिन्दी के ग्रन्थों की सूची नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्राप्य है। *'हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का विवरण'* नाम से वह कई भागों में प्रकाशित हुई है। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा आगरा ब्रज साहित्य मण्डल मथुरा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, आदि सस्थाओं ने भी अपने सग्रहालय के अप्रकाशित ग्रन्थों की सूचियाँ छापी हैं। राजस्थान के जैन मदिरों में हस्तलिखित ग्रन्थों का भाण्डार है। श्री अगरचन्द नाहटा का हस्तलिखित पुस्तकों का निजी सग्रह भी दर्शनीय है। यदि शोधार्थी उसका उपयोग करें तो प्राचीन साहित्येतिहास की कई विस्मृत कडियाँ जुड सकती हैं।

हैदराबाद का सालारजग पुस्तकालय सूफी साहित्य और दक्खिनी हिन्दी के अध्येताओं को विपुल सामग्री प्रदान कर सकता है। तजावर (आन्ध्र) ग्रथागार थियासाफिकल लाइब्रेरी आडयार खुदाबख्श लाइब्रेरी पटना बम्बई, धूलिया आदि स्थानों के ग्रन्थागार सावजनिक हैं। इनके अतिरिक्त कई विश्वविद्यालयों में भी हस्तलिखित ग्रन्थों का सग्रह रहता है। उनके केटलाग प्राप्त किये जा सकते हैं। धार्मिक सस्थानों में भी हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ सगृहीत रहती हैं। नाथद्वारा काकरौली (राजस्थान) में वल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियों के हस्तलिखित ग्रन्थों वार्ताओं आदि का अच्छा सग्रह है। सम्प्रदाय के कवियों

के चरित्र लिखने की परिपाटी रही है जो 'वार्ता साहित्य' या परची में सकलित मिलता है। इनमे यद्यपि भक्त का माहात्म्य प्रतिपादित करने के लिए कई चमत्कारी घटनाएँ दी गयी हैं फिर भी उनसे तथ्य निकाले जा सकते हैं। राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थो की सूची भी प्रकाशित हो गयी है। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान सरकारी सस्था है। इसकी कोटा उदयपुर, अलवर जयपुर, टोक और चित्तौड मे शाखाए हैं जहाँ हस्तलिखित पुस्तको का अम्बार लगा हुआ है। विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध सस्थान होशियारपुर का ग्रन्थालय सस्कृत साहित्य के शोधकर्ताओ की बडी सहायता कर सकता है। वहा भी हस्तलिखित ग्रन्थो का बहुमूल्य सग्रह है। देशी रियासतो के राजघरानो के अपने निजी सग्रहालय हैं। इन्हे भी छानने की आवश्यकता है।

दक्षिण के सग्रहालयो मे जो साहित्य मिलता है वह विभिन्न लिपियो मे है। नागरी लिपि की अपेक्षा फारसी तेलुगु तमिल मलयालम, कन्नड आदि लिपियो मे अधिक है। अत इन पुस्तकालयो का उपयोग लिपि विशेषज्ञ की सहायता से ही हो सकता है। पजाब मे जो मध्यकालीन हिन्दी साहित्य गुरुमुखी लिपि मे पाया गया है, उसका नागरीकरण होता जा रहा है।

हस्तलिखित ग्रन्थो को प्राप्त करने मे बडी कठिनाई अनुभव होती है। मराठी के एक पाण्डुलिपि सग्राहक ने मुझे अपने अनुभव सुनाते हुए कहा था कि एक बार मुझे पता लगा कि अमुक स्थान मे एक सज्जन के पास रामदास-कालीन सतो की वाणियो का अच्छा सग्रह है। मैं उनके पास गया। उनसे बहुत अनुनय विनय की कि आप वृद्ध हो गए हैं। ग्रन्थ सस्था को दे दीजिए शोधार्थियो को लाभ होगा। उन्होने पहले तो पाण्डुलिपि होने से ही इन्कार कर दिया फिर बोले—फुरसत मे देखूगा। मैं कई बार उनके पास गया और प्रत्येक बार बोले, 'अहो वेल नाही मिलाला' (अभी समय नही मिला)। उन्होने महीने बाद आने को कहा। इस बीच सुना कि उनका स्वर्गवास हो गया है। मैं उनके यहाँ सवेदना प्रकट करने गया। उनके पुत्रो ने स्वय साश्रु कहा—'बाबा के ये ग्रथ जो उन्होने अपने प्राणो के समान सजोकर रखे हैं मैं सस्थान को भेंट करता हूँ क्योकि हमने देखा था कि आप इन्हे लेने कितने बार आये और बाबा ने नही दिये। एक प्रार्थना है आप इन ग्रन्थो के साथ कही बाबा का नाम अवश्य जोड देना।

कई साम्प्रदायिक सस्थाएँ अपने सम्प्रदाय के व्यक्तियो के अतिरिक्त दूसरे को ग्रन्थ छूने भी नहीं देती। ऐसी स्थिति मे शोधकर्ता असत्य बोलकर भी अपना काम निकाल लेता है या किसी सम्प्रदाय के व्यक्ति का सहारा लेता है। दुर्लभ पाण्डुलिपियो की माइक्रोफिल्म तयार की जा सकती है। लन्दन के ब्रिटिश म्यूजियम तथा इण्डिया लाइब्रेरी मे भी पाण्डुलिपियो और दुर्लभ (प्रकाशित)

ग्र था का सग्रह है। वहा के पुस्तकाध्यक्ष उनकी माइक्रोफिल्म तयार कर भेजने की व्यवस्था भी कर देत हैं। पाण्डुलिपिया को पढने की भी कला है। कई प्राचीन प्रतिया मे अक्षर की आकृति वर्तमान अक्षरा की आकृति से भिन्न मिल सकती है। तिथि सम्वत आदि उल्टे लिखे मिलेंगे—"अको नाम वामतो गति।" कही अक सकेताक्षरो मे मिलेंगे, यथा 4 के लिए वेद, श्रुति आदि। 6 के लिए रस, ऋतु आदि।

(3) रिपोर्ट—समय-समय पर विभिन्न विषया पर शासकीय, अशासकीय रिपोर्टें प्रकाशित होती रहती हैं। प्रतिवर्ष प्रत्येक प्रातीय सरकार अपने प्रात की प्रगति सूचक रिपोर्ट प्रकाशित करती है। उनसे अभीप्सित सामग्री प्राप्त की जा सकती है।

(4) सस्मरण—डायरी, आत्मकथा या यात्रा विवरण लेखकों के पत्र आदि से भी सामग्री प्राप्त होती है। मुगलकालीन इतिहास की सामग्री अकबरनामा, जहागीरनामा आदि से प्राप्त की जा सकती है। हिन्दी मे प्राचीनतम आत्मकथा बनारसीदास की 'अधकथा' के नाम से छप चुकी है। उसम कवि ने अपने समय का अच्छा चित्रण किया है। 'डायरी' लिखने की प्रथा बहुत पुरानी नही है। आत्मकथाएँ बहुत लिखी गयी हैं। कुछ समय पूर्व हिन्दी मे बच्चन की 'प्रवास की डायरी' प्रकाशित हुई है। उससे अग्रेजी-कवि तथा साहित्य की कइ नातव्य बाता का पता लगता है। साहित्य जगत के अतिरिक्त इग्लैण्ड के सामाजिक जीवन की झलक भी उसम मिलती है।

प्रसिद्ध लेखका के पत्रो से तत्कालीन परिस्थितियो तथा लेखक की मनोदशा का पता चलता है। पत्र लिखत समय लेखक स्वच्छदतापूर्वक अपने विचार प्रकट करता है। हिन्दी म आचार्य पर्दासिह शर्मा महावीरप्रसाद द्विवेदी, सुमित्रानन्दन पत के पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। पर 'पन्तजी' के वे ही पत्र प्रकाशित हुए हैं जो उन्होने बच्चन को लिखे हैं। हिन्दी के कुछ लेखक अच्छे पत्र लेखक हैं, माखनलाल चतुर्वेदी, रामवृक्ष बनीपुरी शिवपूजन सहाय, बनारसीदास चतुर्वेदी भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव आदि के पत्रो का प्रकाशन होना चाहिए। 'माधव' के पत्रा म प्रचुर साहित्य छटा है। उनम भावना और भाषा मे मानो होड लगी मिलती है। कई लेखको के पत्र केवल घटना या तथ्य सूचक मात्र होते हैं जस महावीर प्रसाद द्विवेदी के पत्र। पर ऐसे पत्रा का भी महत्व है। हमे हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यसेविया के पत्रा को नष्ट नही होने देना चाहिए।

आधुनिक आत्मकथाओं म महात्मा गाधी की आत्मकथा काफी प्रसिद्ध है। हिन्दी के कुछ लेखका की भी आत्मकथाएँ प्रकाश मे आयी हैं। हाल ही मे बच्चन की आत्मकथा के दो भागो—'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड का पुननिर्माण' की बडी चर्चा रही। उनमे बच्चन ने स्वय अपना एवस रे

किया है। इससे उनके सामाजिक दृष्टि से भद्र और अभद्र दोनों रूप प्रकाश में आये हैं। प्रश्न यह है कि क्या अभद्र रूप, जिसमें उनसे सम्बद्ध जीवित स्त्री पुरुष भी उद्घाटित हुए हैं प्रकाश्य हैं? बच्चन के व्यक्तित्व तथा उनकी कविता के स्रोत को जानने के लिए उनकी सजीली प्रवहमान जीवित भाषा शैली में लिखित उनके आत्मचरित्र सहायक हो सकते हैं।

प्राचीन तथा मध्यकाल के भारत प्रवासी विदेशियों के यात्रा वर्णनों से बहुत-कुछ शोध सामग्री प्राप्त होती है। ऐसे यात्रियों में चीनी फाहियान, मेगस्थनीज, अल्बरूनी आदि के वर्णनों से बहुत-सी काम की बातें ली जा सकती हैं। जनगणना रिपोर्टों में भी भाषा इतिहास आदि की सामग्री मिलती है।

(5) गजेटियर—ब्रिटिश काल में भारत सरकार ने इम्पीरियल तथा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर प्रकाशित किये थे जिनमें ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, भाषिक, साहित्यिक आदि सामग्री विस्तार के साथ दी गयी है। स्वराज्य प्राप्त होने के बाद पुराने गजेटियरों के संशोधित संस्करण प्रकाशित हो रहे हैं। इनसे भी शोधकर्ता अभीष्ट सामग्री प्राप्त कर सकता है। पर इनका उपयोग बहुत सतर्कता से करना चाहिए क्योंकि बहुत-सी सामग्री किंवदन्तियों से संगृहीत है।

(6) पत्र-पत्रिकाएँ—पत्र-पत्रिकाओं के अंकों में भी सामग्री बिखरी पड़ी रहती है। उनका अवलोकन भी लाभप्रद हो सकता है। प्राचीन पत्र-पत्रिकाओं से उपयोगी सामग्री मिल सकती है। छायावाद नामकरण के सम्बन्ध में प० मुकुटधर पाण्डेय का लेख जबलपुर की 'श्री शारदा' में छपा था। हिन्दी की पहली कहानी माधवराव सप्रे की 'छत्तीसगढ़ मित्र' में छपी थी। राष्ट्रीय कविता के विकास को जानने के लिए कानपुर के 'प्रताप' और खण्डवा के 'कर्मवीर', गोरखपुर के 'स्वदेश', आगरा के 'सैनिक', और छायावाद की प्रगति के ज्ञान के लिए कलकत्ते के 'मतवाला' के अंक देखे जाने चाहिए। द्विवेदी युग की साहित्यिक गतिविधि का 'सरस्वती' के अंकों को पढ़े बिना ज्ञान नहीं हो सकता। बाल साहित्य पर काम करने वालों को शिशु 'बालसखा', खिलौना' बालक आदि पत्रों के प्राचीन अंक पढ़ने चाहिए।

(7) हस्तलेख—लोक साहित्य समाज विज्ञान इतिहास आदि विषयों की कुछ सामग्री अप्रकाशित हस्तलेखों से प्राप्त हो सकती है। लोक-साहित्य के अनुसंधाता तो इन्हीं पर निर्भर करते हैं। इतिहास के विस्मृत पृष्ठ [illegible] बड़ों के बस्तों से निकल रहे हैं। सन 1857 की जन क्रान्ति को जिसे अंग्रेज [illegible] और जनता स्वतन्त्रता का प्रथम युद्ध कहती है बहुत कुछ [illegible] बड़ों के युग में प्रकाश में आया है। डा० [illegible] वर्मा ने [illegible] की

रानी' उपन्यास में वर्णित बहुत सी घटनाएँ व्यक्ति स्रोतों से ही प्राप्त की थी।

व्यक्तियों से साक्षात भेंट या पत्राचार द्वारा भी सामग्री प्राप्त की जा सकती है। समाज और भाषा के अनुसंधाताओं को कमरे में बैठकर पुस्तकों के अध्ययन के अतिरिक्त बाहर जन समूह में जाकर भी सामग्री प्राप्त करनी पड़ती है। (इसे अंग्रेजी में 'फील्ड वर्क' और हिन्दी में क्षेत्रीय कार्य कहते हैं)। उन्हें बहुत सी सामग्री प्रत्यक्ष अनुभव से भी प्राप्त करनी पड़ती है। इसमें अपनी आंखों और कानों का उपयोग करना पड़ता है। घटनाओं को प्रत्यक्ष देखने और अन्य व्यक्तियों के मुख से आवश्यक बातें सुनकर सामग्री प्राप्त की जाती है। भाषा या बोली का अध्ययन ऐसे व्यक्ति की सहायता से किया जाता है जो शोधकर्ता तथा अपनी भाषा का ज्ञाता होता है—यानी दुभाषिया होता है। ऐसा व्यक्ति 'सूचक' कहलाता है। सूचकों से कई विषयों के अनुसंधान में सहायता ली जाती है। कई बार एक ही नहीं, कई व्यक्तियों से साक्षात्कार द्वारा तथ्य एकत्र करना पड़ता है। बोली के उच्चारण या शब्दार्थ की पुष्टि के लिए एकाधिक व्यक्तियों का सहयोग अनिवार्य होता है।

13

शोध-सामग्री के स्रोत

पुस्तकालय

शोधकर्ता को अपनी सामग्री एकत्र करने के लिए पुस्तकालय का उपयोग करना आवश्यक होता है। बड़े पुस्तकालय प्रत्येक विषय की पुस्तकों का संग्रह रखते हैं, क्योंकि पुस्तकों के भण्डार से अपने विषय से सम्बन्धित पुस्तकों को छाँटना भी परिश्रमसाध्य कार्य है। कई पुस्तकालयों के पुस्तकालयाध्यक्ष शोधार्थी की इस सम्बन्ध में सहायता करने को भी तत्पर रहते हैं। कुछ विषयों में तो उनकी इतनी अच्छी गति रहती है कि वे तत्सम्बन्धी पुस्तक सूची तक तैयार करा देते हैं। परन्तु ऐसे विशेषज्ञ पुस्तकालयाध्यक्षों की संख्या हमारे देश में कम है। अतः शोधार्थी को अपनी समस्या स्वयं हल करने का प्रयत्न करना चाहिए। पुस्तकालय में जाने से पूर्व उसे यह निश्चय कर लेना चाहिए कि वह वहाँ क्या खोजने जा रहा है, अपने विषय के सम्बन्ध में क्या जानना चाहता है। या तो पुस्तकों के शीर्षक या पृष्ठ पलटने से उसे अभिलषित सामग्री प्राप्त

नही होगी। उसे सवप्रथम अपने विषय की सदर्भ सूची तयार करनी चाहिए। इसमे पुस्तको तथा शोधपत्र-पत्रिकाओ को सम्मिलित करना आवश्यक होता है। यदि सदभ सूची लेकर पुस्तकालय म जाया जाये तो पुस्तका की माँग तुरन्त की जा सकती है।

पुस्तकालय मे पाठय सामग्री (1) पुस्तकों तथा (2) पत्र पत्रिकाओ म विभाजित रहती है। पुस्तका के अतगत विभिन्न विषया की पुस्तकें, पत्रक एव वार्षिक विवरणिकाएँ आती हैं। पुस्तकाल्यो का पता काड कैटलाग से लग जाता है। प्रत्येक काड पर लेखक का नाम, पुस्तक का शीषक, उसका सस्करण प्रकाशक का नाम प्रकाशन तिथि आदि दी रहती हैं। अत म विशेष जानकारी भी दे दी जाती है (यथा पृष्ठ-सख्या, आकार आदि)। 'काड के बाइ ओर काल नम्बर (पुस्तक का वह नम्बर जिससे वह अलमारी म खोजी जा सकती है) रहता है। इसके अतिरिक्त 'लेखक-काड' भी रहता है जिस पर उसकी पुस्तक दज रहती है। यह प्राय प्रत्येक पुस्तकाल्य मे रहता है। यदि पुस्तक के कई लेखक होते हैं तो काड पर सम्पादक का नाम रहता है। पुस्तकालय मे जितने विषयो की पुस्तक होती हैं उन सबके पृथक काड रहते हैं। सभी काड अकारादि क्रम स लगाये जाते हैं।

विभिन्न विषयो के विभाजन की विशिष्ट प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। वे हैं (1) एल० सी० प्रणाली (लाइब्रेरी साइस प्रणाली) और (2) डी० बी० (डेसीमल प्रणाली)। एल० सी० प्रणाली से कई विषयो की पुस्तको का विभाजन करने मे आसानी पडती है परन्तु अधिकाश पुस्तकालयो मे डी० बी० डेसीमल प्रणाली से विभाजन किया जा रहा है। एल० सी० प्रणाली मे ए बी, सी डी से ज़ेड तक पुस्तकें वर्गीकृत होती है।

उदाहरणाथ—ए—सामान्य पुस्तकें
बी—दशन, धम
सी—इतिहास
डी—विश्व इतिहास
ई एफ—अमरीकी इतिहास
जी—भूगोल, नृतत्त्व विज्ञान
एच—समाज विनान
आई—राजनीति विज्ञान
के—विधि
एल—शिक्षा (सामान्य)
एल ए—शक्षिक इतिहास
एल बी—शिक्षा सिद्धान्त

एल सी—विशेष प्रकार

एल डी—यू० एस० स्कूल

डी० वी० डेसीमल प्रणाली के विभाजन का रूप निम्नानुसार है, जो दशमलव स प्रारम्भ होता है।

सामान्य सदभ 000, दशन 100 मनाविज्ञान 200, धम 300, समाज विज्ञान 310 साहित्री 320, राजनीति विज्ञान 340, विधि 350 प्रशासन 360, कल्याण-सस्थाएँ 370 शिक्षा (सामान्य) 370 1, सिद्धान्त और शिक्षा-दशन 370 9 शिक्षा का इतिहास 371, अध्यापक-अनुशासन विधि 400, भाषा विज्ञान 500 प्रकृति विज्ञान 600 उपयोगी कला 700, ललित कला 800, साहित्य 800 इतिहास 900।

पुस्तकालय प्राय दो विभागो अथवा कक्षों म विभक्त रहता है। एक म पुस्तकें और दूसरे म पत्र पत्रिकाएँ सगृहीत रहती हैं। पत्र-पत्रिकाओ से सामग्री चुनने के लिए यदि लेख-सदभ-सूची उपलब्ध हो तो आवश्यक लेख तुरन्त खोजा जा सकता है अन्यथा पत्र-पत्रिकाओ के यत्र-यत्र पृष्ठ उलटने पडते हैं।

हमारे देश म सदभ-ग्रथो की बडी कमी है। पुस्तको के तो सूची-ग्रथ मिल भी जाते हैं पर पत्र-पत्रिकाओं म प्रकाशित शोधपरक लेखो की सूची प्राय नहीं मिल पाती। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से 'प्राची-ज्योति नामक वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन होता है जिसम मानविकी स सम्बद्ध प्राय प्रत्येक विषय पर देश विदेश म प्रकाशित लेखो का सार भाग प्रकाशित होता है। उससे पत्र पत्रिका को खोजन म सहायता मिल जाती थी। हिन्दी म इस प्रकार के सार-सग्रहों (डाइजेस्ट) के प्रकाशन की आवश्यकता है।हिन्दी म नागरी प्रचारिणी पत्रिका, परिषद-पत्रिका सम्मेलन-पत्रिका गवेषणा आदि पत्रिकाओ में समय समय पर जो शोध-सामग्री प्रकाशित हुई है उसकी सूची प्रकाशित होनी चाहिए। इससे शोधकर्ताओ को अपने विषय सदभ सरलता से प्राप्त हो सकेंगे। कतिपय प्रकाशन-सस्थाएँ भी मासिक प्रकाशनाकी सूची द रही हैं। हिन्दी में प्रकाशन समाचार साहित्य-परिचय, राष्ट्रभाषा- प्रकाशन आदि अपनी सस्था के प्रकाशनो के अतिरिक्त अन्य प्रकाशनो की भी सूची देते हैं। दिल्ली के 'प्रकर' तथा पटना की समीक्षा' नामक मासिक पत्रिका में भी विविध विषयो की पुस्तको की समीक्षाएँ प्रकाशित होती रहती हैं।

पुस्तकालयों म शोधार्थी को विश्वकोषों से भी सहायता लेनी चाहिए। अग्रेजी म इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, इनसाइक्लोपीडिया अमेरिका, इनसाइक्लोपीडिया आव रिलीजन एण्ड एथिक्स, इनसाइक्लोपीडिया आव एजूकेशनल रिसर्च, इनसाइक्लोपीडिया आव सोशल साइस। हिन्दी मे बसु का विश्वकोश नागरी प्रचारिणी सभा का विश्वकोश, साहित्यकोश भाग एक और

दो हिन्दी पुस्तक (स्व० माताप्रसाद गुप्त) उपन्यास-कोश (डॉ० गोपाल राय), पुराण-कोश (मेनन) भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र-कोश (चित्राव) भाषा विज्ञान-कोश (भोलानाथ तिवारी) आदि से भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। पुस्तकालयों में सरकारी रिपोर्टों का अध्ययन भी बहुत कुछ सामग्री प्रदान कर सकता है। जनगणना रिपोर्ट जिला के गजेटियर, विविध कमेटियों कमीशनों की रिपोर्ट, यथा राधाकृष्णन् कमीशन शिक्षा रिपोर्ट कोठारी कमीशन रिपोर्ट आदि। नेशनल लाइब्रेरी से प्रकाशित बहुभाषा-पुस्तक सूची से भी सहायता ली जा सकती है।

व्यक्तियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रकाशन तथा साहित्य संस्थाएं व्यक्ति परिचय 'हूज हू' ईयर बुक आदि की सहायता ली जा सकती है। हिन्दी साहित्य-कोश भाग 2 में भी हिन्दी-लेखकों के नाम आदि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। Cumulitive Book Index में अंग्रेजी की 1898 ई० से वर्तमान काल तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची है।

पुस्तकालय में आप जिस पुस्तक की मांग करते हैं यदि वह नहीं होती तो अन्य पुस्तकालय से कुछ समय के लिए उधार मांगी जा सकती है।

शोधार्थियों को हमारे देश के निम्नांकित ग्रंथागारों की सामग्री संकलन तथा परामर्श के लिए उपयोग में लेना चाहिए—

(1) राष्ट्रीय पुस्तकालय (National Library) कलकत्ता—यह स्वाधीनता के पूर्व 'इम्पीरियल लाइब्रेरी' कहलाता था। इसमें भारतवर्ष में प्रकाशित सभी विषयों और भाषाओं की पुस्तकें संगृहीत हैं। यह पुस्तकालय लार्ड कर्जन के कार्यकाल में उन्हीं की प्रेरणा से स्थापित हुआ था। इसे 'कापीराइट लाइब्रेरी' का दर्जा प्राप्त है। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्रत्येक प्रकाशक को अपने प्रकाशनों की निश्चित संख्या में प्रतियाँ अनिवार्यतः भेजना पड़ती हैं। इसका संदर्भ विभाग (Reference Section) शोधकर्ताओं को परामर्श भी देता रहता है। इसमें प्रत्येक विषय के प्राचीन से प्राचीन संदर्भ ग्रंथ संगृहीत हैं जहाँ बैठकर शोधार्थी यथेच्छ सामग्री प्राप्त कर सकता है। पुस्तकालय भारतीय राष्ट्रीय संदर्भग्रंथ-सूची तैयार कर रहा है। इसके कुछ भाग प्रकाशित भी हो चुके हैं।

(2) लोकसभा पुस्तकालय—नई दिल्ली के लोकसभा भवन में यह पुस्तकालय स्थित है। इसे भी कापीराइट लाइब्रेरी का दर्जा प्राप्त है। इसलिए इसमें भी देश की सभी भाषाओं के प्रकाशन अनिवार्यतः प्राप्त होते रहते हैं। यद्यपि इसका उपयोग लोकसभा सदस्य ही अधिकतर करते हैं पर विशेष अनुमति से अन्य व्यक्ति भी इससे लाभान्वित हो सकते हैं। इसी से सन्दर्भ और शोध विभाग भी जुड़ा हुआ है जो शोधार्थियों की समस्याओं को सुलझाने में

सहायता देना रहता है। शासकीय प्रपत्र अभिलेख आदि का अच्छा संग्रह नई दिल्ली के 'नेशनल आर्काइव्ज' में किया मिलता है। यहाँ इतिहास की अलभ्य सामग्री प्राप्त होती है। ब्रिटिश शासनकाल के शासकीय अभिलेखों का अच्छा संग्रह है। हो सकता है कुछ सामग्री अंग्रेजी शासकों ने राजनीतिक कारणों से नष्ट भी कर दी हो, फिर भी बहुत कुछ शोधपरक सामग्री अभी सुरक्षित है। इतिहास और पुरातत्त्व के प्रेमियों और शोधकर्ताओं को इसका उपयोग करना चाहिए। समाजशास्त्र, नतत्वविज्ञान मनोविज्ञान, अंग्रेजी साहित्य आदि विषयों पर शोधकर्ताओं को लखनऊ विश्वविद्यालय के टैगोर पुस्तकालय से हिन्दी, संस्कृत भारतीय पुरातत्त्व विषयों के शोधार्थियों का बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, मुस्लिम इतिहास, बंगला, संस्कृत तिब्बती साहित्य के अध्येताओं को कलकत्ता विश्वविद्यालय, भाषा विज्ञान के अनुसंधाताओं को पूना के डेक्कन कॉलेज, इतिहास प्राचीन साहित्य पुरातत्व के अध्ययनकर्ताओं को भंडारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीटयूट पूना तथा कलकत्ता और बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी पुस्तकालयों का लाभ उठाना चाहिए। प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों का विशिष्ट भाण्डार तंजौर तथा मद्रास के आडयर पुस्तकालयों में है।

हिन्दी साहित्य के अध्येताओं को नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन-पुस्तकालय तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग के ग्रंथ-संग्रहों से लाभान्वित होना चाहिए। भारतीय प्राचीन साहित्य, विशेषकर अंग्रेज-कम्पनी-शासनकाल का साहित्य, ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी तथा इण्डिया-हाउस लाइब्रेरी लंदन में सुरक्षित है। वहाँ की ग्रंथ सूची प्राप्त कर लेनी चाहिए। वहाँ के पुस्तकालयाध्यक्ष आवश्यक सामग्री की 'माइक्रोफिल्म' तैयार कर आपको उचित दाम पर भेज सकते हैं।

14

टीप (NOTES) कैसे ली जाय ?

संदर्भ ग्रंथ पत्र-पत्रिकाएं पढ़ते समय उनसे आवश्यक तथ्य टीप लेने की भी पद्धति है। आपकी दृष्टि जब सर्दभित स्थल पर जम जाय तब आप उसे अपने 'कार्ड' या नोटबुक में उद्धरण सहित टीप लीजिये। टीप कभी लेखक के शब्दों में उद्धरण चिह्न सहित ली जाती है और कभी पदच्छेद (पैरा) या पृष्ठ का सार भाग ही लिया जाता है। ऐसी स्थिति में उद्धरण चिह्न आवश्यक

नही होते, क्योंकि आप अपनी ही भाषा म उसे टीप रहे हैं। कभी-कभी आप उदधत अश पर अपनी प्रतिक्रिया भी टीपते हैं।

टीपने के लिए टीप (नोट)-काड 4"×6 आकार क मिलते हैं। काड पर विपय बिन्दु (टापिक) शीपक रह, उसक नीचे उद्धत वाक्य वाक्य क नीचे क्रमश लेखक का नाम, ग्रथ या पत्र पत्रिका का नाम, सस्करण और पृष्ठ-सख्या रहनी चाहिए। अन्त म यदि आवश्यक समझा जाए तो आप अपनी प्रतिक्रिया भी टीप लें। एक काड के समाप्त होने पर यदि विपय बिन्दु पर टीप करना शप रह गया हो तो दूसरे काड का उपयोग कीजिय और उस पहले कार्ड के साथ नत्थी कर लीजिये। काड म टीपने का नमूना—

> **रामचरितमानस की रचना**
>
> "रामचरितमानस का यथेष्ट भाग काशी म रचा गया था और इसका प्रचार तथा पठन-पाठन या तो सभी जगह है पर अयोध्या और काशी म विशेष रूप से है। रामायण के ये दोनो मुख्य केन्द्र हैं।
>
> —श्री शम्भूनारायण चौबे मानस-अनुशीलन (प्रथम सस्करण), पृ० 8

उपयुक्त काड मे लेखक के वाक्य ज्यो-के-त्यो उदधत हैं।

नीचे काड म मूल लेखक के विचारो को शोधार्थी ने अपन शब्दो म टीप लिया है और नीचे मूल लेखक के ग्रथ का उल्लेख कर दिया है—

> **आधुनिक आय भाषाओं का विकास**
>
> आधुनिक काल मे शौरसेनी अपभ्रश से हिन्दी, राजस्थानी, पजाबी, गुजराती इत्यादि भाषाओ का विकास हुआ मागधी अपभ्रश से बिहारी, बँगला, असमिया उडिया आदि भाषाआ का अध्व मागधी के अपभ्रश से पूर्वी हिन्दी का और महाराष्ट्री अपभ्रश से मराठी भाषा का। विस्तृत विवचन के लिए देखिये—डा० धीरेन्द्र वर्मा कृत हिन्दी भाषा का इतिहास, 1949, भूमिका पृ० 47 18।

नीचे के कार्ड मे शोधार्थी न उद्धृत मत पर अपनी प्रतिक्रिया टीपी है—

काव्य की परिभाषा

1 "वाक्य रसात्मक काव्यम' —विश्वनाथ साहित्यदपण, चौखम्बा सीरीज प्रथम परिच्छेद, पृ० 23 ।

2 "गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न, न भिन्न"
—तुलसी रामचरितमानस, गीताप्रेस—सस्करण, पृ० 72

3 इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली '—दडी काव्यादश, प्रथम परिच्छेद, सूत्र 10

टिप्पणी—उपर्युक्त उद्धरणो में काव्य के सबध मे दो मत प्रस्तुत हुए हैं, एक (दडी का) मत है जो काव्य मे शब्द अर्थात पदावली' का प्रधानता देता है अन्य मत विश्वनाथ और तुलसी क हैं जो शब्द और अथ दोना के समभाव को 'काव्य' मानते हैं। हम तुलसी की व्याख्या तर्क-सम्मत प्रतीत होती है। केवल शब्द और केवल अथ काव्य नही है। दोना के समभाव म ही काव्य का वास्तविक रूप अन्तर्हित है। तुलसी इसी से शब्द और अथ द्वैत की सत्ता मानने को तत्पर नही हैं। निरथक शब्द की वे कल्पना भी नही करते। उन्होने काव्य की अद्वैतवादी ढग से व्याख्या की है।

पत्रिका से टीप लेने की विधि

कला की सफलता

कलाकार अपनी कल्पना को मूत रूप केवल विनोद के लिए नही प्रदान करता बल्कि प्रत्येक कला के साथ एक निश्चित उद्देश्य जुडा होता है और उस उद्देश्य का सम्प्रेषण ही कलाकार का लक्ष्य होता है। किसी कलाकृति की सफलता न तो केवल उसके पीछे जुडी कल्पना में है और न शिल्पकारिता म है। उसकी सफलता ता इन दोना के सहयोग से सम्प्रेषित उद्देश्य म निहित है।'

—श्री चन्द्रेश्वरी तिवारी—कला का स्वरूप, परिषद पत्रिका (पटना) जनवरी 1966 ई०, पृ० 95 ।

यह मान्यता है कि उद्धरण विषय विशषज्ञ के विचारो के होन चाहिए और शोधपत्र पत्रिकाओ म प्रकाशित लेखा का उपयोग करना चाहिए। पर कभी कभी साप्ताहिक पत्रा म भी शोधपरक सामग्री छप जाती है। यदि अप्रसिद्ध लखक भी कोई नयी बात कही प्रकाशित करता है तो वह उपेक्षणीय नही होनी चाहिए। विचारो का नावीन्य या उनकी शोधपरकता का महत्त्व है, लेखक या पत्र-पत्रिका का नही। कई बार शोधार्थी प्रसिद्ध लखको के सामान्य विचारो का भी उदधन कर दता है केवल इस भ्रम म कि प्रबन्ध मे उद्धरण की बहुलता से उस गम्भीरता प्राप्त होगी। गम्भीरता उद्धरण की भरमार से नही विषय सामग्री की विश्लेषण पटुता स सिद्ध होती है।

प्रत्यक काड पर विषय का शीषक रहना चाहिए और एक विषय (टापिक) के सब काड साथ नत्थी कर लेने स अध्याय लिखन म सरलता हो जाती है। यदि पुस्तकालय की पुस्तक से उद्धरण लिया गया हो तो काड के कोन म उसका 'काल नम्बर' भी टीप लेना चाहिए जिससे यदि उसकी पुन आवश्यकता पड तो आसानी से खोजी जा सक। एक काड पर एक ही विषय (टापिक) की टीप होनी चाहिए। जो टीप ली जाय वह अधूरी न हो और स्पष्ट शब्दो म सावधानी स लिखी गयी हो, जिससे दुबारा स्रोत पुस्तक या पत्र पत्रिका को खोजने की झमट न रहे। अपने टीप के काड की स्थायी फाइल बनाइये क्योकि उनका 'प्रबन्ध' के प्रस्तुतीकरण के पश्चात भी कभी किसी लेख म उपयोग लिया जा सकता है।

यदि टीपन की काड विधि का प्रयोग न करना चाहे तो छोटी छोटी कापियो स काम चलाइये। प्रत्येक कापी म काड के समान ही टीपने का काय कीजिये।

पुस्तकालय मे आप जब जायें तब अपने साथ एक नोट-बुक अवश्य रखें और उसम आवश्यक सामग्री टीप लें। घर जाकर उसे 'काड' या कापी म यथास्थान उतार ल।

15

तथ्य-सचय का साधन—
साक्षात्कार अथवा सलाप

इतिहास के विस्मृत तथ्य भाषा की प्रकृति तथा वर्तमान समस्याओ पर विशिष्ट व्यक्तियो के विचारो को जानने का साधन सम्बन्धित व्यक्तियो का साक्षात्कार है। जिस व्यक्ति से साक्षात्कार करना हो उसे अपने आने की पूर्व सूचना देनी चाहिए। उसे साक्षात्कार के उद्देश्य से अवगत ही नही कराना चाहिए वरन उसे अपने प्रमुख प्रश्नो की प्रति भी भेज देनी चाहिए जिससे वह आपके प्रश्नो का उत्तर भी तैयार रखे। कई बार साक्षात्कारकर्ता बिना सूचना दिये ही पहुँचकर कहने लगते हैं, क्षमा कीजिये मैं आपका कुछ समय लेना चाहता हूँ। आपसे अमुक विषय पर चर्चा करना चाहता हूँ। चूकि आपने 'व्यक्ति' को पूर्व सूचना नही दी थी इसलिए वह आपको निराश भी कर सकता है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति अपने दैनिक निर्दिष्ट कार्य मे व्यस्त रहता है। अत आपके एकदम धमक पहुँचने पर वह आपके प्रश्नो का उत्तर देने को तैयार नही होता। वह या तो भुझला उठता है या झुझलाता नही है तो आपको ही शब्दो का दुहरा देता है 'क्षमा कीजिये आज तो मुझे समय नही है, आप अमुक दिन आइये।" निराशा से बचने के लिए आपको पूर्व सूचना तथा अपनी समस्या की पूर्व तैयारी के साथ व्यक्ति के पास जाना चाहिए। व्यक्ति के पास पहुँचकर आपको उसके प्रति विनम्रता और आदर का भाव प्रदर्शित करना चाहिए। श्रद्धावान लभते ज्ञानम —बिना श्रद्धा के ज्ञान प्राप्त नही होता यह सनातन सत्य है। आप प्रश्न इस ढग से न पूछें कि व्यक्ति यह समझ बैठे कि आप उसके ज्ञान की परीक्षा ले रहे हैं। वह आपके प्रश्नो का जो भी उत्तर दे उसे या तो भलीभाति स्मरण रखें या उसी के सामने कागज़ पर टीप लें। साक्षात्कार की समाप्ति पर आप अपनी टीप को उसे सुना या पढा दें और उसके हस्ताक्षर ले लें साथ ही उनसे उसे प्रकाशित करने की अनुमति भी प्राप्त कर लें। शिक्षित व्यक्ति का साक्षात्कार निर्बाध हो सकता है और सबाध भी। यह साक्षात्कार देने और देने वाले के स्वभाव पर निर्भर करता है। यदि आप साक्षात्कार देनेवाले से जिसे हमने 'व्यक्ति' कहा है सौहार्द स्थापित कर सकें तब तो आपके प्रश्न चाहे जितने उलझे या अस्पष्ट होगे वह उनको प्रतिप्रश्नो के द्वारा स्पष्ट करवा लेगा और आपको आवश्यक जानकारी दे देगा। यदि व्यक्ति का स्वभाव चिड़चिड़ा होगा तो आपको

उससे एक ही बैठक में सारी बातें प्राप्त नहीं हो पायेंगी। आपको उससे एकाधिक बार भेंट करनी होगी या उसके किसी सम्बन्धी या मित्र के माध्यम से उसके पास जाना होगा। अपरिचित व्यक्ति के साक्षात्कार में परिचित मित्र की सहायता से शीघ्र कार्य सिद्धि हो जाती है।

यदि साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति अशिक्षित है तब उससे तथ्य की बात निकालने में कई बार कठिनाई होती है। वह आपको या तो कोई सरकारी अफसर समझकर बिदक सकता है या कोई भेदिया समझकर उत्तर देने में संकोच कर सकता है। लोक साहित्य के अनुसंधाता को ऐसे व्यक्तियों से साक्षात्कार करने में इसी प्रकार की कठिनाई पड़ती है। अतः उनका कार्य परिचित व्यक्ति की सहायता के बिना सम्पन्न नहीं हो पाता। समसामयिक शोध में साक्षात्कार (Interview) अनिवार्य हो जाता है। समाज विज्ञान, भाषा विज्ञान, इतिहास आदि विषयों के शोधार्थियों को साक्षात्कार या सलाप कला का ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है और इस कला का ज्ञान बहुत कष्टसाध्य नहीं है। जरा अपने स्वभाव में मृदुता और नम्रता लाइये तथा समालाप्य (Interviewee) के पास पूर्ण तैयारी के साथ जाकर उसकी तत्कालीन मनोवृत्ति को भाँपकर उसके अनुरूप आचरण कीजिये और उसे यह अनुभव कराइये कि आप उसे ही विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपयुक्त समालाप्य मानते हैं। जरा मनोविज्ञान का सहारा लीजिये—श्रद्धा दीजिये, ज्ञान लीजिये इस गीतोक्त मन्त्र को न भूलिये।

कुछ विषय ऐसे होते हैं जिनमें एक ही व्यक्ति का साक्षात्कार अलम' नहीं होता। एक व्यक्ति के साक्षात्कार से प्राप्त तथ्यों की सपुष्टि के लिए एकाधिक व्यक्तियों के साक्षात्कार की भी आवश्यकता पड़ सकती है। समालाप के समय एक बात का ध्यान अवश्य रखा जाए कि समालाप्य के शिक्षा के स्तर के अनुरूप ही वार्तालाप की भाषा का रूप हो जिससे वह आपके प्रश्नों का ठीक आशय समझ सके। उदाहरणार्थ आप नई कविता की सम्प्रेषणीयता के सम्बन्ध में किसी सामान्य पढ़े लिखे व्यक्ति की सम्मति लेना चाहते हैं। आप उससे पूछ बैठते हैं—"आप आज की कविता के किन हस्ताक्षरों की रचनाओं से प्रभावित होते हैं ? वह काव्य प्रेमी तो है पर आज की नयी शब्दावली से परिचित नहीं है। अतः वह आपके प्रश्न के अर्थ को तब तक सोचता ही रहेगा जब तक आप स्वयं उसका अभिधा में अर्थ न बता दें। आप 'नये हस्ताक्षर' के स्थान पर नये कवि का प्रयोग करते तो आपको तुरन्त उत्तर मिल जाता। तात्पर्य यह कि आपको अपने समालाप्य या प्रश्नों में ऐसी शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए जिसे सलाप्य सहज समझ सके।

सलाप यदि टेप में भर लिया जाय, (रिकार्ड कर लिया जाये) तो वह

शत प्रतिशत प्रामाणिक होगा। पहले हमने 'सलाप' को टीपकर सलाप्य के हस्ताक्षर लेने का सुझाव दिया था, पर यह आवश्यक नही है कि प्रत्येक सलाप्य शिक्षित हो ही। ऐसी दशा मे सलाप या भेंट वार्ता का 'टेप रिकाड' कर लेना ही अधिक उपयोगी होगा। शिक्षित सलाप्य व्यक्ति को भी अपनी 'वार्ता' का 'टेप' मे रिकाड करवाना अधिक रुचिकर होगा। वार्ता की समाप्ति पर आप 'टेप' चलाकर उसे उसकी ही आवाज म उसकी 'वार्ता' सुना दीजिये। वह चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित, प्रसन्नता से उत्फुल्ल हो उठेगा।

शोधकर्ता को यो तो सलाप्य से अधिक बहस नही करनी चाहिए पर कभी-कभी बहस या जिरह की आवश्यकता पड जाती है।

सामाजिक शोध म सम्बन्ध विच्छेद (Divorce) के कारणो को जानने के लिए जब शोधार्थी किसी महिला के पास जाता है तो उसे बडी कठिनाई अनुभव होती है। पहले तो वह सत्य बात छिपाती है पर सलापक के पुन -पुन उलट-पलटकर प्रश्न करने पर वह भाव-प्रवण हो सत्य कह उठती है। इसी प्रकार का एक 'सलाप' गूडे और हटन की 'मेथड ऑफ सोशल रिसच' से उद्धृत किया जाता है—

"Interviewer—Were there any times where you felt you did not play fair with your husband ?

Respondent—Never, I always played square with him I never ran round on him until after divorce.

Interviewer—Pardon me, but I'd like to be certain I have this correct You say that you did not date until after divorce ?

Respondent—That's right I was a good wife and I thought that would be immoral

Interviewer—Then I must have written down same thing earlier that was not correct and did you not mention earlier that your main activity when you were separated was dating ?

Respondent—(Exitedly) well I never considered that real running around Dick was like one of the family, a good friend of ours even while we were married (I-tears) Any way after what he was doing [illegible] I figured I had the right to do any thing I wanted.

Interviewer—Just what was he doing ?

Respondent—Well, I said a while ago that we got divorced because we just did not get along but that is not right The truth was, he started to run around with my kid cousin who was only seventeen at the time, and got her in trouble O h it was a big scandal in the family, and I felt horrible about it (Page 205)

यहा यदि सलापक ने सलाप्य महिला के प्रथम कथन पर विश्वास कर उससे आगे जिरह न की होती तो सम्बन्ध विच्छेद के सत्य कारण की बात प्रकाश म न आती। अत कभी-कभी सलाप्य से जिरह भी करनी पडती है।

कभी-कभी सलाप्य आपके सलाप म इतनी अधिक रुचि लेने लगता है कि आपको आपके प्रश्नो के अतिरिक्त अधिक जानकारी दे देता है और आप तो सलाप के पश्चात उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, वह भी आपके प्रति कम कृतज्ञ नही होता क्योकि आपने उसे महत्त्व दिया और उसके विचारो को प्रकाश म लाने का सकल्प व्यक्त किया। अपने शोध प्रबन्ध मे आप उसका उल्लेख करेंगे। उसके सलाप को 'प्रबन्ध म उदधृत करेंगे, यह उसके लिए कम प्रसन्नता का विषय नही हो सकता। सलाप के पश्चात् वह आपको 'जलपान सहित 'पुनरागमनाय च कहकर विदाई भी दे सकता है।

16

तथ्य एकत्र करने के साधन

(अ) तालिका (Schedule)
(आ) प्रश्नावली (Questionnaire) और
(ई) अभिमत पत्र (Opinionnaire)

विषय की सामग्री एकत्र करने के अनेक साधना म परिपृच्छा प्रपत्र भी एक साधन है। य प्रपत्र तालिका (Schedule) प्रश्नावला (Question naire) और अभिमत पत्र (Opinionnaire) का रूप धारण कर सकते हैं। जब व्यक्ति (शोधार्थी) प्रश्नकर्ता के सम्मुख ही प्रपत्र म प्रश्ना का उत्तर भर लेता है तो वह पत्र तालिका और जब प्रपत्र डाक द्वारा व्यक्ति के पास भेज जाते हैं तो वह प्रश्नावली और जब केवल व्यक्ति की सम्मति मागा

जाना है तो उसे 'अभिमत पत्र' कहा जाता है। शभिक शोध म तालिका प्रणाली का बहुतायन से प्रयाग किया जाता है। अय विषया की शोध में भी प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता आमने-सामने रहते हैं। तब प्रश्नकर्ता को अपने प्रश्ना के उत्तर प्राप्त करने म बडी सुविधा हो जाती है। वह बडी आत्मीयता से तथ्य एकत्र कर लेता है। डाक द्वारा प्रपत्र भेजने पर या ता समय पर उत्तर नहीं मिलता या मिलता है तो अपूर्ण मिलता है, या कभी-कभी नहीं भी मिलता। अत किसी समस्या को समझने के लिए प्रत्यक्ष प्रपत्र भराने की प्रणाली अधिक सुविधाजनक है। क्योंकि यदि उत्तरदाता प्रश्न का ठीक अथ नहीं समझ पाता तो शाधार्थी उसी समय उसका स्पष्टीकरण कर लेता है। डाक से भेजे गये प्रश्ना म कुछ प्रश्न उत्तरदाता के लिए प्रश्न ही बने रह सकते हैं।

(अ) प्रश्नावली

शोधार्थी जब दूरस्थ व्यक्ति से अपनी समस्या के समाधान के लिए प्रश्ना का प्रपत्र भेजता है, तब उसे निम्नलिखित बाता की सावधानी बरतनी चाहिए।

(1) प्रश्न स्पष्ट हा, उनकी शब्दावली भ्रामक न हो। उदाहरणार्थ—यदि आप किसी की अवस्था जानना चाहते हैं तो 'आपकी आयु क्या है ?' यह प्रश्न ठीक न हागा क्योंकि 'आयु' शब्द तो सम्पूर्ण जीवनकाल का द्योतक है। हम आयु के स्थान पर अवस्था शब्द का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही प्रश्न का उत्तर अनिश्चित भी हो सकता है, अत आपको पूछना चाहिए कि 'आपका जन्म किस तिथि-सवत् या तारीख वर्ष मे हुआ ?"

इसी तरह यदि आपका प्रश्न है—'आप प्रतिबद्धता से क्या समझते हैं ?' तो बहुत स्पष्ट नही होगा। आपको पूछना चाहिए—आप साहित्यकार की प्रतिबद्धता का क्या अथ लगाते है ?'

(2) प्रश्नावली बहुत लम्बी न हो—लम्बी प्रश्नावली का उत्तर देने में व्यक्ति अलसा सकता है। यदि देगा भी तो विलम्ब मे देगा और [illegible] में देगा।

(3) प्रश्न ऐसा न हो कि जिसका उत्तर एक लघु [illegible] धारण कर ले। उदाहरणार्थ—यदि आप पूछें कि 'काव्य का [illegible] म संस्कृत आचार्यों के मत से आप कहाँ तक सहमत है ? [illegible] नयी कविता का मूल्यांकन कर सकता है ?' तो इसका उत्तर [illegible] सकता है।

छन्द की प्रयुक्ति आवश्यक समझते हैं ? यदि समझते हैं तो क्यों ? उत्तरदाता छन्द की आवश्यकता-अनावश्यकता पर कुछ विस्तार के साथ अपना मत प्रकट करेगा।

(5) आप प्रश्नकर्ता से ऐसे प्रश्न न पूछें जिनका उत्तर ग्रन्थों से उपलब्ध हो सकता है। यदि आप उत्तरदाता का मत किसी ऐसे विषय पर जानना चाहते हैं जिसका उत्तर उसने पहले किसी ग्रन्थ पत्र पत्रिका में प्रकाशित कर दिया है तो फिर उससे उसी विषय पर प्रश्न पूछना अनावश्यक है। यदि आप प्रकाशित मत का स्पष्टीकरण चाहते हों तो डाक द्वारा सम्भवत आपका अभीष्ट सिद्ध न हो। आपका प्रत्यक्ष भेंट के माध्यम से अपनी शंकाओं का निवारण करना अधिक उचित होगा।

(6) एक ही प्रश्न में कई प्रश्नों को नहीं भर देना चाहिए।

(7) प्रश्न मनोवैज्ञानिक क्रम से हों—सामान्य से विशेष की ओर।

निम्नानुसार प्रश्नों का क्रम ठीक नहीं है—

1 छायावाद के प्रमुख कवि आप किन्हें मानते हैं ?
2 प्रयोगवाद के प्रमुख कवि कौन हैं ? आप छायावाद का क्या अर्थ समझते हैं ? रहस्यवाद और छायावाद में क्या भेद है ?
3 प्रयोगवाद का प्रवर्तक आप किसे मानते हैं ?
4 प्रगतिवाद क्या छायावाद की प्रतिक्रिया है ?

प्रश्नों को निम्नलिखित क्रम से रखा जाना उचित होगा—

1 छायावाद का आप क्या अर्थ समझते हैं ?
2 छायावाद और रहस्यवाद में क्या अन्तर है ?
3 छायावाद के प्रमुख कवि आप किन्हें मानते हैं ?
4 क्या प्रगतिवाद छायावाद की प्रतिक्रिया है ?
5 आप प्रयोगवाद का प्रवर्तक किसे मानते हैं ?
6 आपके मत से प्रयोगवाद के प्रमुख कवि कौन हैं ?

हिन्दी-काव्य की ऐतिहासिक प्रवृत्ति के अनुसार उपर्युक्त प्रश्नावली अधिक वैज्ञानिक है।

प्रश्नावली के प्रकार

पाश्चात्य शोध शिल्पियों ने प्रश्नावली के प्रकार भी निर्दिष्ट किये हैं। गूडे और हट्ट उसके मुख्यत दो भेद करते हैं—(1) संरचनात्मक और (2) असंरचनात्मक। संरचनात्मक प्रश्नावली बहुत सोच समझकर समस्या सम्बन्धी ठीक उत्तर प्राप्त करने की दृष्टि से रची जाती है जो असंदिग्ध और निश्चित

शब्दो म व्यक्त होती है। उत्तरदाता से विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए मुख्य प्रश्नो के अतिरिक्त गौण प्रश्न भी जुडे रहते हैं। उदाहरणार्थ, नयी कहानी के तत्त्व (आज की भाषा मे तेवर) क्या हैं ?' यह प्रश्न स्पष्ट है, पर प्रश्नकर्ता इस सम्बन्ध म उत्तरदाता से और अधिक जानकारी प्राप्त करने लिए पूछ सकता है—'नयी कहानी और पुरानी कहानी' म आपको क्या भेद दृष्टिगोचर होता है ? क्या कहानी का नया-पुराना भेद उचित है ?

असंरचनात्मक प्रश्नावली मे उत्तरदाता मनमाना उत्तर देने मे स्वतन्त्र रहता है क्योकि आपके प्रश्न किसी समस्या या विषय बिन्दु पर निश्चित रूप स शब्दायित नही रहते। इस प्रकार की प्रश्नावली पूर्व-संरचित नही होती। प्रश्नकर्ता प्रश्नो के कच्चे नोट लिख लेता है और स्वय उत्तरदाता के पास पहुचकर उत्तर प्राप्त करता है। चूकि प्रश्नावली प्रणाली का साक्षात्कार नही होता, अत असंरचनात्मक प्रणाली का भेद ही व्यर्थ है।

प्रश्नावली बहुत सावधानी स तयार करन के उपरान्त उस अपने मित्रो को दिखलादय जिसस वे प्रश्नो की अस्पष्टता की ओर आपका ध्यान खींच सकें। विषय का ज्ञान होने से आप प्रश्न के अन्तर्हित भाव को समझे रहते हैं [illegible] प्रश्न आपको अस्पष्ट प्रतीत नही होते पर आपके मित्र सन्दर्भ स [illegible] रहने के कारण कह सकत हैं कि प्रश्न की भाषा एसी है जो प्रश्न [illegible] ठीक ठीक व्यक्त नही करती।

बहुधा प्रश्न ऐसे व्यक्तियो के पास भेज दिये जाते है [illegible] नही होते साहित्य या अन्य क्षेत्रो म लब्धप्रतिष्ठ मान [illegible] म यदि उत्तर प्राप्त होता है तो उसस आपको विशेष [illegible] सकती। लुण्डवर्ग ने प्रश्नावली' के द्वारा तथ्य एकत्र करने [illegible] साक्षात्कार-पद्धति से अधिक महत्त्व इसलिए दिया है [illegible] बहुत बार उत्तरदाता कुछ प्रश्नो के उत्तर देने मे सकोच [illegible] उन्ह लिख भेजने म वह मुक्त रहता है। इसीलिए [illegible] समूह कहता है उत्तरदाता को अपनी बात कहने का [illegible]

शोधार्थी को प्राप्त उत्तरो का तटस्थ भाव स [illegible] उत्तर उसकी विषय परिकल्पना के विरुद्ध पडते हैं तो [illegible] करनी चाहिए। यदि अन्य स्रोतो स भी ऐसे तथ्य [illegible] पूर्व निर्धारित परिकल्पना का खडन करते हैं तो [illegible] कल्पना और परिणामत रूप रखा म यथोचित [illegible]

प्रश्नावली के कई उपभेद भी किये गये हैं। [illegible]

(1) सीमित प्रश्नावली—इसम प्रश्न क [illegible]

अंकित रहते हैं। उदाहरणार्थ, उत्तरदाता किसी एक पर स्वीकारात्मक चिह्न लगा देता है, दूसरे को काट देता है।

प्रश्न	उत्तर
(1) क्या आप कहानी म कथातत्व की आवश्यकता अनुभव करते हैं ?	हाँ नहा
(2) क्या साहित्य म जीवन का यथार्थ चित्रण होना है ?	नहीं हाँ
(3) क्या सभी नाटका का रगमचीय होना आवश्यक है ?	हाँ नहीं

(2) अप्रतिबंधित अथवा असीमित प्रश्नावली—यह ठीक सीमित प्रश्नावली क विरुद्ध प्रणाली है। इसम प्रश्न तो रहते हैं पर उत्तर नही सुझाय जाते। उत्तरदाता प्रश्न का विस्तार के साथ भी उत्तर दने म स्वतन्त्र है। वह उपयुक्त सीमित प्रश्ना के उत्तर देते समय वतमान साहित्यिक प्रवृत्तिया का आलोचनात्मक उत्तर भी दे सकता है।

(3) मिश्रित प्रश्नावली—इसम सीमित-असीमित दोनो प्रकार के प्रश्न तयार किय जात हैं। सामाजिक सर्वेक्षण म इसी प्रणाली से काय किया जाता है।

प्रश्नावली प्रणाली से लाभ-हानि

प्रश्नावली भेजकर तथ्य प्राप्त करने मे सबसे बडा लाभ समय और द्रव्य की बचत है और दूसरा लाभ यह है कि उत्तर से प्राप्त मत का दायित्व उत्तर दाता पर रहता है। जब व्यक्ति अपने विचारो को लिपिबद्ध करता है तब वह अधिक सतकता वरता है। इस तरह शोधार्थी तटस्थ भाव से व्यक्ति के विचारो का उपयोग करने म समथ होता है।

इस प्रणाली की सीमाएँ भी हैं—प्रश्नावली केवल शिक्षित और अधिकारी व्यक्तिया को ही भजी जा सकती है जो उत्तर देने के लिए बाध्य नही हैं। यदि देता है तो यह आवश्यक नही कि वह खुलकर अपने विचार व्यक्त करे ही। बोलचाल की भाषा म वह सकते हैं—वह अपने हाथ नही कटाना चाहेगा। अत यदि आपको विशिष्ट व्यक्ति के विचार जानना अनिवाय प्रतीत होता हो तो आपको प्रत्यक्ष साक्षात्कार विधि को अपनाना होगा।

कभी कभी उत्तरदाता की अवाच्य लिपि भी कठिनाई उपस्थित कर देती है। मैं अपना ही उदाहरण आपको दे रहा हू। एक बार हालण्ड क एक विश्व विद्यालय के एक शोधार्थी ने मुझसे कुछ प्रश्न पूछे थे। मैंने उनका उत्तर अपन

हस्तलेख द्वारा भेज दिया था। कुछ समय बाद उनका पुन पत्र आया जिसमे उन्होंने मेरे हस्तलेख की अस्पष्टता के कारण विचारो को जानने मे बडी कठिनाई अनुभव की।

17

सामग्री-सग्रह का साधन—प्रेक्षण-पद्धति
(Observation Method)

शोध के कुछ विषय ऐसे हैं जिनकी सामग्री प्रत्यक्ष देखने पर अधिक विश्वसनीय समझी जा सकती है। समाजशास्त्र भूतत्वविज्ञान व्यावहारिक भाषाविज्ञान, लोक-साहित्य आदि से सम्बद्ध विषयो मे पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा चाक्षुष ज्ञान की उपयोगिता असदिग्ध है। प्रेक्षण पद्धति को हम चाक्षुष पद्धति भी कह सकते है क्योकि इसमे 'चक्षु' का माध्यम प्रमुख है। किसी जाति या सम्प्रदाय के सामाजिक जीवन का अध्ययन प्रश्नावली पद्धति से सम्यक रीति स नही किया जा सकता। शोधार्थी को समाज के अनुसधेय अग के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करना पडता है। यदि हलवा समाज और उसकी भाषा का अध्ययन हमे अभीष्ट हो तो हमे उससे सम्बंधित प्रकाशित अप्रकाशित ग्रथो के अध्ययन मात्र से सतोष नही मान लेना चाहिए। हम हलवा समाज के बीच रहकर उनके रहन-सहन और भाषा से परिचित होकर अपने अनुभूत निष्कर्ष निकालने चाहिए।

प्रेक्षण दो प्रकार के होते हैं—(1) अनियन्त्रित और (2) नियन्त्रित। अनियन्त्रित प्रेक्षण भी दो प्रकार के होत हैं। एक म तो शोधार्थी समाज क बीच रहकर उसके क्रिया-कलाप का सहभोगी बनता है। भारत म अमरिका के कई समाजशास्त्रीय शोधकर्ता भारतीय परिवारो मे महीनो रहकर उनके सामाजिक जीवन के प्रत्येक अग से परिचित हो जाते हैं और अपने विषय की प्रामाणिक सामग्री एकत्र कर लेते हैं। दूसरे प्रकार मे शोधार्थी अध्येय समाज के साथ सम्पर्क तो स्थापित करता है पर उसक कायकलाप म सहभागी नहीं बनता। उसकी जलाम्बुज जसी स्थिति रहती है। वह समाज के व्यक्तियो के रहन-सहन आदि का तटस्थ भाव से अध्ययन करता है। पर क्या समाज के बीच रहकर भी उससे सवथा विलग रहा जा सकता है ? कहावत है 'काजर की कोठरी म कैसो ह सयानो जाय, एक लीक काजर की लागि है प लागि है।"

परिवार के सम्पर्क म आन पर उसके कुछ यक्तियो से रागात्मक सम्बन्ध भी स्थापित हो ही जाता है। अत प्रेक्षण की अनियन्त्रित पद्धति के दो उपभेद अनावश्यक से प्रतीत होते है।

नियन्त्रित प्रेक्षण—योजनाबद्ध होता है। प्रेक्षक सामाजिक घटनाओ म से उ ही तक अपने को सीमित रखता है जिनका उसके विषय से सम्ब ध है। वह अनुसूची तैयार कर उसम निरीक्षित तथ्य को स्वय दज करता जाता है। अनुसूची म दज करने के अतिरिक्त डायरी का भी प्रयोग किया जा सकता है। दष्टश्रुत वस्तु को फोटो फिल्म टेप रिकाडर आदि क माध्यम स सचित किया जा सकता है और करना भी चाहिए। सामाजिक सर्वे—शोधकाय म कभी एक ही "यक्ति और कभी एकाधिक व्यक्ति पृथक पृथक अवलोकन कर अपने निष्कष प्रस्तुत करते है। इससे तथ्य अधिक प्रामाणिक बन जाते हैं। एक व्यक्ति का निरीक्षण आत्मपरक (Subjective) हो सकता है। परिणामत निष्कष म उसका अपना दष्टिकोण झलक सकता है। सामूहिक निरीक्षण के निष्कर्षों का तुलनात्मक परीक्षण होना है और जो निष्कष बहुमा य पाया जाता है उस ही अ तिम रूप दिया जाना है। यह काय के द्रीय शोध सस्थान द्वारा सम्पन्न हो सकता है।

जीवित भाषा के अध्ययन म प्रक्षण पद्धति का अच्छा उपयोग हो सकता है। ग्रथो से भाषा का अध्ययन दोषपूण भी हो सकता है। आंखो स वक्ता की भाव भगी और कानो स उसकी बोली की ध्वनियाँ ग्रहण होती हैं। भाषा के उच्चारण म आठ किस प्रकार विवत या सवत होत हैं, यह मात्र प्रेक्षण' द्वारा सहज ग्राह्य हो जाता है। यो भी छोटे बच्चे सम्पक मात्र से ही कोई भी भाषा सीख लेत हैं।

× × ×

प्रेक्षण प्रणाली मे कुछ दोष भी हैं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रक्षण नेत्रा द्वारा होना है। हम उ ही वस्तुओ और दृश्या को देखने का उत्सुक रहत हैं जो हम प्रिय हाते हैं। अत अप्रिय घटनाए या दश्य, जा समाज म विद्यमान रहत हैं उनकी ओर हमारी आँखें जाकर भी लौट आती है। हमारी प्रवत्ति उनपर उ ह ठहरने ही नहा देती। कहन का आशय यह कि प्रे ाण पद्धति म आत्मपरकता बाधा बनती है प्रेक्षक क रूढ सस्कार उसक निरीक्षण परीक्षण को प्राय वस्तुनिष्ठ नही रहन दत उसम पक्षपात आ सकता है। आप समाज विशष क जीवन का अध्ययन करने जब परिवार क साथ उसी का अग बनकर रहन लगत हैं तो परिवार क व्यक्ति यह जानकर कि आप उनक रहन सहन का अध्ययन करन क लिए आय हैं अपन व्यवहार म स्वाभा

हैं। ऐसी स्थिति मे आपके अध्ययन का परिणाम वास्तविकतापरक नही हो पाता।

18

सचित सामग्री की प्रामाणिकता की परीक्षा

विभिन्न स्रोतो म सचित सामग्री की प्रामाणिकता की परीक्षा आवश्यक है। जिस प्रकार हस्तलिखित ग्रथो मे लेखन प्रमाद दष्टिगोचर होते हैं उसी प्रकार मुद्रित ग्रथा म भी लेखन और मुद्रण प्रमाद की अवस्थिति पायी जा सकती है। कभी लेखक अपने पूववर्ती लेखक की भूल को दुहरात जात हैं और कभी अपने व्यक्तिगत विश्वासा के आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुचत हैं। उदाहरणाथ, एक प्रगतिवादी समीक्षक ने तुलसी की रचनाओ म प्रगतिवाद' को आरोपित कर दिया। यह सत्य है कि कवि कालजयी होता है। वह अपने युग तक सीमित न रहकर आने वाले युगों की आकाक्षाओ को भी ध्वनित कर देता है, पर उसे किसी वाद से बाधने मे समीक्षक की दष्टि 'वाद ग्रह गृहीत' होती है। भाषा विज्ञान, व्याकरण और अन्य शास्त्रीय ग्रथो का अशुद्ध मुद्रण भी भ्रातिजनक होता है। एक मात्रा की कमी या वद्धि से भाषा के रूप की गलत धारणा बन जाती है। उदाहरणाथ, छत्तीसगढी बोली मे मन प्रत्यय से बहुवचन बनता है। यदि पुस्तक म 'मन के स्थान पर 'मान छप जाए तो भाषा की प्रवत्ति का गलत रूप प्रस्तुत हो जायेगा। शोधार्थी को अन्य स्रोता से भी शुद्ध रूप को जान लेना चाहिए।

शोधार्थी को किसी विषय पर किसी एक अधिकारी व्यक्ति क मत को श्रद्धाभाव से अतिम प्रमाण नही मान लेना चाहिए। उस पर अन्य विशेषज्ञा के मता को भी जानना चाहिए। उदाहरण के लिए हम आचाय रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य का इतिहास' म यदि उनका यह कथन कि आदिकाल की (जिसे उन्होने वीरगाथा काल कहना उचित समझा है) जनधर्मी रचनाएँ साहित्य की कोटि म नही आती स्वीकार कर लिया जाता तो जन मन्दिरो और प्रतिष्ठाना म सचित साहित्य की सम्पदा से हिन्दी-साहित्य वचित हो जाता। आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शुक्लजी के कथन की स्वबुद्धि से परीक्षा की और कथित जनधर्मी ग्रथा म साहित्यिक तत्त्व खोज निकाले और उनका साहित्यिक मूल्याकन कर उन्हे साहित्य के इतिहास म स्थान दिया। यदि हम

जनधम पर आश्रित साहित्य को साम्प्रदायिक मानेंग तो हम भक्तिकालीन तुलसी सूर जायसी आदि कविया के साहित्य का भी साम्प्रदायिक मानकर उसे साहित्य इतिहास से पृथक करना होगा। हाँ जिन कृतियो म केवल धर्म या सम्प्रदाय के सिद्धान्त या आधार मात्र वर्णित हा वे निश्चय ही साहित्य की कोटि म नही आयेंगी पर जिन कृतियो म मानव जाति क मनोभावा का चित्रण है व भले ही किसी धम की भूमिका का धारण किय हा साहित्य के अन्तगत ही आयेंगी। अनुसधान की गति वही रुक जाती है जहाँ पूवनिणया की परीक्षा परवर्ती शोधार्थियो द्वारा नही होनी।

परीक्षण विश्लेषण के बिना शोध म वज्ञानिकता नही आ पाती। इस हम सदा स्मरण रखना चाहिए।

19

'सामग्री' का वर्गीकरण-विश्लेषण

शोध सामग्री एकत्र हो जाने पर उसे व्यवस्थित रीति स सयोजित करने की आवश्यकता होती है। तथ्यो को सादृश्य या सम्बन्ध की दृष्टि से वर्गो म छाँटने का काय वर्गीकरण' कहलाता है।

वर्गीकरण से 'प्रबन्ध को व्यवस्थित ढग से लिखन म सहायता मिलती है। समान तथ्या के आधार पर विश्लेषण तथा निष्कष का काय आसान हो जाता है। उदाहरण के लिए हम डा० सत्येन्द्र की भारत दु हरिश्चन्द्र विषयक काय-सम्बन्धी परिकल्पना लेत हैं। उनकी परिकल्पना है 'भारतन्दु व्रजभाषा के कवि और सधि-युग क कवि थे।' इस परिकल्पना की परीक्षा के लिए उन्होने पहले तथ्य सामग्री एकत्र की फिर डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार काव्य सामग्री का निम्नानुसार विभाजन किया—
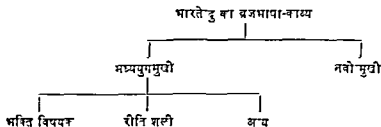
भक्ति विषयक कविताओं के अध्ययन से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि वे वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। होली, राग-संग्रह वर्षाविनोद, विनय, प्रेम-पचासा, प्रेममालिका आदि में अनेक ऐसी रचनाएँ मिलती हैं जो उन्हें अनन्य वैष्णव सिद्ध करती हैं। उन्होंने रचनाओं के माध्यम से यह निष्कर्ष निकाला है। रीतिशैली की रचनाओं में उन्होंने प्रेममालिका, प्रेम फुलवारी, वर्षा विनोद मधु-मुकुल, प्रेम तरंग प्रेम प्रलाप और होली रचनाएँ छाटकर यह निष्कर्ष निकाला कि इनकी रीतिशैली की रचनाएँ देव घनानन्द ठाकुर बोधा हठी पदमाकर, आलम आदि की परिपाटी की हैं। इनमें प्रेम की स्वच्छन्दता है नूतनता और आंतरिक भावनाओं की अभिव्यंजना भी है।

नवोन्मुखी रचनाओं के वर्गीकरण में अंगरेजी राज के सुखसाज सम्बन्धी गीत विदेशिया द्वारा धन लूट ले जाने के भाव, भारत की दुर्दशा को व्यक्त करने वाले विचार नवोन्मुखी प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हैं। इन वर्गीकरणों से लेखक ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि भारतेन्दु ने यह सिद्ध किया है कि व्रजभाषा न केवल मध्ययुगीन रीतिकालीन भावों की अभिव्यक्ति करने की क्षमता रखती है, प्रत्युत वह आधुनिक भावों की अभिव्यक्ति का भी वाहन बन सकती है।

विषयवार वर्गीकरण से चिन्तन तथा निष्कर्ष में क्रम तथा स्पष्टता आ जाती है। एक शोध प्रबन्ध[1] में यह परिकल्पना की गई कि 'दक्षिणापथ (महाराष्ट्र) में हिन्दी प्रवेश का इतिहास आर्यों के दक्षिण सम्पर्क का परिणाम है।" यह स्थापना उस पूर्वस्थापना का खण्डन करती है जिसके द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया था कि मुसल्मानों के संचार के कारण दक्षिणापथ में हिन्दी का प्रवेश हुआ। शोधकर्ता ने अपनी परिकल्पना के आधार पर राजनीतिक, धार्मिक सामाजिक तथा आर्थिक आदि स्रोतों से सामग्री का संकलन किया और फिर परिकल्पना के विपक्ष और पक्ष के तथ्यों का निम्नानुसार वर्गीकरण किया—

विपक्षी तथ्य—

(1) अलाउद्दीन खिल्जी के आक्रमण के पश्चात तेहरवीं शताब्दी में हिन्दी का संचार हुआ।

(2) मुहम्मद तुगलक ने जब चौदहवीं शताब्दी में अपनी राजधानी दिल्ली से दौलताबाद स्थानान्तरित की तब समस्त दिल्ली के साथ वहाँ की भाषा भी दक्षिण में पहुंची।

---

1 हिन्दी को मराठी संतों की देन, अध्याय 2।

पक्ष मे—

(3) मुसलमाना के आक्रमण से पूर्व उत्तरभारतीय नाथपंथियों ने महाराष्ट्र की धार्मिक जागृति म योगदान दिया और इस तरह उनके द्वारा वहा हिन्दी का प्रवेश हुआ तथा महानुभाव एव वारकरी पथ प्रवर्तकों ने उसका प्रचार किया।

(4) मुसलमानो के आक्रमण के समय आर्यों ने अपनी सांस्कृतिक एकता स्थिर रखने के लिए मध्य देश की भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप मे स्वीकार कर लिया और इस तरह क्रमश हिन्दी का दक्षिण म स्वत न प्रवेश हुआ।

तथ्यो के वर्गीकरण ने परिकल्पना के अनुरूप तथ्यो के विश्लेषण और निष्कर्ष निकालने म सहायता दी। तथ्यो के वर्गीकरण से किस प्रकार विश्लेषण की प्रक्रिया निर्दिष्ट हुई और निष्कर्ष तक पहुचने का माग प्रशस्त हो सका, इसे हम नीचे दे रहे हैं।

तथ्यो की परीक्षा

जब हम उपयुक्त तथ्यो की क्रमश परीक्षा करेंगे—

तथ्य (1) और (2) के सम्बन्ध म निवेदन है कि मुसलमान शासकों के देवगिरि या सुदूर मदुरा तक पहुच जान मात्र से वहाँ उत्तर की भाषा का सचार नही हो सकता। किसी भी भाषा को जनता तक पहुचने के लिए समय अपेक्षित है। यह हो सकता है कि अलाउद्दीन खिलजी और मोहम्मद तुगलक के बार बार दक्षिण अभियान और अन्त म वहा शासन व्यवस्था स्थापित करने से जनता हिन्दुई या देहलवी भाषा से थोडी-बहुत परिचित हो गई हो क्योकि उस अधिकारियों और फौजियों के सम्पर्क म बार बार आना पडता था। पर दक्षिण म हिन्दी प्रवेश तुर्क शासकों के पूर्व ही हो चुका था। देवगिरि के यादवों के काल म ही हम महानुभावों और वारकरी सतो को हिन्दी म पदो की रचना करते हुए देखते हैं। वारकरी सत नामदेव का समय जिनके बहुत अधिक हिन्दी पद मिलते हैं सन 1270 और 1350 के मध्य है और उनके पूर्व महानुभाव पथ के सस्थापक चक्रधर स्वामी के मत का प्रचार-काल 1263 और 1271 ई० के मध्य है। चक्रधर की हिन्दी चौपदी मिलती है। अतएव तुर्कों के दक्षिण विजय के पूर्व दक्षिण मे हिन्दी का प्रवेश और प्रचार हो गया था। मुसलमानों के समय मे यह अवश्य हुआ कि प्रचलित हिन्दी म विदेशी फारसी अरबी शब्द क्रमश आने लगे। पहले तो मुसलमान कवि ही उनका प्रयोग करते रहे परन्तु बाद म वे इतने अधिक प्रचलित और टकसाली हो गये कि हिन्दी सतो की

जबान पर भी चढ गये और उनकी 'वाणियो' म उतरने लगे। महाराष्ट्र म वार करियो से पूव महानुभावपथी सतो की वाणियो म खडी बोली के साथ साथ ब्रज भाषा और मराठी का पुट मिलता है। अरबी फारसी शब्दो का प्रवेश उनम नही है।

वारकरी-सत नामदेव ने भी मुसलमानी सम्पक के पूव हिन्दी म पद रचना प्रारम्भ कर दी थी। तात्पय यह कि तुर्कों के महाराष्ट्र म प्रवेश के पूव शौरसेनी अपभ्रश स उत्पन्न हिन्दी के ब्रज और खडी बोली के रूप वहा विद्यमान थे और मुसलमानो के प्रवेश के पश्चात उनम विदेशी शब्दो का आगमन होने लगा।

तथ्य (3) के सम्बन्ध म निवेदन है कि नाथ पथ ने वारकरी सम्प्रदाय के पूव ही महाराष्ट्र म धम जागृति का काय किया है। नाथो के प्रसिद्ध गुरु गोरखनाथ, जो ज्ञानेश्वर की गुरु परम्परा म आते है कब पैदा हुए और कब दक्षिणापथ म आय, ठीक ठीक नहा कहा जा सकता, पर ईसा की बारहवी शताब्दी मे महाराष्ट्र म इस पथ का खूब प्रचार था। मुसलमानो के दक्षिण प्रवेश के पूव उनका वहा पहुचना असदिग्ध है। नाथो के मत प्रतिपाद्य ग्रथ मराठी के अतिरिक्त हिन्दी म भी है। जादू टोने के मन्त्र भी जो महाराष्ट्र म नाथों द्वारा प्रचलित हुए ये हिन्दी म हैं और जनता उनका उच्चारण करती रही है। वारकरी सतो मे गुरु गोरखनाथ के हिन्दी उपदेशो को जानने की स्वाभाविक इच्छा रही होगी। उनके द्वारा उनका मनन चिन्तन और उपदेश भी होता होगा। हिन्दी और मराठी भाषाओ मे लिपि और प्रवत्तियो की दृष्टि से निकटता है। अतएव हिन्दी पढने और सीखने म मराठी भाषियो को विशेष कठिनता का अनुभव नही हुआ। नाथो के महाराष्ट्र प्रवेश के पूव भी महाराष्ट्र के मालखेट म दसवी शताब्दी म रचित अपभ्रश कृतियो म हिन्दी विकास के चिह्न दिखलायी देते हैं। अतएव नाथो को भी दक्षिण मे सबसे प्रथम हिन्दी ले जाने का एकान्त श्रेय नही दिया जा सकता। वे प्रचारक ही कहे जा सकते हैं।

चौथे और अन्तिम तथ्य के सम्बन्ध मे निवेदन है कि आर्यों की सास्कृतिक भाषा सस्कृत का सुदूर दक्षिण म तुर्कों और नाथो के आगमन के पूव ही प्रचार रहा है। धम, दशन, काव्य आदि ग्रथो का प्रणयन अनेक दाक्षिणात्यो द्वारा हुआ है। मध्यप्रदेश म सस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत भाषाओ का जब महत्त्व बढा, तब व भी दक्षिण म पहुची। सन 1129 ई० म चालुक्यवशीय राजा सोमेश्वर तृतीय रचित अभिलषितार्थचिन्तामणि म जहा सस्कृत के अतिरिक्त कन्नड तेलुगु और मराठी भाषा के उदाहरण मिलते हैं, वहा हिन्दी के भी उदाहरण विद्यमान है। और यदि पुष्पदन्त की प्राकृताभास भाषा को हिन्दी रूप

पर विचार करें तो दक्षिण मे हिन्दी के चिह्न ईसा की दसवी शताब्दी तक देखे जा सकते हैं।

'प्राचीन लेखो तथा ग्रथो से यही ज्ञात होता है कि शौरसेनी अपभ्रश जो नागर अपभ्रश भी कहलाती थी, लगभग 800 ई० से शुरू होकर लगभग 1200-1300 ई० तक उत्तर भारत में विराट साहित्य भाषा के रूप में विराजती रही। सस्कृत के बाद इस शौरसेनी अपभ्रश का स्थान था। चार छह सौ वर्षों तक सिन्धु प्रदेश से पूर्वी बगाल तक और काश्मीर नेपाल मिथिला से लेकर महाराष्ट्र और उडीसा तक तमाम आर्यावर्ती देश इस शौरसेनी या नागर अपभ्रश नामक साहित्यिक भाषा का क्षेत्र बन गया था। तभी दिल्ली में पैदा होने वाला पुष्पदत्त महाराष्ट्र के मालखट में जाकर शौरसेनी अपभ्रश में सहज ही ग्रथ रचना करने में समर्थ हो सका।[1]

सन 800 और 1000 ई० काल तक स्थिति यह थी कि किसी उत्तर-भारतीय आर्यभाषी को यदि देशाटन करना होता और साथ साथ साधारण जनता तथा शिष्टजनो से मिलना होता था तो सस्कृत के अतिरिक्त शौरसेनी अपभ्रश के सिवा उसका काम ही नही चलता था। शौरसेनी अपभ्रश उन दिनो अन्त प्रादेशिक भाषा थी। आजकल की ब्रज खडी बोली और विभिन्न प्रकार की हिन्दी का उदगम इस शौरसेनी अपभ्रश से ही हुआ है। आज की तरह एक हजार वर्ष पहले हिन्दी ही अपने पूर्व रूप मे अन्त प्रादेशिक भाषा के रूप मे अखिल उत्तर भारत मे व्याप्त थी और तमाम आर्यभाषी लोगो मे पढी पढायी और लिखी जाती रही है।[2]

निष्कर्ष यह कि दक्षिण मे हिन्दी का सचार आर्यों के दक्षिण प्रवेश का स्वभाविक परिणाम है। दक्षिण के आर्यों ने अपने मूल स्थान मध्य देश से सम्पर्क बनाये रखने के लिए वहीं की भाषा को अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा स्वीकार किया। राजनीतिक आर्थिक धार्मिक आदि कारणो से दक्षिण और उत्तर भारत के आर्यों का किस प्रकार परस्पर सम्पर्क होता रहता था, यह हम देख ही चुके हैं।

दक्षिणापथ अर्थात महाराष्ट्र मे मुसलमानो के आगमन के पूर्व हिन्दी प्रचलित थी यह महानुभावो और अन्य सतो की वाणी से सिद्ध हो जाता है। मुसलमानो के राज्य स्थापित होने का यह परिणाम अवश्य हुआ कि ब्रज और खडीबोली मिश्रित हिन्दी मे अरबी फारसी के शब्दो का विशेष समावेश होने

---

1 विनयमोहन शर्मा—हिन्दी को मराठी सतो की देन अ० 2।

2 डा० सुनीतिकुमार चटर्जी—पोद्दार-अभिनन्दन ग्रथ, पृ० 79।

लगा और हिन्दी की नवीन शैली का जन्म हुआ, जिसे बाद में हिन्दी दक्खिणी हिन्दी, रेखता आदि नामों से अभिहित किया गया।

20

प्रबन्ध-लेखन

शोध विद्यार्थी प्राय पूछा करते हैं कि प्रबन्ध-लेखन की भी कोई वैज्ञानिक विधि है ? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि शोध का प्रत्येक भाग वैज्ञानिक प्रविधि से ही लिखा जाता है। प्रबन्ध मुख्यत तीन भागों में विभाजित होता है। पहला भाग भूमिका से सम्बन्ध रखता है दूसरा विषय प्रतिपादन से और तीसरे में विषय का उपसंहार होता है।

भूमिका भाग को विषय से सम्बन्धित ही होना चाहिए, अविच्छिन्न नहीं। बहुधा यह देखा गया है कि भूमिका अथवा प्रस्तावना अथवा पृष्ठभूमि इतने अधिक पृष्ठ घेर लेती और असम्बद्ध होती है कि विषय प्रतिपादन का भाग क्षीण हो जाता है। भूमिका भाग का अनावश्यक विस्तार शोध प्रबन्ध से वितृष्णा पैदा कर देता है। बहुत से प्रबन्धों में लगभग प्रत्येक मानविकी विषय के स्रोत ऋग्वेद में खोजे जाते हैं। उसकी ऋचाओं के उद्धरणों से परिकल्पना के पक्ष और विपक्ष में भी सामग्री खोजी जा सकती है। यदि प्रबन्ध का विषय वैदिक वाङमय से सम्बद्ध न हो तो शोधार्थी को बहुत दूर की कौड़ी लाने की आवश्यकता नहीं है। यह भी देखा गया है कि विषय का प्रारम्भ सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक धार्मिक आदि परिस्थितियों से होता है। यदि वर्ण्य विषय के प्रतिपादन में उक्त परिस्थितियों का वर्णन आवश्यक हो तो उनका देना भी आवश्यक हो जाता है परन्तु यदि विषय तो साहित्यशास्त्र से सम्बद्ध है और उसकी भूमिका उक्त परिस्थितियों से प्रारम्भ हो, तो उन्हें हम अप्रस्तुत और अनावश्यक समझेंगे।

भूमिका में शोधार्थी को सर्वप्रथम अपने विषय पर किये गये पूर्ववर्ती कार्यों का आलोचनात्मक सिंहावलोकन करना चाहिए और फिर अपने कार्य की उस दिशा का उल्लेख करना चाहिए जो अशोधित रह गई हो। पाठक को भूमिका से यह अवगत हो जाना चाहिए कि शोधार्थी अपने शोध से विषय के क्षेत्र में ज्ञान की किस रूप में वृद्धि कर रहा है। दूसरे शब्दों में, उसे अपने शोधकार्य के उद्देश्य को स्पष्ट शब्दों में निर्दिष्ट करना चाहिए। साथ ही सामग्री के संचयन

म उन को कठिनाइयों अनुभव हुई हो और उनके कारण प्रबंध में जो कमियाँ रह गई हों उन्हें भी अंकित कर लेना चाहिए। प्रबंध जिस प्रविधि से प्रस्तुत किया जा रहा है उसका कथन भी इसी भाग में आवश्यक है।

रूपरेखा तयार करते समय प्रबंध विषयवार अध्यायों में पहले ही विभक्त किया जा चुका है, अतः भूमिका भाग के अनन्तर प्रत्येक अध्याय का विषयक्रम से लिया जाना चाहिए। यदि आवश्यक समझा जाए तो रूपरेखा के अध्याय क्रम का परिवर्तित भी किया जा सकता है। अध्याय से सम्बद्ध सामग्री की काटछाँट भी की जा सकती है। कई बार एकत्रित की गई सम्पूर्ण सामग्री की विषय प्रतिपादन में आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। ऐसी स्थिति में कलेवर बढ़ाने वाली अनावश्यक सामग्री को पृथक किया जा सकता है।

सामग्री एकत्र करते समय यदि प्रत्येक विषय (टॉपिक) कार्ड पर टीप गये हैं तो उन्हें क्रमवार एकत्र कर लेने से लेखन में सहायता मिल जाती है। यदि कार्ड के स्थान पर कापियों का प्रयोग किया गया हो तब भी उन्हें विषय क्रम से जमाकर लेखन-कार्य किया जा सकता है। प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय उपसंहार में एक प्रकार से प्रबन्ध का सार भाग ही समाविष्ट हो जाता है। उसमें शोध समस्या का पुनः उल्लेख किया जा सकता है और उसको किस तरह प्रतिपादित किया गया है इसका संक्षिप्त विवरण भी दिया जाना चाहिए। अन्त में शोध के निष्कर्षों को प्रस्तुत कर दिया जाय। अपनी विषय-सीमा के भीतर उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही निष्कर्ष निकाले जाते हैं और अनुपलब्ध सामग्री के उपलब्ध हो जाने पर निष्कर्षों में संशोधन या परिवर्तन सम्भव है इसका भी संकेत दे देने से उसी विषय या उससे सम्बन्धित विषय पर कार्य करने के इच्छुक भावी शोधार्थी का मार्ग सरल हो जाता है। प्रबन्ध के सभी अध्याय लिखे जाने के बाद उसमें परिशिष्ट जोड़ा जाता है जिसके उपभाग भी होते हैं जिन्हें अ, ब, स आदि से नामांकित किया जाता है। परिशिष्ट में निम्न बातें सम्मिलित की जानी चाहिएँ—परिशिष्ट (अ) में प्रबन्ध में प्रयुक्त शास्त्रीय या तान्त्रिक शब्दावली का स्पष्टीकरण। उदाहरणार्थ अनहद, कुण्डलिनी, प्रतिबद्धता आदि का स्पष्टीकरण हो। अनहद शब्द को हो तो इसका स्पष्टीकरण में लिखा जा सकता है कि अनहद—अनाहत—अर्थात बिना किसी चोट के बजने वाला नाद। यह योग की विशिष्ट क्रिया से साधक को सुनायी देने वाला नाद है। जब साधक अपने प्राणों को सुषम्ना नाड़ी के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र की ओर जिसे सहस्रार कहते हैं सचरित करता है तब यह नाद सुनायी देता है। संत वाणियों में अनाहत नाद का बार-बार उल्लेख हुआ है। विशेषकर कबीर और उनके मार्ग पर चलने वाले संतों ने इस नाद की अपनी साधनामूलक वाणी में चर्चा की है। परिशिष्ट (ब) में अकारादि

क्रम से सदभग्रन्थ सूची भी दी जानी चाहिए। इस सूची में ग्रन्थों और पत्र-पत्रिकाओं का भाषावार वर्गीकरण किया जाए। उदाहरणार्थ, ग्रन्थों का उल्लेख निम्नानुसार हो—

1 कबीर ग्रन्थावली—(सम्पादक श्यामसुन्दर दास) ना० प्र० स०, काशी (प्रथम संस्करण)।

2 पत्रिका-सूची में हो—पहले पत्रिका का नाम प्रकाशन स्थान, वर्ष, अंक/संख्या।

3 प्रबन्ध में प्रयुक्त शब्दों की संकेत चिह्न सूची (एब्रीविएशन लिस्ट) एक पृष्ठ में दी जाए। जैसे ना० प्र० स०=नागरी प्रचारिणी सभा, नाम०= नामदेव आदि।

4 सामग्री एकत्र करते समय यदि विशेषज्ञों से आवश्यक पत्र-व्यवहार हुआ हो तो उसे भी एक परिशिष्ट में जोड़ देना चाहिए। कभी कभी शिलालेखों से भी सामग्री ली जाती है। ऐसी दशा में उसकी 'फोटो स्टेट' कापी भी संलग्न कर देनी चाहिए।

प्रबन्ध के अध्यायों तथा परिशिष्टों का लेखन कार्य समाप्त हो जाने पर उसकी प्रारम्भिका की सज्जा होनी चाहिए। प्रबन्ध का शीर्षक पृष्ठ तैयार किया जाए जो नीचे लिखे अनुसार हो सकता है—

(अ) शीर्षक में विषय का नाम दिया जाये।

(ब) विश्वविद्यालय का नाम—जिस उपाधि के लिए प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया हो उसका नाम।

(स) शोधकर्ता का नाम।

(द) प्रस्तुत करने की तारीख।

शीर्षक पृष्ठ के बाद के पृष्ठों में पृष्ठ-संख्या सहित विषय-सूची अध्यायक्रम से दी जाए। प्रत्येक अध्याय में क्या विवेचित किया गया है, इसका संक्षेप में इंगित कर दिया जाए। इससे शोध की रूपरेखा का ज्ञान हो जाता है। स्पष्टीकरण के लिए एक प्रबन्ध का विषय सूची के एक अध्याय का विवरण नीचे दिया जाता है—

प्रथम अध्याय—प्रबन्ध का उद्देश्य मनोविज्ञान और उपन्यास की परिभाषा (पाश्चात्य आलोचकों की दृष्टि में और भारतीय आलोचकों की दृष्टि से भी) मनोवैज्ञानिक अध्ययन के रूप, मनोवैज्ञानिक उपन्यास का तत्त्व निष्कर्ष।

इस एक अध्याय के विवरण से, जो नमूने के रूप में प्रस्तुत किया गया है, उसमें वर्णित विषय का संकेत मिल जाता है।

विषय सूची के बाद शोधकर्ता एक पृष्ठ और जोड़ देता है जिसमें वह आत्मकथन के रूप में विषय के चुनाव आदि के बारे में चर्चा करता है और

जिन व्यक्तियों ने उसे उसके काम में सहायता पहुँचायी है उनके प्रति आभार व्यक्त करता है।

यदि तालिकाओं, पाण्डुलिपियों, व्यक्तियों आदि के चित्र प्रबन्ध में दिये गये हों तो उन्हें भी विषय सूची के अन्त में निबद्ध कर देना चाहिए।

प्रारम्भिक पृष्ठों को रोमन अंकों में टंकित किया जा सकता है।

लेखन शैली

लेखन प्रौढ़ और साहित्यिक भाषा शैली में लिखा जाए—अनावश्यक चलतू शब्दों का प्रयोग न किया जाए। भाषा विषय की गरिमा के अनुरूप हो। शोध प्रबन्ध की भाषा समाचारपत्र, कथा नाटक आदि ललित साहित्य की भाषा से भिन्न होनी है पर साथ ही वह इतनी अधिक पांडित्य प्रदर्शक भी न हो कि जिसका भाव ग्रहण करने में पाठक को अत्यधिक श्रम उठाना पड़े। क्योंकि शोध-प्रबन्ध में तटस्थता बरती जाती है, उसमें वस्तुनिष्ठा की अपेक्षा की जाती है इसलिए लेखक को 'मैं', 'मेरा' के स्थान पर शोधार्थी या प्रबन्ध-लेखक शब्द का प्रयोग करना चाहिए। यथा 'मेरा मत है' के स्थान पर शोधकर्ता या लेखक का मत है लिखना अधिक तटस्थता का द्योतक है।

संकेत चिह्नों (Abbreviations) का प्रयोग पाद टिप्पणियों में करना चाहिए विषय प्रतिपादन के साथ नहीं।

हिन्दी में कई शब्दों की एकाधिक वर्तनी प्रचलित हैं। जैसे, राजनीतिक राजनैतिक, जाएगा-जायगा-जावेगा। ऐसी दशा में शोधकर्ता को किसी एक वर्तनी को स्थायी रूप से स्वीकार कर लेना चाहिए। प्रबन्ध में आदि से अन्त तक एक ही वर्तनी प्रयुक्त होनी चाहिए। प्रभावोत्पादक प्रबन्ध-लेखन आसान काम नहीं है, वह परिश्रम साध्य है। अच्छे शोधार्थी को भी अपने अध्यायों को बार-बार लिखने की आवश्यकता पड़ सकती है। क्योंकि शोध के प्रत्येक शब्द का महत्व होता है इसलिए उसे शब्दों का सोच विचार कर प्रयोग करना चाहिए। कभी-कभी शोधकर्ता जब अपनी मातृ या शिक्षा भाषा से भिन्न भाषा में प्रबन्ध लिखता है तब हास्यास्पद शब्दों या मुहावरों का प्रयोग कर जाता है। एक प्रबन्ध में शोधकर्ता ने निर्देशक को धन्यवाद देते हुए लिखा, 'गुरुजी ने शयन सेज पर लेटे-लेटे मेरे प्रबन्ध को सुना। इस वाक्य में सेज शब्द का प्रयोग कितना भद्दा है। सेज के स्थान पर शय्या' शब्द उपयुक्त होता। इसी प्रकार एक शोध प्रबन्ध में लिखा गया "इस विषय पर संशोधन मैं पहली बार सादर कर रहा हूं। शोधकर्ता मराठी भाषी था। वह कहना चाहता था कि "मैं इस विषय पर पहली बार शोध प्रस्तुत कर रहा हूँ।' मराठी में शोध के लिए संशोधन और प्रस्तुत करने के लिए 'सादर करना' शब्द प्रचलित है। और

दोनो शब्द सस्कृत के हैं। अत शोधार्थी ने यह नही सोचा कि हिन्दी में इन दोनो शब्दो का अर्थ भिन्न है। 'सशोधन' सुधार का और 'सादर' आदर सहित का अर्थ देता है। शोधार्थी को तनिक भी सन्देह होने पर किसी प्रामाणिक कोश को तुरन्त देख लेना चाहिए। कोश में प्राय एक शब्द के एक से अधिक अर्थ दिये रहते हैं। अत प्रसग के अनुसार अभीष्ट अर्थ वाले शब्द को चुनने की सतर्कता बरतनी चाहिए। कोशो म शब्दो की दी गई वर्तनी पर भी ध्यान रखें। शब्दो के लिंग प्रान्त भेद से भिन्न भी प्रयुक्त होने लगे है। ऐसी दशा में आदर्श कोश की सहायता लेनी चाहिए।

अत म एक परामर्श और देना है। वह यह है कि 'प्रबन्ध' को भारी भरकम, हजार डेढ हजार पृष्ठो का, बनाने का मोह त्याग देना चाहिए। गहन से गहन विषय को सूक्ष्म अध्ययन द्वारा कम पृष्ठो म ही लिपिबद्ध किया जा सकता है।

डा० रा० कु० हर्ष ने कुछ विदेशी विद्वानो के इस प्रकार के सक्षिप्त और ठास प्रबन्धो की चर्चा की है। वे हैं (1) प्रो० जूल ब्लाक का शोध प्रबन्ध लेंडो आर्या है। इसम 335 पृष्ठो म लगभग 2500 वर्ष के आर्य भारतीय भाषाओ के इतिहास और विकास का निरूपण है। इसका प्रत्येक पृष्ठ पूर्णरूप से विवेचित दृष्टा ता से गुथा हुआ है जो लेखक के असीम कष्ट और सहिष्णुता का परिचय देता है। काल खण्ड के लम्बे होने पर भी उन्होने अपने विषय के यथार्थ स्वरूप को बहुत ही सफलता के साथ थोडे मे प्रस्तुत किया है।

(2) डॉ० जा फिल्योजा ने रावण का कुमारतन्त्र नामक 12 पद्यो के निबध पर कार्य करते समय पूरे एशिया महाद्वीप से प्राप्त उसके तुलनात्मक पाठो का अध्ययन किया और क्राउन साइज के 192 पृष्ठो म अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर दिया। उन्होने दूसरे शोध ग्रथ म इस बात का भी विवेचन किया है कि परम्परागत हिन्दू धारणाओ के अनुसार आयुर्वेद को किस प्रकार वेदो का उपवेद कहा जा सकता है। उन्होने अपने इस ग्रन्थ मे वदिक और वदिकोत्तर पाठो का तुलनात्मक अध्ययन कर अपनी स्थापनाओ को रायल आक्टेवो आकार के 227 पृष्ठो मे पूर्ण विवेचन के साथ प्रस्तुत किया है जिसका शीर्षक लॉ दॉक्ट्रीं क्लासीक द ला मेदसीन अदीय न है। हिन्दी शोधार्थियो की यह गलत धारणा बन गयी है कि प्रबन्ध जितना ही बहुपृष्ठीय होगा उतना ही वह उपाधि प्राप्ति के योग्य समझा जायगा। परीक्षक को भारी पोथे को पढने का एक तो अवकाश ही नहीं रहता और यदि पढेगा भी तो दयावश पास' कर ही देगा। उसकी यह धारणा कुछ हद तक ठीक भी हो सकती है पर वह क्यो इतना गदर्भ परिश्रम पृष्ठसंख्या-वद्धि म करे ? उस परिश्रम विषय के अध्ययन म करना चाहिए, अर्थात सामग्री को सयत भाषा शली म प्रस्तुत करने का प्रयत्न करना चाहिए।

× × ×

प्रबंध प्राय टंकित होते हैं। उनमें अशुद्धियों की भरमार भी होती है। शोधकर्ता को टंकण द्वारा की सावधानी से दुरुस्त करके ही प्रबंध का विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करना चाहिए। यदि किसी पृष्ठ पर अधिक अशुद्धियाँ हों तो उसे पुनः टंकित करा लेना चाहिए।

प्रबंध की बाह्य साज-सज्जा—जिल्द और आवरण (कवर)—आकर्षक होने से पाठक उस शोध पत्र को उत्सुक हो उठता है। यथास्थान नक्शे डायग्राम आदि भी देने चाहिए।

पाद टिप्पणियाँ

शोध प्रबंध में पाद टिप्पणियाँ शोधकर्ता अपने मत के समर्थन या दूसरे मत के विरोध के प्रसंग में देता है। ये टिप्पणियाँ या तो पृष्ठ के नीचे या अध्याय के अंत में दी जाती हैं। पृष्ठ के नीचे देना अधिक सुविधाजनक होता है। इससे पाठक को उद्धरण के स्रोत को जानने के लिए सम्पूर्ण अध्याय के पृष्ठों को उलटने का श्रम नहीं उठाना पड़ता। उद्धरण देते समय उद्धरण चिह्न (') अवश्य देने चाहिए और उसकी समाप्ति पर पाद टिप्पणी को इंगित करने के लिए ऊपर अंक दे देना चाहिए। उद्धरण विषय विशेषज्ञों की कृतियों से लिए जाते हैं क्योंकि विशेषज्ञ के समर्थन से ही लेखक के मत को बल मिलता है। सामान्य लेखक के मत का समर्थन अधिक विश्वसनीय नहीं माना जाता। उद्धरण प्रकाशित और अप्रकाशित (हस्तलिखित) ग्रंथ, शोधपत्र-पत्रिका, शिलालेख दानपत्र आदि स्रोतों से लिये जाते हैं।

अन्य भाषा का उद्धरण प्रबंध की भाषा में लिया जाय और पृष्ठ के मुख्य भाग में दिया जाय। पाद टिप्पणी में उद्धरण की भाषा को यथावत दिया जाय। प्रबंध के पृष्ठ में बीच बीच में दूसरी भाषा के उद्धरणों को देने से उसके साथ ही कोष्ठक में उसका प्रबंध की भाषा में अनुवाद देना पड़ता है। अतः मूल उद्धरण को पाद टिप्पणियों में देना अधिक उचित है। यही क्रम मनोविज्ञान तथा शोधप्रबंध के लेखन तंत्र के अनुरूप है।

अध्याय का प्रारम्भ जहाँ तक सम्भव हो किसी उद्धरण से न हो। कई शोधार्थी प्रबंध को उद्धरणों से भर देते हैं। यह उनके विचारों के खोखलेपन को प्रकट करता है और उनकी विषय के अध्ययन की कमी को भी।

एक ही पृष्ठ पर जब एक ही लेखक के एक से अधिक विचार उद्धृत किए जायें तो प्रथम बार तो पृष्ठ में चिह्नित अंक देकर लेखक का नाम ग्रंथ का नाम, संस्करण और पृष्ठ-संख्या दे दी जाय और दूसरी बार केवल वही लिख कर पृष्ठ-संख्या दे देनी चाहिए।

मान लीजिए, यदि पृष्ठ के मूलभाग मे लिखा गया है 'तुलसी ने काव्य के लिए कवित्त और भणिति का प्रयोग एक ही पृष्ठ म किया है, तो कविता और भणिति के ऊपर 1 और 2 अक देकर पाद टिप्पणिया म दीजिए—

1 'निज कवित्त केहि लाग न नीका'
—रामचरितमानस (गीता प्रेस, प्रथम सस्करण, पृष्ठ 766)

2 जे पर भणिति सुनत हरषाही' वही

(यहा ग्रन्थ और पृष्ठ पूव टिप्पणीवत हैं)। यदि लेखक के नाम को देकर उद्धरण दिया गया है तो पाद टिप्पणी मे अकित चिह्न के साथ ग्रन्थ और पृष्ठ-सख्या मात्र दी जाती चाहिए। जसे यदि पृष्ठ के मुख्य भाग मे लिखा गया हो—'भरत के पश्चात भामह प्रथम आचाय हैं जिन्होंने काव्य की व्याख्या करते हुए लिखा है—शब्दार्थौ सहितौ काव्य गद्य पद्य च तद्द्विधा ?' तो नीचे पाद टिप्पणी म लिखिए—1 काव्यालकार प्रथम परिच्छेद, सूत्र 1,6।

(यहाँ सस्करण, पृष्ठ आदि लिखने की आवश्यकता नही है क्योकि किसी भी सस्करण म ग्रथ के परिच्छेद और सूत्र-सख्या म अन्तर नही आयगा।)

यदि पृष्ठ के मुख्य भाग म लेखक तथा ग्रन्थ का नाम भी उद्धरण के पूव दिया गया हो तो पाद टिप्पणी म ग्रन्थ की पृष्ठ-सख्या देना ही पर्याप्त होगा। जसे—कविता के लिए कवित्त शब्द प्रयुक्त हुआ है। बिहारी सतसई (पुस्तक भण्डार-सस्करण) के दोहो मे यह प्रयुक्त है—

'तन्त्रीनाद कवित्त रस सरस राग रति रग।
अनबूडे बूडे तरे जो बूडे सब अग॥'

क्योकि पृष्ठ म लेखक और पुस्तक का नाम देकर उद्धरण दिया गया है इसलिए नीचे पाद टिप्पणी म कवल 'पृष्ठ 142 देना पर्याप्त होगा।

जहा अंग्रेजी भाषा से मत उद्धत करना होता है वहाँ पृष्ठ के मुख्य भाग मे प्रबन्ध की भाषा और नीचे पाद टिप्पणी म मूल अश देना चाहिए। यदि पृष्ठ क मुख्य भाग म लिखा गया हो—मलयालम म कवियो की रुझान प्रबन्ध काव्य लेखन की ओर अधिक रही है। उन्होंने महाभारत और श्रीमदभागवत के आधार पर उनकी रचना की है। 'मलयाली विष्णु शिव भागवत या राम के अनुयायियो म कोई भेद नही करते। वे नाम क अतिरिक्त एक दूसरे मे भद नहीं मानत।

(ऊपर का उद्धरण अंग्रेजी म लिखे एक विद्वान क मत का अनुवाद है।)
अत उस अक दकर नीचे पाद टिप्पणी म इस प्रकार दिया जाना चाहिए—

1 The Malyalis make no difference among the followers of Vishnu, Siva Bhagwath or Rama They do not know one from the other except in name
—Padmanathan Manon History of India, Vol IV (First Edition), Page 4

यदि पृष्ठ के मुख्य भाग मे मूल भाषा का उद्धरण दिया जाय तो उसके साथ ही कोष्ठक म प्रबन्ध की भाषा का अनुवाद भी दिया जाना चाहिए। अनुवाद पाद टिप्पणी मे नही दिया जाना चाहिए। यदि पृष्ठ भाग म लिखा गया —वाल्मीकि मुनि का स्थान अयोध्या से गगायास्तु परपारे [1] (गगा के उस पार था)[1]—तो नीचे पाद टिप्पणी मे उदधत अश का स्रोत देना होगा—

1 वाल्मीकिरामायण उत्तरकाण्ड 45/16।

शोधार्थी प्राय पाद टिप्पणिया म एकरूपता नही बरत पाते। वैज्ञानिक प्रविधि क्रम और व्यवस्था चाहती है। अत पाद टिप्पणिया भी किसी एक क्रम के अनुरूप पूरे प्रब ध मे दी जानी चाहिए।

सामाजिक शोध प्रतिवेदन

सामाजिक शोध के प्रतिवेदन (रिपोट) म निम्न बातो का होना आवश्यक है—

1 शोधकर्ता ने, किसके लिए और किसकी अथसम्बन्धी सुविधा से शोध काय प्रारम्भ किया, इसकी जानकारी।

2 शोध का उद्देश्य।

3 क्षेत्रीय काय कब से प्रारम्भ किया गया और कब समाप्त हुआ।

4 जो नमूने लिये गए उनका विस्तृत वणन। नमूने किस प्रणाली से एकत्र किए गए, साक्षात्कार की विस्तृत जानकारी—उनकी सख्या आदि।

5 तथ्य सकलन के स्रोतो प्रपत्र अभिलेख-पत्र, निरीक्षण-साक्षात्कार आदि का विस्तृत वणन जिस प्रविधि स वे सचित किए गए उनका उल्लेख।

6 शोधकाय सहायको तथा उनके निरीक्षको के सम्बन्ध म जानकारी।

7 प्रश्नावली शेडयूल या साक्षात्कार निदेशिका जिसका भी प्रयोग किया गया हो उन सबकी नकल।

8 तथ्य जो प्राप्त हुए उनका उल्लेख। इनमे वे तथ्य भी सम्मिलित किय जायें जो शोध की परिकल्पना के विरुद्ध पाए गए।

9 जहाँ तथ्य प्रतिशता या अन्य रूपो म प्रस्तुत किए गए हो वहाँ उन तालिकाओ की सख्या भी दी जाय जिन पर वे आधारित हो।

10 एकत्रित साक्ष्य का अन्य शोधकार्यों स प्राप्त जानकारी का तुलनात्मक सम्बन्ध बतलाया जाय।

11 निष्कष।

द्वितीय भाग

पाठानुसधान की प्रक्रिया

हमारे देश का अधिकाश साहित्य प्राचीनतम काल म अलिखित ही था। स्मरणशक्ति क सहारे वह पीढी दर पीढी सक्रमित होता रहता था। क्योकि पुस्तक स विद्या प्राप्त करने वाले को सभाशूर नही समझा जाता था।

'पुस्तकप्रत्ययाधीत नाधीत गुरुसंनिधौ। भ्राजत न सभामध्ये जारगर्भ इव स्त्रिया (पाराशर धम-सहिता)। ज्ञात नही, किस काल म वह लिपिबद्ध किया गया पर जब स किया जाने लगा तब से लिपिबद्ध लोकप्रिय ग्रन्थो की अनेक प्रतियाँ तयार करने की प्रथा चल पडी और उन्ह राजपुस्तकालया, धम सस्थाआ आदि में सुव्यवस्थित रखा जाने लगा। योग्य प्रसगों पर उन्ह दान मे भी दिया[1] जाता था। प्राचीन काल में बहुत सा साहित्य एक की नही, अनेक लखको की कृति होता था। व्यास के नाम पर न जाने कितने पुराण मिलते हैं। वे किसी एक व्यास के नहीं, अनेक व्यासों की रचना ही कहे जा सकते हैं। क्या किसी एक वेद की रचना एक ही ऋषि की सृष्टि है? ऐसा प्रतीत होता है प्राचीन साहित्य समष्टि रचित अधिक रहा है। इससे उसकी अनेक प्रतिया म कालानुसार परिवतन परिवधन होते रहे हैं। लिपिक भी अपनी भाषा और विषय ज्ञान का आरोप मूल प्रति मे कर उसे प्राय भ्रष्ट करते रहे हैं।

समूह साहित्य के साथ-साथ व्यष्टि साहित्य, अर्थात एक ही व्यक्ति द्वारा रचित साहित्य भी लिखा जाता रहा है। यह स्मृति रक्षित साहित्य लिपिकारा द्वारा ही लिखा मिल सकता है और लिपिबद्ध साहित्य लेखक द्वारा और लिपिकारो द्वारा लिखित प्राप्य है। लेखक द्वारा लिपिबद्ध रचना ही मूल ग्रन्थ कहलाती

---

1 (अ) विप्राय पुस्तक दत्वा धमशास्त्रस्य च द्विज।
पुराणस्य च यो दद्यात स देवत्वमवाप्नुयात॥
—पद्मपुराण—उत्तरखड, अ० 117

(ब) वेदार्थयज्ञ शास्त्राणि धमशास्त्राणि चैव हि।
मूल्येन लेखयित्वा यो दद्याद याति स वदिकम॥
इतिहासपुराणानि लिखित्वा य प्रयच्छति।
ब्रह्मदानसम पुण्य प्राप्नोति द्विगुणीकृतम॥ गरुडपुराण अ० 215

है—उसकी दूसरी प्रति और प्रतिलिपियाँ कहलाती हैं। पाठालोचन का काम वहीं प्रारम्भ होता है जहाँ हम कवि की मूलकृति उपलब्ध नहीं होती और उसकी प्रतिलिपियाँ ही उपलब्ध होती हैं। प्रतिलिपियों की ही भी प्रतियाँ होती हैं एक को प्रति और दूसरी को प्रतिलिपि कहना अधिक सुविधाजनक होगा। प्रति मूल ग्रंथ की मूल नकल होती है और प्रतिलिपि प्रथम प्रति की नकल। नकलबाजी का यह क्रम काल-कालान्तर तक चलता जाता है। मुद्रण-कला के पूर्व तक प्राचीन साहित्य ग्रंथ इसी प्रकार प्रचारित किए जाते रहे हैं। प्रतिकार (लिपिक) प्रत्येक बार अपनी आदर्श प्रति की हूबहू नकल नहीं कर पाता। कहीं-न-कहीं च्युतिसंस्कृति अथवा प्रमाद छूट के प्रमाण आने-अनजाने हो ही जाते हैं। मत्स्यपुराण 'काव्यमीमांसा' आदि ग्रन्थों में आदर्श लिपिकार के लक्षण बताते हुए कहा गया है कि आदर्श लिपिकार वह है जो सर्वभाषा-कुशल है, नानालिपिज्ञ है सर्वशास्त्र विशारद है और अपनी आदर्श प्रति पर अगाध विश्वास रखता है और 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' रखने का धैर्य रख सकता है।

कभी-कभी लेखक स्वयं भी अपनी कृति का संशोधन कर मूल प्रति तैयार कर लेता है। ऐसी स्थिति में प्रतिलिपियों में पाठ-भेद बहुत मिलता है। क्योंकि जब दो मूल ग्रन्थ विद्यमान रहते हैं तब दोनों से पहली और बाद की प्रतियाँ होने लगती हैं और उनमें मूल संशोधित ग्रन्थ का ठीक-ठीक पाठ निर्धारण करना कठिन हो जाता है। प्रायः लेखक अपनी भाषा और शैली रूपों में स्वयं परिवर्तन कर लेते हैं। कभी उनकी भाषा अधिक तत्सम-बहुला और कभी तद्भव हो जाती है तो कभी लोकभाषाभिमुख और कभी विदेशी शब्द-संकुल हो जाती है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की भाषा में हम ऐसे शब्द रूप विभेद के कई उदाहरण मिलते हैं। विषय भेद के अनुसार भी एक ही लेखक की विभिन्न रचनाओं में भाषा भेद दिखाई देता है। निराला 'गरम पकौड़ी' में बाजारू, देशी विदेशी शब्दमयी भाषा लिखकर 'तुलसीदास' में अति संस्कृत प्रचुर भाषा भी लिख सके हैं।

लिपिकार दृष्टि और मति भ्रम से भी आदर्श प्रति को ठीक ठीक लिपिबद्ध नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में मूल लेखक का पाठ निर्धारण कठिन हो जाता है। जो शोधार्थी किसी प्राचीन कवि के ग्रन्थ के सम्पादन पर कार्य करना चाहता है उसे सर्वप्रथम उस कवि की काल क्रमानुसार सभी प्राप्त अप्रकाशित प्रकाशित प्रतियों को एकत्र करना चाहिए। यह उसकी मूल सामग्री होगी। अनेक हस्त लिखित प्रतियों में पुष्पिका मिलती है जिसमें लिपिकार का नाम, स्थान तथा काल (तिथि-संवत् आदि) दिया रहता है। इससे पाण्डुलिपि के काल का सहज ज्ञान हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसे उन ग्रन्थों को भी एकत्र करना चाहिए जिनमें उस ग्रन्थ से उद्धरण दिए गए हैं। उदाहरण के लिए, भट्ट लोल्लट के

रस निष्पत्ति सबंधी विचार हम अभिनवगुप्त की टीका मे मिलते हैं। हमें भट्ट लोल्लट के ग्रन्थ की किसी प्रकार की प्रति उपलब्ध नही होती। अत हमें अभिनवगुप्त की टीका म उदधृत भट्ट लोल्लट के विचारो स ठीक पाठ का समर्थन में सहायता मिल सकेगी। कई बार मूल ग्रन्थ के अनुवादो स भी पाठ निर्धारण म सहायता मिल जाती है। पूना के भाडारकर शोध-सस्थान म महाभारत का प्रामाणिक सस्करण वर्षों स तैयार हो रहा है। उसमे 11वी शताब्दी मे तलुगु और जावानी भाषा मे अनूदित महाभारत की प्रतियो की भी सहायता ली गयी है। टीका-ग्रन्थो म प्राय मूल लेखक की पक्तियां उदधृत की जाती हैं, अत वे भी शोधार्थी को कवि की किसी पक्ति विशेष के मूल पाठ को निर्धारित करने में सहायक हो सकते हैं। कभी-कभी किसी लोकप्रिय ग्रन्थ के अनुकरण पर लिखे ग्रन्थों से भी सहायता मिल जाती है। कालिदास के 'मेघदूत' के आधार पर कई पवनदूत लिखे गए हैं। बाणभट्ट की कादम्बरी का क्षमेन्द्र आदि ने अनुकरण किया है। इनमे मूल लेखक के शब्द भी यत्र-तत्र पाए जाते हैं जो पाठालोचक की, किसी प्रसग मे प्रयुक्त, शब्दों की उलझना को दूर कर सकते हैं। इन सब *ग्रन्थो का समावेश सहायक सामग्री के अन्तर्गत आता है।* शोधार्थी को सवप्रथम मूल सामग्री अर्थात ग्रन्थ की प्रति और प्रतिलिपियो और सहायक सामग्री का सग्रह अवश्य कर लेना चाहिए। सग्रह के पश्चात काल क्रमानुसार सामग्री का विभाजन किया जाना चाहिए। मान लीजिए, शोधार्थी को किसी कवि की कृति की एक ही प्रति प्राप्त हुई है। उसका सम्पादन वह कैसे करे ? इसके लिए उसे उसी प्रति को बार-बार ध्यानपूर्वक पढना चाहिए और कृतिकार की शिक्षा दीक्षा से परिचित होकर उस काल की उपलब्ध कृतियो का भी अध्ययन करना चाहिए। तभी वह प्राप्त प्रति की, भाषा की दृष्टि मे पुनरचना कर सकता है। एक दो सदर्भ-ग्रथो के सहारे ही सम्पादन काय म प्रवत्त नही हो जाना चाहिए। विभिन्न प्रकार की सहायक सामग्री की सहायता से उस प्रति का पुनर्निर्माण करना चाहिए। उदाहरण के लिए मान लीजिए, हमे रामचरित मानस की 17वीं शताब्दी की एक ही प्रति उपलब्ध है और उसम राम, काम नाम जस सानुनासिक अन्त्यवर्णात्मक शब्दो के पूववण पर अनुस्वार मिलता है। यदि हम तुलसी के अन्य ग्रथो म भी ऐसे शब्द रूप मिलते हैं तो उन्हे ही हम मूल कृति के रूप स्वीकारना होगा। जब समान-पाठ की अनेक प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हो तो हम उनके मूलादर्श की खोज करनी पडती है। मूलादश प्राप्त हो जाने पर सम्पादन-काय सुकर हो जाता है। उसके प्राप्त न होने पर कई प्रतियो के मिलान स जब यह ज्ञात हो जाय कि वे किसी एक प्रति की नकल हैं (बीच-बीच म वे भले ही त्रुटित या खडित हो), तब उस एक प्रति को काल्पनिक आदश प्रति मानकर कार्यारम्भ किया जा सकता है। पर कभी ऐसा

भी होता है कि किसी ग्रथ की विभिन्न पाठ-परम्पराओ की प्रतिया मिलती हैं एसी स्थिति म काय अधिक श्रमसाध्य हो जाता है। पाठ-परम्पराएँ शब्द-लोप, प्रक्षेप सक्षेप परिवतन परिवधन, वर्णागम, लोप विपयय आदि से भिन्न हो जाती हैं। यहाँ लिपिक अपन ज्ञान या अज्ञान का परिचय देता है। लिपि ज्ञान के अभाव मे वह मनमाने वण लिख जाता है। कई प्रतियाँ ऐसी भी प्राप्त होगी जिनके प्रथम या अन्तिम या दोनो ही पृष्ठ खडित मिलेंगे, या नही मिलेंगे। ऐसी स्थिति मे सहायक सामग्री से उन पृष्ठो का पुनर्निर्माण किया जा सकता है।

पुनर्निर्माण कैसे किया जाय ?

सम्पादनीय ग्रथ के पुनर्निर्माण का उद्देश्य उसके रचयिता के पाठ की पुन प्रतिष्ठा करना है। शोधार्थी को लेखक की भाषा शली आदि के आधार पर विभिन्न प्रतिया के मिलान के पश्चात यह निश्चय करना होगा कि अमुक पाठ ही लेखक का हो सकता है। यदि कोई पाठ अप्रासगिक हो, अथवा विचार धारा के विपरीत हो तो उस प्रक्षिप्त या अशुद्ध समझकर तिरस्कृत कर देना चाहिए। शब्द रूप वाक्य रचना आदि को रचयिता के काल की भाषा प्रवृत्ति क अनुसार रखना चाहिए। कई बार शोधार्थी-सम्पादक को दूषित या खडित पाठ म सुधार करना भी अभीष्ट हो जाता है। इस सम्बन्ध म दो मत हैं पहले मत के अनुसार सम्पादक को कालक्रमानुसार प्राचीन प्रतियो के मिलान के पश्चात आदश प्रति तयार कर सुधार करना उचित नही है। पाठ म यदि दोष हैं—अथसगति नहीं है—तो उसे रचयिता के ही दोष समझकर उसम निहित अथ को निश्चित करना चाहिए। इसस कई बार शब्दो से मनमाने अथ निकाले जाते हैं जसा पदमावत की विभिन्न सम्पादित प्रतियो मे देखा गया है। दूसरा मत यह है कि सम्पादक को शब्दो का खीच-तान कर अथ नही लगाना चाहिए। पाठ म थोडा-बहुत सुधार कर देना चाहिए जिससे साहित्य का निर्विघ्न रसास्वादन किया जा सके। दूसरा मत आधुनिक है। इसके अनुसार सदिग्ध पाठो को विशेष रूप से निदिष्ट किया जाता है। अन्त म काल्पनिक मूलादश की प्रति के निश्चयन की विधि से यह प्रसग समाप्त किया जाता है।

मान लीजिए, तुलसीकृत रामचरितमानस के अयोध्याकाड का पुनर्निमाण करना है। हम उसकी विभिन्न कालो की आठ प्रतिया उपलब्ध हो सकी हैं। हम उन्हें प्रति क प्रति ख प्रति ग, प्रति घ प्रति ड, प्रति च प्रति छ और प्रति ज नाम देंगे। इनके पाठ मिलान से यह निश्चय हुआ कि इनम प्रथम पाँच का एक गण बन जाता है और शेष तीन का दूसरा गण। प्रथम गण की प्रतियाँ काल्पनिक आदश प प्रति क आधार पर लिखित हैं और दूसर गण की प्रतियाँ काल्पनिक आदश फ प्रति क आधार पर लिखित हैं। पुन परा गण पर ज्ञात हुआ कि

प-गण के तीन उपगण हो सकते हैं (1) क ख (2) ग घ और (3) ङ। क ख का काल्पनिक आदर्श 'ल' और ग घ का 'व' है। इनमे ख क की प्रतिलिपि है और च, छ, ज का काल्पनिक आदर्श प है और इन सबका मूल स्रोत काल्पनिक आदर्श श है। यदि यह निश्चित हो जाता है कि ख क की प्रतिलिपि है तो ख प्रति को पृथक किया जा सकता है। इस प्रति का उपयोग वही होगा जहाँ क प्रति का कोई अंश त्रुटित होगा। इसे इस वृक्ष से समझा जा सकता है—
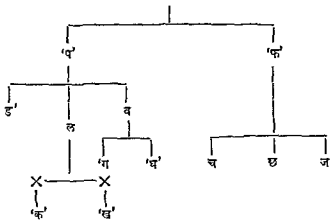
अब हम 'श' नामक काल्पनिक आदर्श प्रति का निर्माण करना है। अतः यदि क, ख ग घ, ङ च, छ ज प्रतियों में समान पाठ मिलता है तो वह आदर्श प्रति का पाठ है। यदि प-गण और फ-गण के पाठों में अन्तर है तो हमें केवल इसीलिए कोई पाठ सहसा स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए कि वह बहुप्रतियों में विद्यमान है। हो सकता है, एक प्रतिलिपिकार के प्रमाद का अनुकरण अन्यों ने किया हो। अतः सम्पादक को अन्य सहायक सामग्री की सहायता से स्वयं मूल पाठ निर्धारित करना पड़ेगा। अब हम 'प' काल्पनिक प्रति का पुनर्निर्माण *करना है। अतः हमें देखना होगा कि क्या ग घ के पाठ समान हैं? यदि हैं तो* यह व आदर्श प्रतिलिपि का पाठ है और यदि वे पाठ असमान हैं पर व प' गण की शेष प्रतियों में मिलते हैं तो वह 'व' का पाठ होगा। इसी प्रकार ग घ प्रतियों का पाठान्तर यदि फ गण की किसी प्रति में मिलता हो तो वही 'व' का पाठ समझा जायगा। यदि ग घ में पाठ प या फ गण की प्रतियों से न मिलते हों तो हम व' का पाठ संदिग्ध ही रखेंगे। ल' काल्पनिक आदर्श प्रति का पाठ-

निधारण भी ऊपर की ही व गण की विधि स होगा। फ आदश प्रति का पुनर्निर्माण यदि च, छ, ज प्रतिया मे समान पाठ है तो, सहज साध्य हो जाता है। यदि इन प्रतिया म पाठ भद हा और वह पाठ प गण का किसी भी प्रति मे मिल्ता हो ता वह समान पाठ ही क आदश प्रति का होगा और वही 'श का भी होगा। च, छ, ज का कोई पाठ किसी भी गण की प्रति से न मिल्ता हो तो वह सदिग्ध पाठ होगा और अपपाठ माना जायेगा। प और 'फ' आदश प्रतियो के समपाठ ही आदश प्रति श के पाठ होंगे। यदि कोई पाठ इन दो प्रतिया म भिन्न हो तो कोई भी पाठ श प्रति का पाठ हो सकता है पर उसे सदिग्ध पाठ ही मानना होगा। यदि काल्पनिक आदश प्रति 'श' से अनेक शाखाआ प फ व आदि का उदगम हुआ हो तो श का पुनर्निर्माण एक से अधिक प्रतियो क पाठ के आधार पर होगा। यह भी सम्भव है कि एक लिपि कार किसी ग्र थ के विभिन्न अशा को विभिन्न प्रतियो से भी लिपिबद्ध कर सकता है। ऐसी दशा मे सकर प्रतियो के पाठ को पाठान्तर ही मानना पडेगा।

इसमे सन्देह नहीं, प्राचीन ग्रथ सम्पादन का काय सहज साध्य नही है, कष्ट साध्य है और समय सापेक्ष भी है। पूना के भाण्डारकर शोध सस्थान मे महाभारत का सम्पादन-काय विभिन्न विद्वानो द्वारा हो रहा है। ज्ञात नही, उसे पूण होने मे कितना समय और लगेगा।

पाठालोचन लेखक द्वारा स्वहस्तलिखित ग्रन्थ का भी हो सकता है। वतमान मुद्रित ग्रन्थ भी पाठालोचित हो सकते हैं क्योंकि मुद्रित ग्रन्थ के सम्ब ध मे हम निश्चित रूप स नही कह सकत कि वह लेखक की प्रति का यथावत मुद्रण है। कई बार प्रकाशक और प्रूफरीडर तक अपनी इच्छा के अनुसार वाक्य रचना या शब्दो मे परिवतन कर देत हैं। ऐस परिवतन जब लेखक के सामने आते हैं तब वह पुस्तक क अन्त म मूल सुधार का पृष्ठ जुडवा देता है। फिर भी कुछ गलतियाँ छूट ही जाती हैं। मुद्रण-कला ने हस्तलेखन की कला को समाप्त ही कर दिया है। अत वतमान लेखक की स्वहस्त प्रति को यदि वह प्राप्त हो सके ता, हस्तगत करके ही हम उसकी भाषा आदि पर अपने विचार प्रकट कर सकत हैं और यदि प्राप्ति न हो सके तो उसक अन्य मुद्रित ग्रन्था की भाषा शली आदि सहायक सामग्री के आधार पर उसकी सम्भावित मूल प्रति का पुन निर्माण किया जा सकता है।

ग्रथा का ही नहीं शिलालेखो म उत्कीण लेख या लघु रचना का भी पाठालोचन अथवा पुनर्निर्माण किया जा सकता है क्योंकि शिलालेख पर काल या मनुष्य का ध्वसकारी काय उसक कुछ या अधिक भाग का खडित कर दता है। एसी दशा म पाठालोचक सदभ से शब्दा का यथास्थान जोडकर मूल पाठ को निर्मित कर दता है। हिन्दी म स्व० माताप्रसाद गुप्त ने 'राउल वल' नामक

कृति का जो 'शिला' पर उत्कीर्ण थी और यत्र-तत्र खंडित थी, पाठोद्धार किया है। इससे साहित्य के इतिहास की पुरानी कड़ी का पता चला है। यह ग्यारहवीं शताब्दी की रचना प्रेम काव्य है जिसका रचयिता रोड है। एक ही शिला पर पद्य-गद्य में पूरी काव्य-कृति उत्कीर्ण है। इसमें कलचुरी-वंश के किसी सामन्त की सात नायिकाओं का नखशिख वर्णन है। ये नायिकाएँ सामंत की नवविवाहिताएं हैं जो महाराष्ट्र, गुजरात राजस्थान आदि भिन्न भिन्न प्रान्तों की हैं। इस कृति का महत्त्व इसलिए है कि यह लोगों की इस धारणा को खंडित करती है कि नव्य भारतीय-आर्य भाषाओं का साहित्य में प्रयोग वि० स० 1400 के पूर्व नहीं हुआ। यह ईस्वी ग्यारहवीं शती की रचना है और भाषा भाव दोनों में प्रौढ़ है। शिला की अन्तिम पंक्ति के कटकर निकल जाने से इसकी रचना-तिथि अनिश्चित थी, पर पाठालोचक डा० गुप्त ने सहायक सामग्री का उपयोग कर उसे निश्चित कर दिया। उन्होंने उसकी लिपि की परीक्षा कर यह निश्चय किया कि वह भोजदेव के 'कूर्मशतक' वाले धार के शिलालेख से मिलती है। दोनों में एक भी मात्रा का अन्तर नहीं है और उसके बाद के लिखे हुए अर्जुन वर्मदेव के समय के 'पारिजात-मंजरी' के धार के शिलालेख की लिपि किंचित बदली हुई है (देखिए, इपिग्राफिया इण्डिया, जिल्द 8, पृष्ठ 961) इसलिए इस लेख का समय 'कूर्मशतक' के उक्त शिलालेख के आसपास, अर्थात 11वीं ई० शती, होना चाहिए। इस प्रकार, जैसाकि हम पहले कह चुके हैं सहायक सामग्री से तथ्य निर्धारण में सहायता मिल जाती है।

अभिलेखों, शिलालेखों ताम्रपत्रों और सिक्कों पर उत्कीर्ण प्रलेखों की प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध है क्योंकि कारीगरों के मार्गदर्शन के लिए वे प्रारम्भ में भूर्जपत्रों या ताड़पत्रों पर लेखकों द्वारा लिखे जाते होंगे। हस्तलिखित ग्रन्थों को तो लिपिकों द्वारा लिखवाया जाता रहा है और एक ग्रन्थ की कई लिपि प्रति-लिपियां होती रही हैं। अतः उनमें विकृतियों का आ जाना स्वाभाविक है। यदि लिपिक बुद्धिमान और ग्रंथ के विषय का ज्ञाता भी हुआ तो वह मूल ग्रन्थ की नकल करते समय अपनी बुद्धि से यत्र-तत्र घटाई-बढ़ाई भी करता होगा। इसीलिए हस्तलिखित ग्रन्थों का पाठ निर्धारण आवश्यक होता है। 'राजशेखर' ने 'काव्य मीमांसा' में लिखा है कि कवियों को काव्यों की सुरक्षा के लिए उनकी कई प्रतिलिपियाँ तैयार करा लेनी चाहिए। अतः ग्रन्थकर्ता के जीवन-काल में ही अच्छे ग्रन्थ कई व्यक्तियों द्वारा लिखे जाते रहे होंगे और पुस्तकालयों में संगृहीत होने पर पुस्तकालयाध्यक्ष भी उनकी प्रतिलिपि कराते रहे होंगे। इन सब कारणों से हस्तलिखित ग्रन्थ की मूल प्रति की आदर्श प्रति की निर्धारणा आवश्यक हो जाती है। प्रतिलिपि कैसे तैयार की जाती रही होगी, इसकी ठीक ठीक जानकारी हमें नहीं है पर मूल प्रति की सुरक्षा का ध्यान अवश्य रखा

जाना होगा। श्री मत्र की आधुनिक समय की धवला जयधवला तथा महाधवला की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियाँ दक्षिणी कनाल के मुदिविद्रा नामक जन भण्डार में सुरक्षित पायी गयी। इन ग्रथा की प्रतिलिपियाँ प्राप्त करने क लिए बडे धय और चातुय से काम लेना पडा।

कई नष्ट ग्रथो का पता हमें अनुवाद अय ग्रथा में उनके उद्धरण व टीका ग्रथा से लगा है। अनेक बौद्ध ग्रय चीन तिब्वत तथा चीन के प्राचीन अभिलेखा गारा तथा विद्वानो के यहाँ भोट या चीनी भापा म अनूदित रूप में प्राप्त हुए हैं। राहुल साकृत्यायन डॉ० रघुवीर आदि शोधकर्ताओ ने एस कई ग्रथा का पता लगाकर उहें अपन देश में लाकर पुन नागरी में सस्कृत में रूपान्तरित कर सुरक्षित रखा है।

हम देखत हैं कि प्राचीन ग्रथा की प्रतिलिपिया की परम्परा भिन भिन होती है। वे कही अनुवाद रूप मे कही चित्रलिपि म और कही भिन देश म प्राप्त होती हैं। अत उनको प्राप्त कर उनका पाठ निर्धारण करना आसान काय नही है। यूरोप के विद्वानो ने लटिन-ग्रथो के पाठालोचन की निम्नलिखित प्रणाली अपनायी थी—

(1) हस्तलिखित ग्रथो एव उनके साक्ष्य की सारी सामग्री इकट्ठी की गयी, और उसे वश परम्परा के रूप म व्यवस्थित किया गया।

(2) सचित सामग्री का पुन स्थापन किया गया।

(3) ग्रथकर्ता द्वारा लिखित पाठ का पुन स्थापन किया गया।

(4) मूल ग्रथ लेखक द्वारा उपयोग मे लाए गए स्रोतो का पृथक्करण किया गया।

पाठो के परिवतन के सम्बध मे डा० सुखटनकर ने निम्न सुझाव दिए हैं—

'किसी काव्य ग्रथ का पाठालोचन करना हो तो किसी अच्छे सस्करण को आधारभूत मानकर कविता के एक एक पद को इकाई मानना चाहिए और उन्हे स्पष्ट रूप से वणक्रम के अनुसार कोष्ठको मे पृथक पृथक कागज पर ऊपर वाले हिस्से म लिखना चाहिए। जिन पदा मे भेद हो उन्हें कागज के नीचे वाले हिस्से म सम्बधित पद के नीचे वणक्रम क अनुसार कोष्ठको में लिखना चाहिए। कागज के बायें हाशिये म प्रत्येक कोष्ठक के साथ उन हस्तलिखित प्रतिया का नाम होगा जिनका परितुलन हुआ हो और दाहिने हाशिय मे कुछ अय अतिरिक्त जानकारी लिखन के लिए खाली स्थान सुरक्षित रखना चाहिए। डा० सुखटनकर न महाभारत क सस्करण क उपोदघात म इस प्रक्रिया की विस्तृत जानकारी दी है उस पढ लेना चाहिए।

एन्गटन ने पचतत्र के पाठालोचन म जिस प्रक्रिया का प्रयोग किया है वह इस प्रकार है—

उन्होंने सर्वप्रथम पंचतंत्र के उन सभी संस्करणों को एकत्र किया जो मूल पंचतंत्र की पुनरचना में सहायक हो सकते थे। तत्पश्चात उन्होंने प्रत्येक संस्करण की सामग्री की दूसरे संस्करण की सामग्री से बारीकी से तुलना की। इसके लिए उन्होंने पाठ को छोटी छोटी इकाई में जो नियमतः कभी एक वाक्य, पद या वाक्यांश की थी, विभाजित किया। तदनन्तर ऊपर बताई हुई विधि से उनका परितुलन किया। इस रीति से उन्होंने गद्य पद्य दोनों के संतुलन का कार्य पूरा किया।

उपर्युक्त प्रविधि को और स्पष्ट रूप से समझाया जाता है। पाठालोचक उपलब्ध प्रतियों को उनकी पुष्पिकाओं के आधार पर काल क्रमानुसार जमाता है। उसके पश्चात उनकी तुलना करता है। तुलना करने के पूर्व प्रतियों पर क्रमांक 1, 2, 3 4 5 आदि डालता है। फिर क्रमांक 1 की प्रति को जिसे वह आदर्श मानकर चलता है, प्रत्येक पंक्ति को शब्दों में बाँटकर लिखता है और उसके नीचे अन्य प्रतियों को उसी पंक्ति में लिखता जाता है। इससे पाठ भेद का तुरन्त ज्ञान हो जाता है। नीचे तुलना का ढंग दिया जाता है—

प्रति क्रमसंख्या	काव्य-पंक्ति विभाग										विशेष
प्रति क्र०—1	मिरगावती	निहचो	क	जानाँ	वहै	कुवर	जा	मन	कर	मानाँ	
प्रति क्र०—2		निस्चै	क	जानाँ	उहइ	कुवर	जा	मन	कर	माना	
प्रति क्र०—3		निहचौं	कै	जाना	वहै	कुवर	जा	मुनि	कर	माना	
प्रति क्र०—4	,	निहचौं	क	जाना	उहइ	कुवर	जा	मन	करि	माना	

उपर्युक्त विधि से समस्त पुस्तक के पाठ को विभाजित कर लेना चाहिए। विशेष खाने में पंक्ति में खंडित त्रुटित आदि शब्दों का उल्लेख कर देना चाहिए।

विकृतियों का संशोधन

क्या पाठ निर्धारण के समय पाई जानेवाली विकृतियों में सुधार किया जाना चाहिए या उन्हें ज्यों-का-त्यों रहने दिया जाना चाहिए? इस सम्बन्ध में

विद्वानो में मतभेद है। जहाँ तक सम्भव हो प्राचीन उपलब्ध प्रतियों का खूब अध्ययन करने के उपरान्त ही संशोधन करना चाहिए। यदि आपने अर्थ संगति के आधार पर किसी स्थल पर संशोधन किया है तो यह प्रयत्न लगातार होता रहे कि वह संशोधित पाठ किसी प्राचीन लिपि में मिलता है या नहीं। यदि मिल जाता है तो संशोधन उचित माना जायगा। यदि नहीं मिलता है तो उसे संदिग्ध या विचारार्थ लिख देना उचित होगा।

हस्तलिखित ग्रंथों में विकृतियों के कारण

हम पहले कह चुके हैं कि विकृतियाँ बहुधा लिपिकार के अज्ञान या बहुत अधिक सज्ञान होने के कारण हो जाती हैं। मनुष्य से भूल होना स्वाभाविक है। इस सिद्धान्त को मान लेने पर भी हम यदि उनके कारणों को जान जायँ तो पाठ निर्माण में सहायता मिल जायगी।

अन्य पाठालोचन के विशेषज्ञों—हाल, कत्रे आदि—ने पाण्डुलिपियों में विकृतियों के निम्नलिखित कारण खोज निकाले हैं—

(1) **वर्ण साम्य**—जब पंक्ति में पास पास एक ही वर्ण या अक्षर आ जाता है तो बीच का समान वर्ण लिखने से छूट जाता है।

(2) **शब्द-साम्य**—जिस प्रकार समान वर्ण या अक्षरों के कारण वर्ण लोप हो जाता है उसी प्रकार समान शब्दों के कारण भी अशुद्धि हो जाती है।

(3) संक्षिप्त रूपों का मिथ्या अर्थ लगाना।

(4) अशुद्ध समास विग्रह।

(5) शब्दों के अत्याक्षरों को अशुद्ध रीति से मिलाना और एक शब्द को दूसरे वाक्य में मिलाना।

(6) वर्णों शब्दों एवं वाक्यों का क्रम परिवर्तन वाक्यों खण्डों एवं पृष्ठों का विस्थापन।

(7) प्राकृत अथवा आधुनिक भाषाओं में संस्कृत का अशुद्ध प्रयोग और प्राकृत अथवा आधुनिक भाषाओं के अंशों का संस्कृत में अशुद्ध प्रयोग।

(8) उच्चारण-परिवर्तन के कारण अशुद्धियाँ।

(9) अर्थों में विभ्रान्ति।

(10) नामवाचक संज्ञाओं (प्रॉपर नाउन्स) में विभ्रान्ति (इसका उदाहरण डॉ० कत्रे की भारतीय पाठालोचन की भूमिका के हिन्दी अनुवाद में मिलता है)। कत्रे की पुस्तक अंग्रेजी में है जिस पर इनका नाम रोमन लिपि में KATRE लिखा हुआ है। अनुवाद-ग्रन्थ में कत्रे का कात्रे छप गया है। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास प्रथम भाग के पृष्ठ 273 पर रोमन लिपि में लिखित Madhukar Anant Mehandale का नाम 'डॉ० मधुकर अनन्त

मेहडेल छपा है। उनके नाम का आस्पद 'महदले' है। यह भूल महाराष्टीय नामो से अपरिचित रहने और रोमन लिपि के कारण हुई है। हिन्दी म रोमन मे लिखित कई नाम गलत लिखे जाते हैं—विशेषकर फ्रेंच और रूसी नाम।

(11) अपरिचित शब्दो के लिए परिचित पर्याय या शब्द का प्रयोग। जब प्रतिलिपिकार किसी शब्द से परिचित नहीं होता तो वह उसी का पर्याय शब्द रख देता है पर उससे *कवि का भाव-सौन्दय नष्ट होने की सम्भावना रहती है।* इस वह भूल जाता है। प्रसाद' के आंसू का एक अश है—

रो रोकर सिसक सिसक कर,
कहता मैं करुण कहानी।
तुम सुमन नोचते जाते
करते जानी अनजानी।'

इन पक्तियो मे एक चित्र खींचा गया है। उद्यान म प्रेमी और प्रेमिका खडे हैं। प्रेमी प्रेमिका से अपना प्रेम निवेदन करता है—रो रोकर सिसक सिसक कर—पर प्रेमिका खडी-खडी सुमन की पखुडिया को नोचती जाती है और उपेक्षाभाव दर्शाती है या उसका अभिनय करती है। इस पर प्रेमी क्षुब्ध होकर कहता है— 'तुम जानबूझकर सुमन नहीं, मेरे सु मन को मसल रही हो।' 'सुमन म श्लेष है। प्रेमी अपने मन को सुमन—सु दर मन—इसलिए कहता है कि उसम उसकी प्रेमिका का अधिवास है। अब यदि सुमन' के स्थान पर इसका पर्याय कुसुम रख दिया जाय तो कवि का सारा भाव-सौन्दय ही नष्ट हो जायगा। सुमन' शब्द न ही उसम सौरभ भरा है। इसीलिए कहा गया है कि प्रतिलिपिकार को सावधानी स मूल प्रतिलिपि मे शब्दो मे परिवतन करने का साहस करना चाहिए।

(12) पुरानी वतनी के स्थान पर नई वतनी का प्रयोग। पुरानी पाण्डुलिपिया म राम, काम म रा और का के ऊपर अनुस्वार लगा हुआ मिलता है। यदि आधुनिक लिपिकार उनपर से अनुस्वार हटा देता है तो वह मूल प्रतिलिपि की रक्षा नही करता।

(13) क्षेपक अथवा अज्ञान म हुई भूलो के परिणामो म सुधार करने का प्रयत्न।

(14) लोप—एक ही शब्द या अक्षरो के आरम्भ तथा अन्त होने वाले शब्दो को छोडना।

(15) किसी भी प्रकार का सामान्य लोप।

(16) वृद्धि—पास या अनिनिकट के छन्द या पाठ की पुनरावृत्ति।

(17) दो पक्तियो के बीच अथवा हाशिया म अपनी ओर म कुछ जोड देना।

(18) प्रक्षिप्त पाठ या प्रक्षेप ।

डा० क्त्रे ने उपयुक्त दोषों के उदाहरण ग्रन्थों से दर्शाए भी हैं ।

हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतिलिपि करना भी एक श्रम-साध्य व्यापार है। प्रतिलिपिकार को ग्रन्थ की भाषा तथा विषय का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। उसे ग्रन्थ की लिपि का ही नहीं विदेशों की भी लिपियों का ज्ञान होना चाहिए क्योंकि इधर कई *ग्रन्थ अभारतीय लिपियों में भी लिप्यन्तरित किए गए हैं।* अतः जब तक विभिन्न लिपियों का ज्ञान न होगा भूलें होना स्वाभाविक है ।

कई बार प्रतिलिपिकार मूल ग्रन्थ या आदर्श प्रति को दूसरे से पढवाता है और उसे सुनकर लिखने लगता है। ऐसी स्थिति में जो प्रति तैयार होगी वह लिपिकार की अपनी शब्द वर्तनी और प्रवृत्ति के अनुसार होगी। ऐसा ज्ञात होता है कि संतों की वाणी की प्रतिलिपि करने में अधिक सावधानी बरती जाती रही है क्योंकि उनके शब्दों में मन्त्र शक्ति निहित मानी गई है। पर साहित्य ग्रन्थों के सम्बन्ध में आवश्यक सतर्कता कम बरती गई है ।

पाण्डुलिपियों के सम्पादन के कतिपय व्यावहारिक सुझाव

हम संगृहीत प्रतिलिपियों की पाठ-तुलना की विधि बता चुके हैं कि आलोच्य ग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति को शब्दों में किस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है। नीचे हम डा० कत्रे के कतिपय सुझावों को दे रहे हैं—

(1) पाठालोचक को अपनी भूमिका में उस सब सहायक सामग्री का उल्लेख करना चाहिए जो ग्रन्थ के अध्ययन के लिए उपयुक्त समझी गई है ।

(2) सहायक सामग्री के अन्तर्गत, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, टीकाएं संक्षेप सुभाषित गृहीत अंश (एडेप्टेशन्स) आदि आते हैं ।

(3) प्रत्येक प्रतिलिपि के संकेत चिह्न के ऊपर उसकी लेखन काल भी सकलित कर देना चाहिए। जैसे आपने एक प्रति को क नाम दिया है और वह 14वीं शती की है तो आप प्रति में जहाँ क लिखा है वहीं उसके ऊपर 14 लिख दें (क[14])। इससे आपको तुरन्त ज्ञात हो जायगा कि प्रतिलिपि का लिपि-काल 14वीं शताब्दी है। यहां यह स्मरण रहे कि भूमिका में संकेत चिह्नों की व्याख्या की जाय ।

(4) भूमिका में विभिन्न प्रतियों में पायी जाने वाली समानताओं असमानताओं का भी उल्लेख होना आवश्यक है ।

(5) *सम्पादक को विभिन्न प्रतियों के पाठों की विशेषताओं का और* विभिन्न प्रतियों के पाठों के आपसी सम्बन्धों पर विचार करना चाहिए ।

(6) यदि सम्पादित ग्रन्थ के अन्य सम्पादकों द्वारा सम्पादित संस्करण उपलब्ध हों तो उनकी न्यूनता और स्वसम्पादित संस्करण की विशेषता की भी

चर्चा होनी चाहिए ।

(विशेष जानकारी के लिए डा० परमेश्वरीलाल गुप्त द्वारा पाठालोचित कुतुबन-कृत मिरगावती, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा सम्पादित पद्मावती भाष्य डा० माताप्रसाद गुप्त तथा आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रामचरितमानस के संस्करण की भूमिकाएं देखिए ।)

एक दृष्टि में
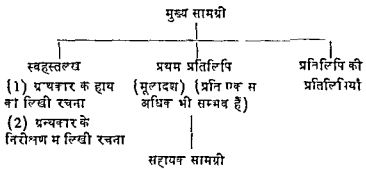
उपयुक्त उपकरणों पर अंकित आलेख सहायक सामग्री के अन्तर्गत आते हैं ।

आदर्श प्रतिलिपि के पाठ निर्धारण की वैज्ञानिक प्रविधि
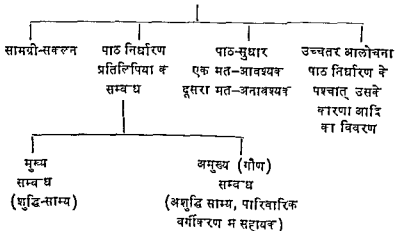
(प्रतिलिपियो के परिवारो की सभी या अधिक शाखाओ म पाया जाने वाला पाठ ग्राह्य माना जाता है।)

टिप्पणी—पाठालोचन साहित्यालोचन नही है, वह केवल रचना के मूलरूप को विशेष प्रतिक्रिया द्वारा निर्धारित करता है।

साहित्यालोचन रचना की पुनर्निमिति के पश्चात उसके साहित्यिक मूल्य का निर्धारण करता है। तात्पय यह कि साहित्यालोचन का काय तभी प्रारम्भ हो पाता है जब पाठालोचन का काय समाप्त हो जाता है। क्योंकि जब तक कृतिकार द्वारा लिखित रचना का वास्तविक रूप प्रस्तुत नही होगा रचना की आलोचना सम्भव नही हो सकेगी।
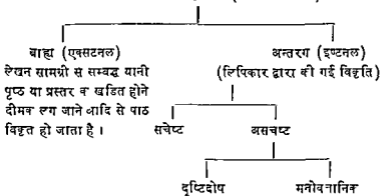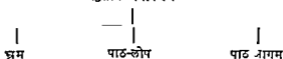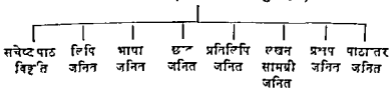
डा० गुप्त ने पाश्चात्य पाठालोचको के सभी वर्गीकरणो को अपन वर्गीकरण म सम्मिलित कर लिया है। सचेष्ट पाठ विकृति प्रतिलिपिकार स्वय जानबूझ

कर करता है। यदि उसकी सूझबूझ बहुत तेज हुई तो वह मूल पाठ को सर्वथा भ्रष्ट भी कर सकता है।

पाठालोचन की दो प्रक्रियाएँ हैं एक वैज्ञानिक और दूसरी साहित्यिक। शुद्ध वैज्ञानिक प्रक्रिया मक्षिकास्थाने मक्षिका—नीति का अनुसरण करती है। साहित्यिक प्रक्रिया प्रतिलिपियों में जिन स्थलों पर एकरूपता या संवादिता नहीं मिलती वहाँ प्रसंगानुरूप सार्थक शब्द रखने में संकोच नहीं करती। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र (इसी संदर्भ में) लिखते हैं 'कोरी वैज्ञानिक प्रक्रिया से हिन्दी के किसी ग्रन्थ का ठीक-ठीक सम्पादन नहीं हो सकता। उसके लिए साहित्यिक सम्पादन की सरणि का परित्याग अहितकर है। वैज्ञानिक प्रक्रिया भारतीय दार्शनिक दृष्टि से विज्ञान होने से जड़ है। साहित्यिक प्रक्रिया दर्शन होने से चेतन है। मूल ग्रन्थ के लेखन से लेकर सम्पादन तक सभी चेतन प्राणी होते हैं। जड़ की गतिविधि जितनी व्यवस्थित होती है उतनी चेतन की नहीं। अतः चेतन का प्रयास सर्वथा नियत नहीं होता। वैज्ञानिक प्रक्रिया शब्द पर अधिक ध्यान देती है और साहित्यिक प्रक्रिया शब्द पर ध्यान देते हुए भी अर्थ पर विशेष दृष्टि रखती है। साहित्य 'शब्द और अर्थ का संपृक्त रूप' होता है, अतः शब्द और अर्थ दोनों पर समान दृष्टि ही प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन में उपयोगी हो सकती है। वैज्ञानिक सरणि के नियम का इतना ही सदुपयोग या पालन हो सकता है कि सम्पादक किसी शब्द के हस्तलेखों में न मिलने पर उस अर्थ-बल पर बदल न सके। अतः दोनों सरणियों के तुल्य बल-संयोजन से ही सर्वोत्तम कार्य हो सकने की अधिक सम्भावना है। (मानस के काशिराज-संस्करण के 'आत्मनिवेदन' से)

कतिपय प्राचीन ग्रन्थों के पाठ निर्धारण की प्रक्रियाएँ

मधुमालती मंझन की प्रसिद्ध कृति है जिसका रचना काल सन 1545 ईस्वी है। इसका सम्पादन स्व० डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने किया है। डॉ० गुप्त पाठालोचन की वैज्ञानिक प्रक्रिया के समर्थक हैं। उन्हें 'मधुमालती' की केवल चार प्रतियाँ प्राप्त हुई थीं, जिनका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

(1) 'रा'—यह प्रति रामपुर से प्राप्त हुई। अतः इसका नामकरण 'रा' कर लिया गया। इस प्रति की पुष्पिका फारसी में है। इसमें केवल प्रारम्भ का एक पत्र नहीं है। यह फारसी लिपि में लिखा गया होगा। इसी की एक अन्य प्रतिलिपि भारत कला भवन, हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में और एक माइक्रोफिल्म-कॉपी नेशनल आर्काइव्ज नई दिल्ली में है।

(2) 'भा'—यह प्रति भारत कला भवन वाराणसी से प्राप्त होने के कारण 'भा' नामांकित है। यह प्रति भी फारसी लिपि में लिपिबद्ध है। आकार

9 ×7 से लगभग। यह प्रति आदि, मध्य और अन्त म त्रुटित है जिसके कारण प्रस्तुत सस्करण के छन्द 1 35 41 78 107 110 538 तथा 539 इसम नही हैं। यह बहुत ही सावधानी से लिखी हुई है और फारसी के लिपि चिह्नो का प्रयोग इसम बडी पूर्णता के साथ किया गया है।

(३) मा —यह प्रति भी भारत कला भवन वाराणसी स ही प्राप्त हुई है। यह अत्यधिक त्रुटित है। यह माधोदास की लिखी हुई है। (इसी स इसको नाम मा से चिह्नित किया गया है।) यह आदि म प्रस्तुत सस्करण के छन्द 286 तक और फिर उसके बाद प्रस्तुत सस्करण के छद 346 । 422 तक त्रुटित है। जिस समय सम्पादक इसका पाठ मिलान करने गए, यह प्रति उन्हें नहीं प्राप्त हो सकी। अत उन्होंने इसकी स० 1999 की सावधानी स की हुई प्रतिलिपि से ही काम निकाला।

(४) 'ए —यह एकडला (जिला फतहपुर) की प्रति है। इसकी पुष्पिका निम्नलिखित है—

> 'इति श्री मधुमालती पोथी समाप्त है जो सवत 1744 सम
> नाम जेठ सुदी दुजी को तआर भई बार बुधवार को।
> पडितजन सों बिनती मोरी। टूटा अक्षर मरवहि जोरी।
> गुफ्तार मिया मझन किन राममलूक सहाय लिखित गहिराम।

केवल प्रथम छद के लिए 'ए प्रति का उपयोग किया गया है।

प्रतियो की लिपि परम्परा

रचना की प्रतिया दो लिपियो म पायी जाती है—नागरी तथा फारसी म। नागरी मे लिखी हुई प्रतिया म नागरी लिपि-सम्बन्धी विकृतियाँ और फारसी लिपि से सम्बधित विकृतिया स्वभावत पायी जायँगी। इन्हे सम्पादित पाठ के साथ दिए हुए पाठान्तरो म दिया गया है। किन्तु जिस प्रति की जो लिपि इस समय है भिन्न लिपि से सम्बधित विकृतियाँ उसम भी पायी जाती हैं। यह ध्यान देने योग्य है। डा० गुप्त ने इसी तथ्य को उदघाटित करने वाली पाठ विकृतिया का उल्लेख किया है।

'मा प्रति नागरी मे लिपिबद्ध है। इसमे फारसी लिपि से सम्बन्धित असावधानिया के कारण विकृतिया हुई हैं। यथा—

वे को ये समझन के कारण—वियापिउ—पिया पीउ।

चे' को जीम पढन के कारण—उछाहा—उजाहा।

गाफ को काफ पढने के कारण—थिगथिग—थकथक।

भा —यह प्रति फारसी म लिपिबद्ध है किन्तु इसमे कुछ पाठ विकृतिया

नागरी लिपि से सम्बंधित हैं। यथा—

आ की मात्रा को ई की मात्रा समझने के कारण—कमान—कमीन।

ज' को त समझने के कारण—जारी—तारी।

रा —यह प्रति फारसी लिपि मे है किन्तु इसमे ऐसी विकृतियो की भरमार है जो नागरी लिपि से सम्बंधित हैं—

ई' की मात्रा को आ की मात्रा समझने के कारण—सिर—सीर—सार।

ग' को म समझने के कारण—गम—मम।

'न' को र पढने के कारण—हनेउ—हरेउ।

पुनरावृत्तिसूचक '2 को न समझकर छोड देने के कारण—चढि 2—चढि।

'ए प्रति नागरी लिपि मे है किन्तु इसमे फारसी से सम्बंधित पाठ विकृतियो की भरमार है। इसके अनेक उदाहरण सम्पादक ने दिये हैं।

विकृति साम्यो के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातो की ओर डा० गुप्त ने ध्यान आकर्षित किया है—

(1) 'मा, 'भा 'ए के विकृति साम्य के स्थल रचना के लगभग चौथाई भाग मे हैं।

मा प्रति का लगभग दो तिहाई भाग खडित है और 'भा भी अशत खडित ही है अन्यथा विकृति साम्य के स्थलो की सख्या लगभग चौगुनी होती।

(2) 'भा 'ए के विकृति साम्य के समस्त स्थलो पर भा खडित है। इसलिए इस या ए के विकृति साम्य के भी मा भा ए की विकृति साम्य होने की पूरी सम्भावना है। और साम्य के स्थलो की सख्या काफी बडी है या अशत खडित है। अन्यथा इसकी सख्या कदाचित कुछ और बडी होती।

(3) मा भा के विकृति साम्य के समस्त स्थल मा भा-ए के विकृति साम्य के स्थलो की भाति रचना के लगभग चौथाई भाग से हैं, क्योकि मा तथा भा दोनो उपयुक्त प्रकार से खडित हैं। अन्यथा विकृति साम्य के स्थलो की सख्या लगभग चौगुनी होती।

(4) मा 'ए के विकृति साम्य के रचनास्थल लगभग एक तिहाई भाग से हैं। क्योकि जसा ऊपर कहा गया है मा का लगभग दो तिहाई भाग खडित है। अन्यथा विकृति साम्य के स्थलो की सख्या लगभग तिगुनी होती।

(5) रा ए दोनो लगभग पूर्ण प्रतिया हैं। विकृति साम्य के स्थलो मे उस प्रकार की वृद्धि की सम्भावना नही है। फलत यह प्रकट है कि विभिन्न प्रतियो के उपयुक्त प्रकार के सम्बन्ध निश्चित पाठ विकृतियो की एक पर्याप्त रूप से बडी सख्या पर आधारित हैं और इसलिए सुनिश्चित हैं। इन सम्बन्धो

को निम्न रयाचित्र द्वारा यक्त किया गया है—
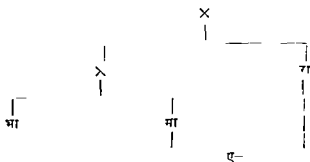
इसस नात होगा कि भा और मा एक कुल की हैं रा भिन्न कुल की है तथा ए दोना कुलो के मिश्रण का परिणाम है।

प्रतियो क पाठ सम्बन्धो के आधार पर निम्नलिखित प्रकार स रचना का सम्पादन किया गया है—

1 जो पाठ समस्त प्रतियो मे समान है उस स्वीकार किया गया है।

2 जो मा और भा मे स किसी म और रा म है उस स्वीकार किया गया है।

3 जहा पर मा भा मे एक पाठ और रा म भिन्न पाठ है वहा पर दोनो म से जो पाठ विषयक समस्त अतरग और वहिरग सम्भावनाओ की दृष्टि स सम्भव नात हुआ है वह स्वीकारा गया है।

4 ए प्रति का पाठ दोनो शाखाओ क मिश्रण का परिणाम होने क कारण रचना के पाठ निर्धारण के लिए उन्ही स्थलो पर देखा गया है जहा पर मा और भा दोनो क समान रूप स खडित होने के कारण दो म स किसी का भी पाठ प्राप्त नही है और एक का पाठ रा क पाठ से भिन्न है।

5 रचना क प्रथम छन्द मे केवल ए का पाठ प्राप्त होने के कारण आवश्यक सशोधनो के साथ उसी को ग्रहण करना पडा है।

इन सिद्धान्तो का प्रयोजन केवल विभिन्न स्थलो पर पाठ निर्धारण क लिए ही नही किया गया है वरन रचना क छद निर्धारण क प्रश्न—अथात कौन स छद मूल रचना क होने चाहिए और कौन स प्रक्षिप्त—का हल करने म भी इन्हा सिद्धान्तो का आश्रय लिया गया है। रचना की दो स्वतत्र शाखाओ के पाठ प्राप्त हो जाने से पाठ निर्धारण अपेक्षित प्रकार का हो सका है। पाठ सशोधन की आवश्यकता बहुत ही कम पडी है।

यद्यपि डा० गुप्त न वैज्ञानिक प्रणाली का महत्त्व दिया है फिर भी जहाँ उन्हें सशोधन की आवश्यकता पडी है वहाँ निसन्देह साहित्यिक प्रणाली का ही

सहारा लेना पडा है। अत पाठालोचन मे एक प्रणाली के आग्रह से काम नही चलता।

नन्ददास ग्रन्थावली का सम्पादन

प० उमाशकर शुक्ल ने 'पाठालोचन' शास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया है। उन्होने नन्ददास के ग्रन्थो के सम्पादन मे जिस प्रविधि का प्रयोग किया है उसे हम उनकी सम्पादित ग्रन्थावली से दे रहे हैं।

किसी भी ग्रन्थ के सबसे अधिक सम्भावित मूल रूप का उद्धार करना ही उस ग्रन्थ के सम्पादन का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। इस सम्भावित रूप तक पहुचने का प्रधान साधन उस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। हस्तलिखित प्रतियो मे भी जो पाठ कवि के रचना-काल तथा निवास-स्थान से अधिक निकट हैं उन्ही पाठो के प्रामाणिक होने की अधिक सम्भावना है। नन्ददास के काव्य ग्रन्थो का प्रस्तुत सम्पादन यथासम्भव ऐसी ही प्रतियो के आधार पर हुआ है। 'रास-पचाध्यायी', 'भँवरगीत' आदि के मुद्रित सस्करणो मे ऐसे बहुत से पाठ मिले जिनका पोथियो मे कोई अस्तित्व न था। अतएव विवश होकर उन्हे मूल पाठ से हटा देना पडा।

कवि की भाषा के व्याकरणिक रूपो को स्थिर करने मे पोथियों की प्रवृत्तियो के अध्ययन के साथ ही प्रयोगो की ऐतिहासिकता पर विचार करना भी लाभप्रद सिद्ध होता है—कम-से कम प्राचीन तथा आधुनिक प्रयोगो की जानकारी से हमारे निष्कर्षों मे अधिक दृढता आ जाती है। इस प्रणाली का जिस रूप मे उपयोग हुआ है उसके कुछ व्यावहारिक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

1 मथुरा तथा भरतपुर आदि स्थानो की प्रतियो मे अद्ध विवृत ए-ओ ध्वनिया क्रमश ऐ-औ द्वारा व्यक्त की गई हैं जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि की मूल कृति मे भी इन्हे इसी रूप मे लिखा गया होगा। कभी-कभी पोथियो ने तत्सम शब्दो को भी इसी प्रकार लिखा है जैसे तैजमय 'प्रेम' 'रौम' 'जौति'। उच्चारण की दृष्टि से इन परिवर्तनो का मिलान स्वाभाविक है, किन्तु पोथियो मे ये रूप नियमित रूप से नहीं हैं फलत इन्हे प्रश्रय देना उचित नही है।

तत्सम शब्दो की ड ण आदि अनुनासिक तथा 'श ष' आदि ऊष्म ध्वनियां भी नियमित रूप से नही प्रयुक्त हुई हैं। सग 'चचल', मणि 'शास्त्र', शेष 'शुक्देव' आदि प्रचलित शब्द क्रमश सग 'चचल' मनि 'सास्त्र', सस' 'सुकदेव' के रूप मे अधिक सख्या मे मिलते हैं। अप्रचलित या कम प्रचलित शब्दो के सम्बन्ध मे परिस्थिति भिन्न है। प्रतियो मे अथप,

'किल्विष, 'शोषन, विश्राम्य निश्चित', 'घिषन, श्रमकन आश्रय को 'अस्त्रप 'किल्विम सोसन,' विस्त्राम्य निस्चिन घिसन स्नकन, 'आस्त्रय' करके नहीं लिखा गया है। ऐतिहासिकता के विचार से कवि के समय ध्वनियों का उच्चारण चाहे जिस प्रकार से होता रहा हो किन्तु जब प्रतियों में तत्सम रूपों को ग्रहण किया गया है तब हम भी इन्हें इसी रूप में रखना चाहिए।

2 परसर्ग कौ की अनुनासिकता एक विवादग्रस्त विषय है। मान्य प्रतियों में कर्म सम्प्रदान में इसे बहुधा अनुनासिक रूप में रखा गया है किन्तु षष्ठी के अर्थ में इसके अनुनासिक तथा निरनुनासिक दोनों रूप व्यवहृत किये हैं। प्राचीन ब्रज में कर्म सम्प्रदान में दोनों रूप तथा सम्बन्ध में निरनुनासिक रूप ही मिलते हैं। आधुनिक ब्रज में भी मथुरा के आसपास सम्बन्ध में निरनुनासिक रूप पाये जाते हैं। सम्भवत कवि के समय में भी इस अर्थ में निरनुनासिक रूप (अर्थात कौ) का ही चलन रहा होगा। अत इसे ग्रहण कर लिया गया है।

*सज्ञाओं तथा सर्वनामों में हि अथवा हिं प्रत्यय लगाकर अनेक सयोगा*त्मक रूप विभिन्न कारकों के लिए पोथियों में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें सज्ञाओं के रूप बहुधा निरनुनासिक हि के योग से बने हैं (जैसे आदि जिन कमलहि को पहचान मन-वच क्रम जु हरिहि अनुसरे)। षष्ठी के अर्थ में सर्वनामों के रूप भी प्राय निरनुनासिक हैं (जैसे— जिहि भीतर जगमगत, निर तर कवर कन्हाई सो पुनि तिहि सगति निस्तरी') किन्तु अन्य कारकों के लिए इनके अधिकतर रूप सानुनासिक मिलते हैं (जैसे सुर मुनि रीझत जिहिं जिहिं निरखत नाम मोहिं नहिं करिहौ दासी इनहिं निवसित कीज)। प्राचीन ब्रज में सूरदास में सज्ञाओं में भी सानुनासिक रूप मिलते हैं (जैसे पूर्नहिं भले पठावनि)। इस ग्रन्थ में सज्ञा तथा सर्वनाम के रूपों में एकरूपता स्थापित न करके पोथियों की प्रवृत्ति का अनुसरण किया गया है।

3 सज्ञा विशेषण तथा क्रिया के साथ प्रयुक्त कालवाचक तथा स्थानवाचक अव्यय कि तथा न नियमित रूप में मिलते हैं (जैसे प्रथमहि प्रनऊ प्रेममय मुनर्नाहि मोच्छ मुग्ध की बानी सरन कमल लपटू त लीन)। सर्वनाम के साथ इन रूपों के अतिरिक्त इनके सानुनासिक रूप भी प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। यद्यपि यह देखा गया है कि अनुनासिक ध्वनियों वाले सर्वनामों के साथ के अव्यय भी सानुनासिक हो गए हैं। प्रतियों में न का अपेक्षा म के बाद के अव्ययों में अधिक अनुनासिक रूप लिए गए हैं। इसका कारण कदाचित् यह है कि म के उच्चारण में न से अधिक सानुनासिक प्रतिक्रिया होती है। इस सम्बन्ध में अनुनासिक ध्वनियों के बाद में आनेवाले 'हि' तथा 'हु' में अनुनासिकता रखी गई है अन्य रूपों में नहीं (जैसे 'ताको प्रभु तुम हो आधार तिन हूँ

मव विधि लापी इत्यादि, तथा जितहि धर्‍यो हौं तितही पायो, ताहू त सतगुनी, सहस किधौं कोटि गुनी है)।

भाषा के अय प्रयोगो क रूप भी इसी प्रकार निश्चित किए गए हैं। वस्तुत स एस प्रयोग भी हैं जिनके सम्बन्ध म प्रस्तुत अध्ययन से किसी निष्कष पर नही पहुचा जा सका है—जस मप्तमी के परसग परि पर 'प म कवि द्वारा व्यवहृत रूप बताना कठिन है। इसी प्रकार हौहि होई मानहु मानौ काहू कान आदि दाना प्रकार क रूप इस सस्करण मे मिलेंगे। यह सच है कि परि' और 'हौहि आदि प्रयाग ऐतिहासिक दष्टि स प्राचीन हैं, किन्तु कवि क समय की वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान तो तभी हो सकता है जब उसके ग्रन्थो की तथा अय समसामयिक लखको की प्राचीन पोथियो की वडी सख्या म एकत्रित करक समस्त रूपो की गणना की जाय। तभी ठीक स्थिति का पता चल सकेगा। इस सस्करण म प्राप्त पोथियो क भी विभिन्न प्रयोगा के समस्त रूपा की गणना नहीं की जा सकी है। प्रतियो की परीक्षा करत समय जो प्रवत्तिया लक्षित हुई हैं उन्ही के आधार पर विचार किया गया है।

कुछ असाधारण प्रयाग भी हस्तलिखित प्रतियो म अधिक मिले जसे 'हौंइ (बैठे हौंइ सावरे जहाँ, 'कम बुर जौ हौहि)। इसक साधारण रूप हौइ अथवा 'हौहि क साथ ही इस भी मूल पाठ मे रख लिया गया है।

प्रस्तुत सस्करण म भाषा की एकरूपता उसी सीमा तक रखी गइ है जहा तक वह पोथियो स पुष्ट हो सकी है। किन्ही सिद्धान्ता का आरोप करक शब्दो म परिवतन नहो किया गया।

नन्ददास क किसी भी ग्रन्थ की रचना तिथि ज्ञात नही है। खोज रिपोट सन 1920 22 सख्या 113(ए) पर नाममाला की एक प्रति क विवरण म उसका रचना-काल स० 1624 दी गई है जो स्पष्ट ही भूल है क्योंकि उक्त ग्रन्थ के पाठ म कही पर भी यह काल नही है। सम्भवत कवि क सम्भावित कविता-काल के भ्रम म ही इस काल को रचना-काल क रूप म लिखा गया है। अतएव रचना-काल के आधार पर कवि के ग्रन्था का कोई क्रम निर्धारित नही हो सकता। शैली की प्रौढता क विचार से भी ग्रन्था का क्रम निर्धारित नही हो सकता। शली का प्रौढ क्रम निश्चित करना सम्भव है परन्तु इस आधार मे कोई निश्चयात्मकता नही हो सकती। इन कठिनाइयो क कारण इस सस्करण क ग्रन्थो का क्रम छन्दो के आधार पर रखा गया है। इसक प्रथम

---

1 डा० धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा व्याकरण, पृ० 123 125
2 डा० धीरेन्द्र वर्मा ला लाग ब्रज', पृ० 98
3 डा० धीरेन्द्र वमा ला लाग ब्रज, पृ० 69

क अधिक निकट आ गए हैं। इस प्रकार का सशोधन सम्पादक की इच्छानुसार किया गया भी हो सकता है और प्रेस की असावधानी भी हो सकती है। इस सम्ब ध म निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। भाषा के स्वाभाविक स्वरूप की दष्टि स सग्रह-ग्र थो म से भारत दु के निब ध नामक सग्रह एक सीमा तक मूल पाठ के अधिक निकट है। सभा से प्रकाशित 'भारत दु ग्र थावली वतमान खडीबोली का प्रतिनिधित्व करती है।

भारत दु तथा उनके समकालीन हस्तलखो पुस्तका क प्राचीनतम सस्करणो तथा आधुनिक प्रतिया के मध्य प्राप्त होने वाला पाठा तर तथा अ य प्रकार का अ तर निम्नलिखित रूप मे देखा जा सकता है। यहाँ क' प्राचीनतम सस्करणो तथा पत्रिकाओ क लिए, ख खडगविलास प्रस क सस्करण के लिए तथा ग आधुनिक प्रतियो के लिए प्रयुक्त किया गया है।

1 क म जहा विशुद्ध स्वर का प्रयोग किया गया है वहाँ ख ग प्रतियो म श्रुतियुक्त स्वर प्रयुक्त हैं। यथा—

क	ख	ग
ऋषिआ	ऋषियो	ऋषियो
(व० मा० पृष्ठ 8)	(व० भा० ख० वि० पृ० 7)	(व० भा० भा० ग्र० 3, पृ० 792)
लीजिए		लीजिय
(प्र० सव० म० ख० 1 न० 2, पृ० ‌6)		(प्र० सव० भा० ग्र० 3 पृ० 832)

2 अध अनुस्वार क द्योतक चिह्न का प्रयोग हस्तलखा तथा 'क' प्रतियो म नहीं मिलता। यदि कहीं किया भी ... ता वह अत्यन्त सीमित है। ग प्रति म एक ... स्थानो पर इसका प्रयो... । यथा—

ग'

शत स्थान अनुस्वार न ले लिया है। कहीं-कहीं अपवाद रूप म अनुस्वार का प्रयोग भी किया गया है।

क'	'ख	ग'
		अगीवार
(श्री व० स० ह० मो० च० वि० ख० 7, स० 12)	(श्री व० स० ख० वि०, पृ० 11)	(श्री व० स० भा० ग्र० 3 पृ० 578)

4 हस्तलेख एव क प्रतियो म स्थान स्थान पर अकारण अनुनासिकता आ गइ है जा निम्नलिखित कारणा से आयी हुई प्रतीत होती है—

(1) न और 'म के सयोग या सपक से अकारण अनुनासिकता का आगम।

(2) न्ह और म्ह में से 'न आर 'म क लोप से अनुस्वार का बच रहना। यह पाली, प्राकृत काल में भी मिलता है।

(3) कहीं कही क्षेत्रीय प्रभाव से अनुनासिकता का आगम स्वीकार किया जा सकता है।

क प्रतियो में जहाँ अकारण अनुनासिकता की प्रवत्ति मिलती है वहाँ ग प्रति में निरनुनासिक रूप प्रयुक्त किए गए हैं। यथा—

'क	'ग'
(उ०स्या०, ह० च० ख० 1 स० 9, प 4)	(उ० स्या० भा० ग्र० 2 पृ० 678)
बहँकाया	बहकाया
(कु०श० ह०ख० 5 स० 1 पृ० 8)	(कु०श०, भा०ग्र० 2 पृ० 768)
मान्कि	मालिक
(भा०उ०, व०भा०, पृ० 9)	(भा०उ० भा०ग्र० 3, पृ० 897)
भींगते	भीगते
(वँ०या०, ह०मो०च०, ख० 7, स० 4, पृ० 25)	(वसा०, भा०ग्र० 3, पृ० 959)
मेंवा	मेवा
(उ०, पृ० 4)	(उ० भा०ग्र० 3 पृ० 758)

5 क' प्रतियो में कुछ शब्दो की अन्तिम ह ध्वनि के स्थान पर 'ए' प्रयुक्त किया गया है। यह प्रवत्ति लल्लूलाल कृत 'प्रेमसागर' में भी प्राप्त होती है। 'ग प्रति म इसक स्थान पर सवत्र ह का ही प्रयोग किया गया है। उदाहरणाथ—

'क'	ख	'ग
(श्री व०स० ह०मो० च०वि० ख० 7, स० 12, पृ० 15)	(श्री व०स० ख०वि०, पृ० 7)	(श्री व०स०, भा० ग्र० 3, पृ० 580)

क अधिक निकट आ गए हैं। इस प्रकार का सशोधन सम्पादक की इच्छानुसार किया गया भी हो सकता है और प्रेस की असावधानी भी हो सकती है। इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। भाषा के स्वाभाविक स्वरूप की दृष्टि से संग्रह-ग्रन्थों में से भारतेन्दु के निबन्ध नामक संग्रह एक सीमा तक मूल पाठ के अधिक निकट है। सभा से प्रकाशित भारतेन्दु ग्रन्थावली वर्तमान खड़ीबोली का प्रतिनिधित्व करती है।

भारतेन्दु तथा उनके समकालीन हस्तलेखों पुस्तकों के प्राचीनतम संस्करणों तथा आधुनिक प्रतियों में सम्प्रति प्राप्त होने वाला पाठान्तर तथा अन्य प्रकार का अन्तर निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है। यहाँ क प्राचीनतम संस्करणों तथा पत्रिकाओं के लिए ख खड्गविलास प्रेस के संस्करण के लिए तथा 'ग आधुनिक प्रतियों के लिए प्रयुक्त किया गया है।

1 क में जहाँ विशुद्ध स्वर का प्रयोग किया गया है वहाँ ख ग प्रतियों में श्रुतियुक्त स्वर प्रयुक्त हैं। यथा—

क	ख	ग
ऋषिओ	ऋषियो	ऋषियो
(व० भा० पृष्ठ 8)	(व० भा० ख० वि०, पृ० 7)	(व० भा० भा० ग्र० 3, पृ० 792)
लीजिए		लीजिय
(प्र० सव० म० ख० 1 न० 2 पृ० 26)		(प्र० सव० भा० ग्र० 3 पृ० 832)

2 अर्ध अनुस्वार के द्योतक चिह्न का प्रयोग हस्तलेखों तथा क प्रतियों में नहीं मिलता। यदि कहीं किया भी गया है तो वह अत्यन्त सीमित है। ग प्रति में ऐसे सभी स्थानों पर इसका प्रयोग बाहुल्य है। यथा—

'क'	'ग'
हसी खेल	हँसी खेल
(जी० नवो० ह० च०, ख० 11 स० 3 पृ० 21)	(वि० प्रे०, भा० ग्र० 2 पृ० 551)
कहा	कहाँ
(उ० स्या०, ह० च०, ख० 1 स० पृ० 3)	(उ० स्या० भा० ग्र० 2, पृ० 678)
नही	नहीं
(वि० सु०, पृ० 8)	(वि० सु०, भा० ग्र० 2 पृ० 5)

3 पचम वर्णों का प्रयोग क और ख मे अनुस्वार के स्थान पर किया गया है। कहीं-कहीं अनुस्वार का प्रयोग किया गया है। ऐसी स्थिति में वर्तनी भेद भी आ गया है। ग प्रति में अधिकाश स्थानों पर पचम वर्ण का शतप्रति

शत स्थान अनुस्वार न ल लिया है। कही-कही अपवाद रूप मे अनुस्वार का प्रयोग भी किया गया है।

क'	'ख	ग'
		अगीकार
(श्री व० स० ह० मो० च० वि० ख० 7, स० 12)	(श्री व० स० ख० वि०, पृ० 11)	(श्री व० स० भा० ग्र० 3 पृ० 578)

4 हस्तलेख एव क प्रतिया मे स्थान स्थान पर अकारण अनुनासिकता आ गई है जो निम्नलिखित कारणो से आयी हुई प्रतीत होती है—

(1) न' और 'म के सयोग या सपक से अकारण अनुनासिकता का आगम।

(2) ह और 'म्ह में स 'न और 'म क लोप से अनुस्वार का बच रहना। यह पाली, प्राकृत काल में भी मिलता है।

(3) कही कही क्षेत्रीय प्रभाव से अनुनासिकता का आगम स्वीकार किया जा सकता है।

'क प्रतियो में जहाँ अकारण अनुनासिकता की प्रवत्ति मिलती है वहाँ ग प्रति में निरनुनासिक रूप प्रयुक्त किए गए हैं। यथा—

क	'ग'
(उ०स्या०, ह० च० ख० 1 स० 9, प 4)	(उ० स्या० भा० ग्र० 2 पृ० 678)
बहकाया	बहकाया
(कु०श०, ह०ख० 5 स० 1 पृ० 8)	(कु०श०, भा०ग्र० 2 पृ० 768)
मालिक	मालिक
(भा०उ०, व०भा०, पृ० 9)	(भा०उ० भा०ग्र० 3 पृ० 897)
भीगत	भीगने
(व०मा०, ह०मो०च०, ख० 7, स० 4 पृ० 25)	(वसा०, भा०ग्र० 3, पृ० 959)
मेंवा	मवा
(उ०, पृ० 4)	(उ०, भा०ग्र० 3 पृ० 758)

5 क प्रतियो में कुछ शब्दो की अन्तिम ह ध्वनि के स्थान पर 'ए' प्रयुक्त किया गया है। यह प्रवत्ति लल्लूलाल कृत 'प्रेमसागर' में भी प्राप्त होती है। 'ग प्रति में इसके स्थान पर सवत्र ह का ही प्रयोग किया गया है। उदाहरणाथ—

'क	'ख'	'ग
(श्री व०स० ह०मो० च०वि० ख० 7 स० 12, पृ० 15)	(श्री व०स०, ख०वि०, पृ० 7)	(श्री व०स०, भा० ग्र० 3, पृ० 580)

6 हस्तलेख तथा क', ख प्रतियों में भविष्यत्काल के लिए ए विभक्ति-प्रत्यय का प्रयोग-बाहुल्य है जो क्षेत्रीय प्रभाव से आया प्रतीत होता है। परन्तु ग प्रति में सर्वत्र ए विभक्ति प्रत्यय प्रयुक्त किया गया है। यथा—

'क'	ख	'ग'
करै	करै	करे
(कु०श०ह०च०, ख० 5, स० 1, पृ० 7)	(कु०श०, ख०वि० पृ०3)	(कु०श०भा०प्र० 3, पृ० 768)

7 क प्रतियों में वर्तमानकालिक कृदंतीय प्रत्यय का श, क अंतिम व्यंजन के साथ संयुक्त करके लिखने की प्रवृत्ति मिलती है (ऐसा संभवत तत्कालीन उच्चारण प्रवृत्ति को बनाये रखने के कारण किया गया हो)। ग' प्रति में यह प्रवृत्ति एक ही स्थान पर दृष्टिगत हुई। उदाहरण—

क'	ग
सक्ता	
(ज०व०ल०, क०व०मु०, स० 3 न० 24 पृ० 186	(ज०व०ल०, क०व०हु०, पृ० 950)
जोत्ते	जानत
(भा०उ०, ब०भा०, पृ० 9)	(भा०उ० भा०प्र० 3, पृ० 897)

8 'क' प्रतियों में यत्र तत्र परसर्ग जहाँ व्यंजनान्त शब्दों के अन्त में प्रयुक्त हुए हैं वहाँ शब्द के साथ मिलकर आए हैं। यह प्रवृत्ति 'ग प्रति में समाप्त कर दी गई है। यथा—

'क	ग'
इस्में	इसमें
(चन्द्रा० ह०च०, ख० 4 स० 1 3, पृ० 22)	(चन्द्रा०, भा०प्र० 1, पृ० 423)
जिस्पर	जिसपर
(हरि० क०व०मु० ख० 3 न० 4 पृ० 36)	(हरि०, भा०प्र० 3 पृ० 944)

9 संयुक्त व्यंजनों की संयुक्तता को स्वरभक्ति के द्वारा समाप्त करने की प्रवृत्ति क प्रतियों में यत्र-तत्र मिलती है। ग प्रति में ऐसा नहीं मिलता।

'क	ग
कुरसियाँ	कुर्सियाँ
(दि०द०द०, ह०न० जनवरी 1877, 3 15)	(दि०द०द० भा०प्र०, 3, पृ० 188)

10 शब्दों की उच्चारण प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए क' प्रतियों में जो ध्वनि परिवर्तन हो गया है वह 'ग' प्रति में नहीं मिलता। यथा—

क'	'ग
माटवार	मारवाड
(अ० उ० पृ० 12)	(अ० उ० भा० ग्र० 3, पृ० 9)
तुमारी	तुम्हारी
(अ० उ०, पृ० 10)	(अ० उ० भा० ग्र० 3, पृ० 9)

11 'क' प्रतियों में कहीं-कहीं तालव्य 'श' के स्थान पर 'दन्त्य' 'स' का प्रयोग किया गया है जो कि प्राचीनता का अवशेष है परन्तु ख' और ग' प्रतियों में इन स्थानों पर 'श' प्रयुक्त है। यथा—

क'	ख'	'ग'
अस	जश	अश
(इशु० ईश०, ह०च० ख० 6 स० 7)	(इशु० इश० ख० वि०, पृ० 13)	(इशु० ईश० भा० ग्र० 3 पृ० 785)

12 हस्तलेखों तथा 'क' प्रति में 'म, य' और व के द्वित्व की प्रवृत्ति प्रधान है। ख' प्रतियों में यह कहीं-कहीं मिल जाती है परन्तु ग में यह प्रवृत्ति कठिनता से शायद ही कहीं मिले। यथा—

क	'ख	ग'
आय्य	आय्य	आय
(वै० भा०, पृ० 7)	(वै० भा० ख० वि० पृ० 6)	(व० भा०, भा० ग्र० 3 पृ० 792)

पव्वत	पवत
(हरि०क०व०मु०ख० 3 न० 4, पृ० 36)	(हरि०भा०ग्र० 3, पृ० 943)

13 हस्तलेखों तथा 'क और ख प्रतियों में ब्रजभाषा व खड़ीबोली के कुछ शब्दों में 'फ' य और व बिन्दु-युक्त हैं। ग' प्रतियों में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती। हस्तलेखों में 'ज' भी बिन्दुयुक्त किया गया है। देवनागरी की यह विशेषता लल्लूलाल-कृत प्रेमसागर आदि ग्रन्थों में भी अवलोकनीय है। भारतेन्दु की रचनाओं के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

'क'	ख'	ग
फिर	फ़िर	फिर
(कु० श०, ह० च० ख०, स० 1, पृ० 8)	(कु० श०, ख० वि०, पृ० 4)	(कु० श०, भा० ग्र० 3 पृ० 768)

वह	वह
(उ० स्या०, ह० च०, ख० 1 स० 9 पृ० 4)	(उ० स्या० भा० ग्र० 2, पृ० 678)
सवस्व	सवस्व
(भारतेन्दु का हस्तलिखित पत्र)	(भारतेन्दु का पत्र भा० ग्र० 3 पृ० 969)

य=हुय भया (भारतेन्दुकालीन हस्तलेख, ब्रजरत्नदासजी क संग्रह म प्राप्त)

14 क प्रतिया म ' के लिए '-, चिह्न का प्रयोग बहुल्ता म मिल्ता है। 'ख प्रतियो म यह कही-कही मिलता है परन्तु ग प्रति म सवत्र ग्र का प्रयोग किया गया है।

क	'ख'	'ग
सग्रह	सग्रह	सग्रह
(दु० अ० ओ० नवो० ह० च० ख० 11 स० 1 पृ० 1)	(पृ० ख० वि० मुखपृष्ठ)	(पु०, अ० औ०, भा० ग्र० 3 पृ० 117)

15 ग प्रति म कहा कही ददवसमाहार शब्दो म एक का लोप कर दिया गया है। उराहरणार्थ—

क	ग
सजी सजीली पल्टनें	सजी पल्टने
(दि० द० द० ह० म० जनवरी 1877, पृ० 16)	(दि० द० द० भा० ग्र० 3 पृ० 188)

16 क प्रतियो म पुनरक्ति प्रयोगा मे सख्या 2 का प्रयोग सम्भवत स्थान के बचाव की दृष्टि से किया गया है। यह तत्कालीन सभी रचनाआ मे बहुल्ता से मिल रहा है। कही-कही शब्द की पुनरुक्ति भी की गई है। ग प्रति म सख्या लिखने की प्रवत्ति नही मिल्ती।

17 हस्तलेखो तथा क प्रतियो म अँग्रेजी भाषा की ध्वनियो क लिए आधुनिक काल म विकसित ऑ चिह्न का प्रयोग नही मिलता। इसका प्रयोग सन 1890 ई० क पश्चात की रचनाआ म किया गया मिलता है।

क	'ग
गाड आव आनर	गाड आव आनर
(दि०द०, ह०म०, जनवरी 1877, पृ० 16)	(दि०द०द०, भा०ग्र० 3, पृ० 188)

18 हस्तलेखों के सामने 'क' प्रतियों में पूर्ण विराम के लिए बिन्दु के प्रयोग की प्रवृत्ति प्रधान है। यह प्रवृत्ति लल्लूलाल तथा सदल मिश्र के खड़ी-बोली के ग्रन्थों में भी मिलती है। 'ख' तथा 'ग' प्रति में इसके स्थान पर खड़ी पाई सर्वत्र युक्त है। 'क' प्रतियों में दो खड़ी पाइयों का प्रयोग अनुच्छेद के अन्त में कहीं-कहीं किया गया है।

19 हस्तलेखों तथा 'क' प्रतियों में पूर्ण पंक्ति के समाप्त होने पर यदि शब्द अपूर्ण रह गया है तो आधा अंश द्वितीय पंक्ति के आरम्भ में बिना किसी संकेत चिह्न के लिखा गया है। यह प्रवृत्ति 'ग' प्रतियों में नहीं मिलती। उदाहरणार्थ—

जाए (प्रथम पंक्ति का अन्त)
गा ॥ (द्वितीय पंक्ति का आरम्भ)

भाषागत इस तुलना से स्पष्ट होता है कि खड़ीबोली के विकासक्रम की दृष्टि से तथा भारतेन्दुकालीन हस्तलेखों से साम्य रखने के कारण 'क' प्रतियाँ सर्वाधिक प्रामाणिक हैं।

22
कतिपय अन्य विषयों की शोध-प्रविधियाँ

प्रत्येक विषय की अपनी कुछ विशिष्ट शोध प्रविधि होती है। जब किसी लेखक द्वारा स्वहस्तलिखित प्रति अप्राप्य हो जाती है और उससे नकल की गई प्रतियाँ ही मिलती हैं तब कौन-सी प्रति मूल प्रति की ठीक-ठीक प्रतिलिपि हो सकती है, इसे निर्धारित करने की प्रविधि किसी ग्रन्थ की शास्त्रीय विवेचना की प्रविधि से भिन्न होती है। किसी बोली या भाषा के अन्वेषण की अपनी स्वतन्त्र प्रविधि होती है। भाषा-कोश को तैयार करने का भिन्न शिल्प होता है। साहित्य, इतिहास समाजशास्त्र, भूगोल, दर्शन आदि मानविकीय विषयों के शोध के तन्त्र एक नहीं होते परन्तु विज्ञान के विषयों की शोध प्रक्रिया में विशेष अन्तर नहीं होता, क्योंकि उसमें वस्तुनिष्ठता प्रधान होती है। मानविकी विषय केवल वस्तुनिष्ठता से शोधित नहीं होते उनमें आत्मपरकता का भी अंश सम्मिलित रह सकता है। शोधकर्ता अपनी पूर्वधारणा के अनुरूप सामग्री एकत्र कर अभीष्ट निष्कर्ष सिद्ध कर लेता है। परिणामतः एक ही विषय के विभिन्न निष्कर्ष प्रतिपादित हो सकते हैं। तुलसी को एक शाधार्थी अद्वैतवादी और

दूसरा विशिष्टाद्वतवादी अपने अपने तर्कों से सिद्ध कर सकता है। परन्तु विज्ञान के विषय समान परिस्थितियो मे एक ही परिणाम प्रस्तुत करत हैं क्योकि वे अनिवायत भौतिक प्रयागशाला मे परीक्षित किए जात हैं। मानविकी क जो विषय 'विज्ञान बन गए है उनक निष्कष भी प्रयोगशाला म परीक्षित होते हैं। यहा हम कुछ विशिष्ट विषया की शोध प्रविधि का सकेत दे रहे है।

लोक-साहित्य के अध्ययन की प्रविधि

लोक साहित्य पर अध्ययन घर या पुस्तकालय म बठकर नही किया जा सकता। इसके लिए ग्राम, खेत खलिहान, नदी बावटी कुआँ आदि स्थाना पर जाना पटता है। यह क्षेत्रीय काय (फील्ड वक) कहलाता है। अनुसधाता को अपनी भाषा क लोक साहित्य पर शोध अधिक सुकर होता है क्याकि उमक लिए वह स्वय भी सूचक होता है। उसका पारिवारिक वातावरण उसक अनुकूल होता है। इससे उस सामग्री जुटाने म सहायता मिल जाती है। मान लीजिए, आप बुन्देली लोकगीता पर शोध काय करना चाहत हैं तो सवप्रथम आप विषय की रूप रेखा तयार करेंगे। फिर आपको बुन्देली भाषा क्षत्र को निर्धारित करने के लिए भाषा विज्ञान की पुस्तको भाषा सर्वे रिपोर्टों जनगणना रिपार्टों आदि के आधार पर एक नक्शा तैयार करना होगा और काय को प्रारभ करन क लिए ऐस स्थान को चुनना पडेगा जो बुन्देली का केन्द्र समझा जाता है। वहाँ जाकर आपको वद्ध स्त्री पुरषो के सम्पक मे आना हागा। यदि वहाँ आपके कोई परिचित या सम्बधी हा तो उनकी सहायता लेनी चाहिए। ग्राम म अपरिचित व्यक्ति को खत-खलिहान म आते जाते देखकर लोग सन्देह की दृष्टि से दख सकते हैं और कभी आक्रमण भी कर सकते हैं। ग्रामवासियो म विश्वास उत्पन्न किए बिना उनसे आवश्यक समग्री प्राप्त नही की जा सकती। जब आप उनके गीत टेप में भरने लगें तो उन्ह समझा दीजिए कि इसस उन्हे कोई खतरा नही हागा। प्रत्युत इससे तो उनकी 'वाणी अमर हो जायगी। उन्हे टेप बजाकर सुना भी दीजिए।

काय के लिए तो आप एक केन्द्रीय ग्राम अवश्य चुनें, पर गीतों की प्रामाणिकता या विभेदा को जानने के लिए बीच-बीच में बुन्देली भाषा क्षेत्र के अन्य ग्रामो में भी जाकर उन्ही गीता को सुनिए और उसी प्रसग पर यदि अन्य गीत भी प्रचलित हा ता उन्ह भी टेप कर लीजिए। हिन्दी में प० रामनरेश त्रिपाठी न उत्तरप्रदेश के विभिन्न क्षेत्रा में जाकर ग्राम गीतों के सग्रह करने में बडा श्रम उठाया था। वे अनजाने ही खतो की मेडा पर उन्ह सुनते और लिखत जात थे क्योंकि उस समय टप का चलन सामान्य नही हो पाया था। उन्हें अपनी स्मरण शक्ति का भी सहारा लेना पडता था। अब टेप के द्वारा

सामग्री चयन का काय सुलभ हो गया है। दो भाषाओं के सधि क्षेत्रों में भी जाने की आवश्यकता होती है क्योंकि वहां गीतों की भाषा भाव में अन्तर आने की सम्भावना रहती है। गीतों का सग्रह हो जाने पर उन्हें विषय या प्रसग के क्रम से वर्गीकृत कर लेना चाहिए और उनका साहित्यिक मूल्यांकन करना चाहिए। यदि सह बोलियों, जैसे कन्नौजी ब्रज आदि से तुलना अभीष्ट हो तो वह भी की जा सकती है। परन्तु यह आपकी रूप रेखा में निर्दिष्ट विषय सीमा पर अवलम्बित होगा।

भाषा का अध्ययन

किसी भाषा या बोली का अध्ययन या तो ऐतिहासिक रीति से किया जाता है या वर्णनात्मक रीति से। ऐतिहासिक रीति से अध्ययन करने के लिए आपको प्राचीन साहित्य का अध्ययन अपेक्षित है। यदि आप खडीबोली पर ऐतिहासिक पद्धति से शोध करना चाहते हैं तो आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि यह बोली किस प्रकार की है। आप जानते हैं इसका आर्य-परिवार है। अत आपको यह खोजना होगा कि यह किस अपभ्रंश से विकसित हुई है। आपको अपभ्रंश साहित्य जहां भी उपलब्ध हो उसे खोजकर पढना होगा और देखना होगा कि खडीबोली की प्रवृत्ति उसमें किस अंश में विद्यमान है। क्योंकि किसी भाषा के परिवार को जानने के लिए शाब्दिक ऐक्य ही पर्याप्त नहीं होता उनके व्याकरणिक ढाचे में भी एकता देखनी पडती है (विभक्ति क्रिया रूपों आदि की परीक्षा आवश्यक होती है) कोई हिन्दी शब्द रूप विकास क्रम से संस्कृत पालि प्राकृत अपभ्रंश से होते हुए वर्तमान भाषा रूप को कैसे प्राप्त हो गया इसका निर्धारण करना होगा। एक ही भाषा के क्षेत्र की भिन्नता से ध्वनि और अर्थ-तत्त्व भी परिवर्तित हो जाते हैं। लिंग भेद भी हो जाते हैं। उदाहरण के लिए मराठी के सम्बन्ध में पहले यह धारणा थी कि इसका प्राकृत से सीधा सम्बन्ध है, बाद में शोध से ज्ञात हुआ कि यह महाराष्ट्री अपभ्रंश से विकसित हुई है। हिन्दी शौरसेनी का विकसित रूप है और महाराष्ट्री शौरसेनी का ही पश्च रूप है। प्राचीन साहित्य के अध्ययन से ये तथ्य प्रकाश में आए हैं।

भाषा या बोली का वर्णनात्मक अध्ययन क्षेत्रीय कार्य पद्धति से सम्पन्न होता है। जिस भाषा का शोध करना हो उसके केन्द्र में जाकर रहना आवश्यक होगा। बोलियाँ सरकारी भाषाओं के सम्पर्क में आ जाने के कारण अपना मूल रूप खोती जा रही हैं। अत किसी बोली के अध्ययन के लिए शहर से दूर का क्षेत्र चुनना चाहिए, साथ में ऐसे सूचक को लेना चाहिए जो आपकी तथा अनुसधेय बोली दोनों का ज्ञाता हो। सूचक दुभाषिये के रूप में काय करेगा। आपको नागर-वातावरण से दूर के ग्राम में जाकर पहले तो वहाँ व्यक्तियों में मैत्री

मात्र कहना चाहिए। उसके लिए फ्रेंच भाषा में ल पेरोल कहा जाता है। वह व्यक्तिपरक तथा प्रसगपरक है। प्रत्येक व्यक्ति के भाषागत व्यवहार में बहुत भेद हैं। एक ही व्यक्ति भिन्न भिन्न प्रसगों में भिन्न भिन्न क्षणों में, भिन्न भिन्न प्रकार की ध्वनियों, शब्दों और अर्थों का प्रयोग करता है। प्रत्येक बार जब कोई व्यक्ति बोलता है तब वह नई भाषाई घटनाओं का सृजन करता है। किसी व्यक्ति ने आज जिस ध्वनि का उच्चारण किया आज जिस शब्द के द्वारा जिस अर्थ का बोध किया, वही कल ठीक ठीक वैसा नहीं कर सकता। उसकी कल की भाषा शैली आज की भाषा शैली से भिन्न होगी। एक ही व्यक्ति की भाषा में जहां इतने विभेद संभव हैं वहां जब अनेक व्यक्तियों की भाषा के सम्बन्ध की ओर ध्यान दिया जाता है तब सहज ही हम उसके गतिशील रूप का अनुमान लगा सकते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण होने वाले भेद तत्काल भले ही न प्रकट हों परन्तु कालीन पीढ़ियों में अथवा कुछ कोसों की दूरी में उनके अंतर स्पष्ट हो जाते हैं। डा० विश्वनाथप्रसाद ने इसी भाषा विज्ञानी के शब्दों में भाषा के दूसरे रूप का नाम एतान द लाग दिया है जिसका अर्थ है किसी भाषा की निश्चित संख्या। यह वह भाषा है जो व्यक्ति या समाज निरपेक्ष होती है। जिसे हम परिनिष्ठित भाषा कह सकते हैं। यह जल्दी परिवर्तित नहीं होती पर बहुत वर्ष या सदियों के व्यतीत हो जाने पर उसके रूप भी परिवर्तित हो जाते हैं। अतः भाषा विज्ञान के अध्येता को समय समय पर भाषा की प्रवृत्तियों के विकास का पर्यवेक्षण करते रहना चाहिए। उसके लिए आवश्यक अभिलेख प्रेषण क्षेत्र सर्वे आदि प्रविधियों का प्रयोग में लाना चाहिए। विज्ञान शोध के नये-नये आयाम खोलता जा रहा है और उसकी प्रविधियों में भी नये-नये प्रयोग सामने आ रहे हैं। इसलिए जिस प्रविधि से अनुसंधेय विषय प्रतिपादित किया जाय उसी का अवलम्बन लेना चाहिए।

लोकभाषा कोश निर्माण की प्रविधि

कोश निर्माण का कार्य भाषा विज्ञान का अंग है। लोक साहित्य का अध्ययन लोकभाषा के परिचय के अभाव में सम्भव नहीं है। भाषा के अंगों में शब्द की प्रधानता है। एक ही शब्द के दो तीन या अधिक पर्याय भी हो सकते हैं। कोशकार को शब्द-संग्रह का कार्य ग्राम के प्रत्येक जीवन से सम्बद्ध व्यक्तियों के सहयोग से करना चाहिए। थोड़ी असावधानी से शब्द के गलत अर्थ भी बतलाया सकता है। अतः जब तक दस-बारह व्यक्तियों से उसका समर्थन प्राप्त न हो जाय तब तक उसे संग्रह में नहीं रखना चाहिए। एक शब्द के एकाधिक पर्याय हो सकते हैं और प्रत्येक का किंचित् अर्थ-वैविध्य भी हो सकता है। उदाहरण के लिए 'पानी' जल का पर्याय है, परन्तु 'जल' में जहाँ पावित्र्य का

भाव है वहाँ पानी म एमा कुछ नही है। हम गगा-जल कहते हैं, गगा-पानी नही। पानी नल का होता है कुएँ का, तालाब आदि का। कोशकार को शब्द सग्रह म सतकता बरतनी चाहिए और अपनी स्मरणशक्ति का भलीभांति उप योग करना चाहिए। सूचक किस प्रसग म शब्द का प्रयोग कर रहा है इस स्मरण रखकर उसके पर्याया म अथ भेद पर ध्यान देना चाहिए।

पर्याय का अथ समानार्थी होता है जिसे अग्रेजी में क्रमश सनोनीम' (Synonym) और 'इक्वीवेलट (Equivalent) कहत हैं। परन्तु रामचन्द्र वर्मा का कहना है कि कोई शब्द किसी दूसरे शब्द का पर्याय या समानार्थी नही होता। प्रत्येक शब्द का एक स्वतत्र अथ होता है जसा कि हमने ऊपर पानी और जल का उदाहरण देकर सिद्ध किया है।

"एक दूसरे की जगह प्रयुक्त हो सकने के विचार से ही यह भी कहा जा सकता है कि एक भाषा के शब्द आपस मे ही एक दूसरे के पर्याय होते हैं, किसी दूसरी भाषा के शब्द के पर्याय नही हो सकते। वारिधि, समुद्र और सागर एक दूसरे के पर्याय तो मान जा सकते हैं पर अरबी बहर या अग्रेजी ओशन के पर्याय नही, बल्कि समानार्थी होगे। प्राय एक भाषा के वाचक शब्द दूसरी भाषा मे होते ही हैं।"[1] कोश निर्माण म शब्द रूप उच्चारण व्याकरणिक रूप (सना विशषण क्रिया आदि) व्युत्पत्ति (हिन्दी अग्रेजी अरबी फारसी आदि का) निर्देशक अथ के (एक स अधिक) उदाहरण (किसी प्रसिद्ध ग्रन्थ स) दिये जाते हैं। यदि शब्द ठठ बोली का है और साहित्य म प्रयुक्त नहीं हुआ है तो उदा हरण नही दिया जा सकता। यदि शब्द किसी मुहावरे मे प्रयुक्त हुआ है तो उसे दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए सुहागा शब्द का विवरण हम डा० अम्बाप्रसाद सुमन की ब्रजभाषा शब्दावली से लेते है—सुहागा रम सौभाग्यक—सोहग्राज—सोहागा—जोत की भूमि को सौभाग्य या सौदय देने वाला। जुते हुए खत को चौरस करने के लिए उसमे लकडी का जो एक चौडा और भारी तख्ता सा फेरा जाता है उसे सुहागा कहत हैं।—छोटा सुहागा सुहगिया या पटेलिया कहलाता है। सुहागा म प्राय चार बल और सुहगिया म दो बल जोत जात है। सुहागे के सम्बन्ध में पहेलियाँ प्रचलित हैं—

> धस पायँ धस पायँ।
> तीन मूड दस पाय।
> वारह नना बीस पग और छयानव दन्त।
> हर्यां है म इतन गए खोजु न पायौ कन्त॥'

शब्द के साथ चित्र भी दिया गया है कई शब्दों के साथ सम्बद्ध लोकोक्तियाँ

---

1 हिन्दी-कोश रचना प्रकार और रूप पृष्ठ 52

भी दी गई हैं क्षेत्रीय बोली-कोश में यह भी निर्दिष्ट कर देना होता है कि इसी अर्थ में अमुक स्थानपर अमुक शब्द बोला जाता है। हिन्दी म जनपदीय बोलिया में एकाधिक भेद हैं कई बोलिया में समानार्थी शब्द प्रचलित हैं। प्रमुख बोला की उपबोलियाँ भी होती हैं। यदि शोधार्थी इन बोलिया उपबोलिया का सर्वेक्षण कर उनके कोश तयार कर सकें तो जनपदीय सस्कृति की रक्षा हो सकेगी।

हिन्दी बोली-कोश का मुख्य आधार कोश तो ग्रियसन का पीजेण्ट लाइफ आव बिहार है। इसमें भोजपुरी, मगही तथा मथिली बोलिया के ग्राम जीवन सम्बन्धी शब्दा का सग्रह है। यह तीनो बोलिया के शब्दा के तुलनात्मक अर्थों को प्रस्तुत करता है। ग्रियसन के पूर्व भी लोकभाषा कोश तयार किए जा चुके थ। कार्नेगी डकन फम, गिल्क्राइस्ट विलियम नुक आदि पाश्चात्या के बोली कोश अकारादि अथवा विषयक्रम से व्यवसायक्रम स नागरी अथवा फारसी लिपि में प्रकाशित हो चुके थे।

अँग्रेजों द्वारा कई कोश उनके प्रशासनिक कार्यों में सुविधा जुटान के निमित्त निर्मित किए गए थ। फलन का ए न्यू हिंदुस्तानी इग्लिश डिक्शनरी विद इलस्ट्रेशन फ्राम हिन्दुस्तानी लिटरेचर एण्ड फाक लोर का लोकभाषा-कोशा में विशेष स्थान है। यह सन 1879 में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि यह किसी एक विशिष्ट बोली का शब्द-कोश नहीं है फिर भी इसमें उत्तर भारत की बोलिया के लोक-जीवन सम्बन्धी शब्दा का वणमाला क्रम से चयन लोकवार्ता सहित किया गया है। प्यारेलाल गग की कृषि शब्दावली सन 1943 में प्रकाशित हुई थी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय स डा० हरिहरप्रसाद गुप्त का आजमगढ जिले के फूलपुर तहसील के अहिरौला परगना के जन जीवन स सम्बद्ध कोष भी पी एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया था। डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन' का व्रजभाषा की कृषक जीवन सम्बन्धी शब्दावली (अलीगढ क्षेत्र की बोली के आधार पर) दो खण्डा में शोध उपाधि के लिए तयार की गयी थी। यह कोश वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक पद्धति पर तैयार किया गया है। शब्दा की व्युत्पत्ति भी दी गई है। चित्र देकर कोश को अधिक ग्राह्य बनाया गया है। कई शब्दों की व्युत्पत्ति देने स हमें भाषिक विकास की परम्परा स भी परिचय हो जाता है। बोली-कोश में शब्दा के दो रूप मिलते हैं एक तो वे जो सवदेशीय होत हैं दूसर वे जो स्थानीय होते हैं। अत कोशा में शब्दा के विवरण में यदि इस दिशा का भी सकत कर दिया जाय तो वह और अधिक उपयोगी बन सकता है। छत्तीसगढ अचल का बोली-कोश डा० कान्तिकुमार ने पी-एच० डी० उपाधि के लिए सश्रम प्रस्तुत किया है। उसमें छत्तीसगढी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत कर दिया गया है।

बोली शब्द कोश के निर्माताओं को अपने पूर्ववर्ती विभिन्न भाषा बोली कोशों का भी अध्ययन कर लेना चाहिए। रामचन्द्र वर्मा की कोश-कला से भी लाभ उठाया जा सकता है। वर्माजी ने शब्द विवेचन की जो पद्धति अपनायी है वह निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी—

उलटवासी—स्त्री० (हि० उल्टा+स० बासी ?)

साहित्य में ऐसी उक्ति या पद्य जिसमें असंगति विरोध विचित्र विषय विभावना विशेषोक्ति आदि अलंकारों से युक्त कोई ऐसी विलक्षण बात कही जाती है जो प्रकृति नियम या लोक व्यवहार के विपरीत हो पर जिसमें कोई गूढ़ आशय या तत्त्व छिपा हुआ हो जैसे—

(क) पहिले पूत पाछे भई माई। चेला के गुरु लागे पाई।—कबीर

(ख) सम दर लागी आगि नदिया जरि कोयला भई।—कबीर

शब्दों के अर्थ को निश्चित करने में कभी कभी कठिनाई होती है। बोलियों के शब्दों के अर्थ ग्राम के बूढ़े ग्रामवासी (पुरुष स्त्री) पहले तो बतलाने में सकोच करते हैं और बतलाते भी हैं तो कभी उनका सन्दर्भ अर्थ गलत होता है। वर्माजी ने कोश कला में अपनी इस दुविधा का एक उदाहरण दिया है। वे लिखते हैं— मीरों के पदों में से शब्द-संग्रह करते समय मुझे एक पद में ये दो चरण मिले—

मोती मानिक परतन पहिर मैं कब की नटकी।
गयो तो म्हारा माला दोवडी और चन्दन की कुटकी।

एक सुयोग्य विद्वान ने—इनमें से पहले चरण के नटकी शब्द का अर्थ किया है—अस्वीकार कर दिया है और दो वडी का अर्थ लिखा है—एक प्रकार का गहना। पर मुझे ये दोनों अर्थ ठीक नहीं जचे। नटना क्रिया तो ठीक है पर नटकना का प्रयोग नटना के अर्थ में नहीं होता। राजपूताने में नट जाति के लोगों, विशेषत बालकों और युवकों को नटका भी कहते हैं जिसका अर्थ होता है—नट जाति का या नट की सन्तान। नटकी इसी का स्त्री रूप है। मीरा कहती हैं—मैं कोई नट जाति की स्त्री नहीं हूँ जो रत्नों से अपने को सजाऊं। दो वडी के सम्बन्ध में मैंने सोचा कि जिस मीरां ने राजसुख को लात मारी थी वह भला कोई गहना क्या पहनेगी ? तिस पर वह स्वयं कह रही है कि माला, दोवडी और चन्दन की कुटकी ही मेरे गहने हैं। अतः दोवडी और कोई चीज होनी चाहिए। मैंने अपने विचारणीय शब्दों की सूची में दो वडी शब्द के साथ उक्त चरण लिख लिया। कोई छह महीने बाद कबीर साहित्य का अध्ययन प्रकाशित हुआ। और मैं उससे शब्द संग्रह करने लगा। तब उसमें एक जगह मिला — पाच गज दोवटी मांगा चून लियो सानि। तब तुरन्त मेरा ध्यान मीरा की दोवडी की ओर गया और दोनों पदों को मिलाकर देखने पर मालूम

हुआ कि दावटी और दोवडी एक ही हैं। ये शब्द संस्कृत द्विपट से निकले हैं, जिसका अर्थ है—साधारण मोटा कपड़ा।'[1]

शब्द का अर्थ निश्चित करने के लिए कभी लिखित साहित्य और कभी अलिखित जन साहित्य का आश्रय लेना पड़ता है। अतः कोशकार को, चाहे वह साहित्यिक कोश को तैयार कर रहा हो चाहे जन भाषा या बोली-कोश तैयार कर रहा हो लिखित और अलिखित दोनों स्रोतों का सहारा लेना चाहिए। साहित्य भी लोक जीवन से शब्द लेता रहता है वह तत्समता पर ही आश्रित नहीं रहता। कई भावों के सूक्ष्म रूप हम लोक भाषा में मिलते हैं। इसीलिए लोकभाषा या बोली कोश साहित्य की अभिव्यंजना शक्ति बढ़ाने के लिए आवश्यक साधन सिद्ध होते हैं।

शब्दों की निरुक्ति स्थिर करना कठिन साध्य कर्म है। एक ही शब्द चलते चलते इतना घिस जाता है कि उसकी उत्पत्ति विकास स्थिर करना कठिन होता है। वर्ण के आगम लोप, विपर्यय आदि के कारण शब्द का रूप कभी कभी बहुत परिवर्तित हो जाता है।

वर्माजी ने एक लोक प्रचलित शब्द लिबड़ी बरताना की व्युत्पत्ति की खोज की। खोज करते करते उन्हें ज्ञान हुआ कि यूरोपियन यहाँ आकर अधिकारी बने। तब वे अपनी रक्षा के लिए सिपाही रखते थे और उन्हें पहनने के लिए वर्दी और हाथ में डंडा देते थे। वह वर्दी अँग्रेजी में लिवरी कहलाती है और डंडा बटन कहलाता है। कभी-कभी सिपाही अपनी वर्दी और डंडा लेकर भाग जाते थे। दूसरे सिपाही अपने 'साहब' को सूचना देते हुए कहते थे— साहब वह सिपाही, लिवरी बटाना लेकर भाग गया। लिवरी-बटाना से ही लिबड़ी-बरताना बन गया।

जब बोली कोश का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से किया जाता है तब शब्द के मूलरूप की खोज करनी पड़ती है। वर्णनात्मक अध्ययन में उसके वर्तमान रूप और अर्थ से ही सन्तुष्ट होना पड़ता है। डा० देवीशंकर द्विवेदी का शोध प्रबन्ध बैसवाड़ी बोली कोश से सम्बन्ध रखता है जिसमें उन्होंने बोली शब्दों का वर्णनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। अतः शब्द की व्युत्पत्ति की खोज उनकी विषय सीमा के अन्तर्गत नहीं आती थी।

शोध की दृष्टि से कार्य करने में विषय और क्षेत्र की सीमा बाँधनी पड़ती है पर विदेशों में बड़े परिश्रम से लोग कोश निर्माण का कार्य करते हैं। उन्हें अपने कार्य को व्यवस्थित रूप से सम्पन्न करने की धुन रहती है। उसमें वे वर्षों मग्न रहते हैं। वेब्सटर न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी के प्रकाशित होने

---

1 पृष्ठ 118

में 102 वर्षों का समय लगा। 1807 ई० में वेबस्टर ने काम प्रारम्भ किया जिसे उनके अन्य सहायक पीढ़ी-दर-पीढ़ी पूरा करने में जुटे रहे। फिर स्काटिश नेशनल डिक्शनरी को दस भागों में प्रकाशित करने की योजना बनी थी। यह लोक भाषा कोश है। लगभग 29 वर्ष तक काम करने के उपरान्त डिक्शनरी के सन् 1958 तक केवल तीन खंड प्रकाशित हो गए। स्व० डाक्टर विश्वनाथप्रसाद ने उक्त कोश के सम्पादक से प्रत्यक्ष भेंट कर उनकी कार्य विधि से प्रभावित हो बिहार प्रदेश के ग्राम-अंचल में प्रचलित कृषि सम्बन्धी शब्दों का प्रामाणिक कोश तैयार कर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् से प्रकाशित कराया है। इस कोश में स्काटिश नेशनल डिक्शनरी के समान ही शब्दों के विभिन्न अर्थ पर्याय और क्षेत्र आदि का निर्देश किया गया है। इसके अतिरिक्त भाषा विज्ञान की वर्णनात्मक और ऐतिहासिक पद्धति के अनुसार प्रायः भाषा के शब्दों के व्युत्पत्तिक और पुनर्निर्मित शब्द भी यथासम्भव दे दिए गए हैं। तुलना के लिए बिहार के बाहर की अन्य बोलियों के पर्याय भी जो प्राप्त हो सके हैं दे दिए गए हैं। उन्होंने अपने कोश निर्माण के लिए जो कार्य प्रणाली अपनायी थी उसे यहाँ लोकभाषा-कोश के अनुसंधाताओं के लाभार्थ दिया जाता है। उन्होंने संग्रह कर्ताओं को निम्न निर्देश दिए थे—

संग्रह कर्ताओं के लिए आवश्यक निर्देश

1 जनसाधारण या समाज के किसी वर्ग विशेष में प्रचलित शब्दों का ही संग्रह करना होगा।

2 जिस विषय या समाज के जिस वर्ग को लें उसके सभी धंधों, व्यापारों, गुणों, लक्षणों, रीति रिवाजों, खान पान, रहन सहन-सम्बन्धी शब्दों का संग्रह करना होगा।

3 जो शब्द जिस रूप में व्यवहृत हो उसे ठीक उसी रूप में लिखना होगा। उसे साहित्य का रूप देने के लिए उसमें फेर बदल या संशोधन नहीं करना होगा।

4 जिस शब्द को लें उसको लेकर जो मुहावरे या कहावतें व्यवहृत हों, उन्हें भी वहीं सम्मिलित कर लेना होगा। पर कहावतों और फुटकर मुहावरों को एक पृथक और स्वतन्त्र विषय समझा जायगा।

5 कार्यकर्ताओं को जिन व्यक्तियों या वर्गों के बीच जाकर काम करना होगा, उनके प्रति अपनी सेवा, सहानुभूति और सद्भाव के द्वारा उनमें बिल्कुल घुलमिल जाने की चेष्टा करनी होगी जिससे उनकी पूरी सहानुभूति और सहयोग प्राप्त हो सके और उनको स्वयं संग्रह-कार्य के महत्त्व में विश्वास और दिलचस्पी पैदा हो सके।

6 शब्दो के स्थानीय उच्चारण पर विशेष ध्यान रहना चाहिए और उनको ठीक उसी रूप मे लिखा जाना चाहिए।

7 एक शब्द का एक ही अर्थ में अनेक बार उल्लेख नही करना चाहिए।

8 अर्थ एव विवरण पर विशेष ध्यान रहना चाहिए। उन्हें स्पष्ट रूप से लिखना आवश्यक है।

9 प्रत्येक विषय का पारिभाषिक शब्द यथासम्भव एक साथ और पूर्ण रूप से लिखना चाहिए। निर्दिष्ट वर्गो में विषयो का विभाग और उप विभाग भी कर लेना उचित है।

10 जो पारिवारिक शब्द न हो, उन्हे अलग ही लिखना चाहिए।

11 निर्देश पत्र में दिए हुए प्रत्येक नियम को ध्यानपूर्वक समझ या देखकर उपयोग म लाना आवश्यक है।

12 शब्दो, कहावतों मुहावरो और पहेलिया को पृथक पृथक पत्रो पर लिखना चाहिए। जहा शब्द लिखे जायें वहा दूसरे विषय न लिखे जायें।

इन निर्देशो के अनुसार शब्द-सग्रह करने के लिए कार्यकर्ताओं को एक मुद्रित तालिका दी गई थी, जो इस प्रकार थी—

सग्रह की इस तालिका का निम्नलिखित विवरण भी निर्देश-पत्र के साथ सलग्न था

सग्रह की तालिका का विवरण

1 (क) साथ म दी हुई सूची के अनुसार जिस विषय के शब्दो का सग्रह किया जाय, उसका यहा उल्लेख करना होगा।

(ख) सूची के अनुसार समाज के जिस वर्ग में काम किया जाय उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।

2 जिस स्थान में काम किया जाय, उसका उसके सब डिवीजन, जिला आदि का नाम देना होगा।

3 भोजपुरी मगही, मैथिली नागपुरिया आदि जिस भाषा के क्षेत्र में काम किया जाय, उसका उल्लेख करना होगा।

4 आबादी की सख्या ठीक ठीक न मालूम हो सके तो पूछताछ से पता लगाकर अन्दाज से देना होगा।

5 जहाँ जिस स्थान (गाँव आदि) में काम किया जा रहा है, वहाँ की जनता म हिन्दू मुसलमान, हरिजन, क्रिस्तान जन, आदिवासी, चेरो खरवारो, सताली, उराँव किसान जमींदार बढ़ई लुहार आदि पशवालो में कौन अधिक हैं कौन कम हैं, आदि बातों का उल्लेख करना होगा।

6 सिलसिलेवार शब्द।

7 शब्द के साथ उनसे सम्बन्ध रखनेवाले मुहावरों को दर्ज करना होगा। कहावतों को स्वतन्त्र विषय समझा जायगा। शब्द के लिंग का भी (स्त्रीलिंग पुलिंग, नपुसकलिंग उभयलिंग या अलिंग) इस प्रकार उल्लेख करना होगा। य शब्द यहाँ जनसमाज में वस्तुत जिस लिंग में व्यवहृत होता हो, उसी का उल्लेख करना होगा साहित्यिक व्याकरण के अनुसार नहीं।

8 (क) यहाँ इसका उल्लेख करना होगा कि यह शब्द केवल उसी वर्ग विशेष में प्रचलित है या उसके सामान्य जनसमूह में भी। जैसे ग्रन्थियाँ आदि शब्द जो सामान्यत प्रचलित हैं इन्हें सामान्य (सामा०) कहना होगा और 'पोर 'परआ परई आदि जो केवल कानू जातियों में प्रचलित हैं विशेष (विश०) कहे जायँगे।

संग्रह-कार्य निम्नलिखित विषय-सूची के अनुसार होता रहा है—

वृत्तियों की विषय-सूची

1 पेशे के औजार और सामग्रियाँ उनके भेद और हिस्से। उदा०—हल, बैल, खेत बीज आदि।

2 पेशे के ढंग और उनके काम आनेवाले जानवर।

3 पेशे की सवारियाँ, उनके भेद हिस्से।

4 पेशे के ढंग तथा उसकी विविध क्रियाओं और अवस्थाओं से सम्बन्ध रखनेवाले शब्द (जैसे—जुताई बुआई खुदाई, सिंचाई खाद देना, सोहनी रखवाली करना)

5 पेशे की पैदावार के भेद।

6 पेशे या पेशे की सामग्रियों की बाधाएँ और ऐब।

7 पेशे या पेशे की सामग्रियों को बढाने या मदद पहुचाने वाली चीजें।

8 खाने पीने की सामग्रियाँ, उनके हिस्से भेद और उनसे बनने वाली चीजें।

9 मसाले।

10 खाना बनाने की सामग्रियाँ।

11 घर के सामान आसन, शय्या आदि।

12 कपडे लत्ते और कपडो के नाम (छीट आदि)।

13 गहने और शृंगार के सामान।

14 पूजा-पाठ इबादत की सामग्रियाँ और स्थान।

15 जमीन और मिट्टी के भेद।

16 मौसम, हवा पानी बादल के भेद।

17 तौल और माप।

18 दूरी, दिशा और समयसूचक शब्द (घडी मौसम आदि)।

19 घरेलू और पालतू जानवरों, उनके रग-ढग रहन सहन के भेद रहने के स्थान बीमारी, चारागाह, भोजनादि की सामग्री।

20 पशु पक्षी तथा अन्य जीव (मछली आदि)

21 घर-बाहर तथा जल थल के कीडे मकोड (चूटे चीटी, हडडे साप गोजर आदि)

22 लेनदेन, माहवारी हिसाब।

23 जमीन क लगान और उसके भेद।

24 घर, झापडे और मन्दिर मसजिद आदि के प्रकार उनके हिस्स और बनाने की सामग्रिया, (जसे—छत, छप्पर छवाई आदि)।

25 शादी-ब्याह क शब्द।

26 शादी विवाह के रस्म रिवाज—(क) हिन्दुओ के (ख) मुसलमानो के (ग) क्रिस्ताना के।

27 (क) जातकर्म—(1) हिन्दुओ के, (2) मुसलमाना के (3) क्रिस्ताना क, (4) आदिवासियो के।

(ख) जनेऊ।

28 मृत्यु-सस्कार—(क) हिन्दुआ के, (ख) मुसलमाना क (ग) क्रिस्तानों के, (घ) आदिवासिया क।

29 सोहनी रोपनी की सस्कार विधियाँ।

30 पचायत समझौता, शपथ आदि तथा मामले मुकदम सम्बन्धी कचहरी के शब्द।

31 अन्धविश्वास।

32 तिजारत और बाजार।

33 महाजन और कजदार के हिसाब किताब।

34 जमीदार और किसान क हिसाब किताब।

35 कज सूद, रेहन आदि।

36 व्रत त्यौहार (तीज, छठ, होली बकरीद क्रिसमस आदि) और उनकी सामग्रियाँ।

37 रिक्शा टमटम, फिटिन मोटर और हवाई जहाज क हिस्से।

38 मारपीट और युद्ध के हथियार।

39 खलकूद, आखेट मनोविनोद, उनके भेद तथा तत्सम्बन्धी सामग्रियाँ।

6 सिलसिल्वार सम्या ।

7 शब्दों के साथ उनसे सम्बन्ध रखनेवाले मुहावरों को भी दर्ज करना होगा। कहावतों को स्वतन्त्र विषय समझा जायगा। शब्दों के लिंग को भी (स्त्रीलिंग, पुलिंग, नपुसकलिंग उभयलिंग या अलिंग) इस प्रकार उल्लेख करना होगा। ये शब्द वहाँ जनसमाज में वस्तुत जिस लिंग में व्यवहृत होते हो, उसी का उल्लेख करना होगा साहित्यिक व्याकरण के अनुसार नही ।

8 (क) यहाँ इसका उल्लेख करना होगा कि वह शब्द केवल उसी वर्ग विशेष में प्रचलित है या उसके सामान्य जनसमूह में भी। जसे खटिया आदि शब्द जो सामान्यत प्रचलित हैं, इन्हें सामान्य (सामा०) कहना होगा और पोर परआ, परई आदि जो केवल कानू जातियो में प्रचलित हैं विशेष (विश०) कहे जायँगे ।

संग्रह-कार्य निम्नलिखित विषय सूची के अनुसार होता रहा है—

वृत्तियो की विषय-सूची

1 पेशे के औजार और सामग्रियाँ उनके भेद और हिस्से । उदा०—हल, बैल खेत बीज आदि ।

2 पेशे के ढग और उनके काम आनेवाले जानवर ।

3 पेशे की सवारियाँ उनके भेद हिस्से ।

4 पेशे के ढग तथा उसकी विविध क्रियाओ और अवस्थाओ से सम्बन्ध रखनेवाले शब्द (जसे—जुताई बुआई, खुदाई, सिंचाई खाद देना, सोहनी, रखवाली करना)

5 पेशे की पदावार के भेद ।

6 पेशे या पेशे की सामग्रिया की बाधाएँ और ऐब ।

7 पेशे या पेशे की सामग्रिया को बढाने या मदद पहुचाने वाली चीजें ।

8 खाने पीने की सामग्रियाँ, उनके हिस्से भेद और उनसे बनने वाली चीजें ।

9 मसाले ।

10 खाना बनाने की सामग्रिया ।

11 घर के सामान, आसन, शय्या आदि ।

1' कपडे लत्ते और कपडो के नाम (छींट आदि)।

13 गहने और शृगार के सामान ।

14 पूजा-पाठ इबादत की सामग्रियाँ और स्थान ।

15 जमीन और मिट्टी के भेद ।

16 मौसम, हवा, पानी, बादल के भेद ।

17 तौल और माप ।

18 दूरी, दिशा और समयसूचक शब्द (घडी मौसम आदि) ।

19 घरेलू और पालतू जानवरो, उनके रग ढग, रहन सहन के भेद रहने के स्थान बीमारी, चारागाह, भोजनादि की सामग्री ।

20 पशु पक्षी तथा अन्य जीव (मछली आदि)

21 घर-बाहर तया जल थल के कीडे मकोडे (चूटे चीटी, हुडडे साप, गोजर आदि)

22 लेनदेन, माहवारी हिसाब ।

23 जमीन के लगान और उसके भेद ।

24 घर, झापडे और मन्दिर मसजिद आदि के प्रकार, उनके हिस्से और बनाने की सामग्रिया, (जसे—छत, छप्पर-छवाई आदि) ।

25 शादी-ब्याह के शब्द ।

26 शादी विवाह के रस्म रिवाज—(क) हिन्दुआ के, (ख) मुसलमानो के (ग) क्रिस्ताना के ।

27 (क) जात कर्म—(1) हिन्दुओ के, (2) मुसल्मानो के, (3) क्रिस्ताना के, (4) आदिवासियो के ।

(ख) जनेऊ ।

28 मृत्यु सस्कार—(क) हिन्दुओ के, (ख) मुसल्माना के, (ग) क्रिस्तानो के (घ) आदिवासिया के ।

29 सोहनी रोपनी की सस्कार विधियाँ ।

30 पचायत, समझौता शपथ आदि तथा मामले मुकदमे सम्बन्धी कचहरी के शब्द ।

31 अन्धविश्वास ।

32 तिजारत और बाजार ।

33 महाजन और कजदार के हिसाब किताब ।

34 जमीदार और किसान के हिसाब किताब ।

35 कज सूद, रेहन आदि ।

36 व्रत त्योहार (तीज छठ होली, बकरीद, क्रिसमस आदि) और उनकी सामग्रियाँ ।

37 रिक्शा, टमटम, फिटिन मोटर और हवाई जहाज के हिस्से ।

38 मारपीट और युद्ध के हथियार ।

39 खेलकूद आखेट मनोविनोद, उनके भेद तथा तत्सम्बन्धी सामग्रियाँ ।

(आँखमुचौवल, कबड्डी, गाटी चौपड़, शतरंज मुन्नी, बरारत, अखाड़ मनोविनोद गुल्लीडंडा, पतंग कबूतरबाजी आदि)।

40 गाली गलौज।

41 आशीर्वाद, सद्भावना तथा शिष्टाचार।

42 नाच-गान रासलीला के भेद और गीत।

4 मजहब जातपांत के भेद।

44 फूल, फल, पेड़ पौध, घासफूस और उनके भेद।

45 बीमारियों के भेद।

46 घरेलू सामाजिक सास्कृतिक और आर्थिक सम्बन्धसूचक (मां बाप, भाई, बहन चाची पड़ोसी)।

47 गुण भाव सुखदुख रागद्वेष आदि मन के विकारो तथा अवस्थाओ के भेद और अन्य सास्कृतिक और भावात्मक शब्द।

48 उत्पादक (क) प्राकृतिक—भूचाल आंधी।

(ख) मानवीय चोरी डकैती, उसके भेद व्यापार (सेंध आदि)।

साहित्य इतिहास की प्रविधि

साहित्य के इतिहास की कालक्रमानुसार विधि से रचना नही हो सकती क्योकि साहित्य सार्वकालिक होता है। किसी काल की सीमा से उसे आबद्ध नही किया जा सकता। जो साहित्य काल की सीमा मे आबद्ध है वह साहित्य के इतिहास में स्थान पाने का अधिकारी नही है। हिन्दी मे स्वाधीनता आन्दोलन काल म रचा गया साहित्य काल कवलित हो गया। जो रचनाएँ साहित्यिक तत्त्व मानवीय अनुभूतियां—सुख और दुख—पर आधारित रही हैं वे जीवित रही हैं। पर प्रश्न यह है कि उन्हे वर्ष तिथि सम्मत किस 'काल' के अन्तर्गत रखा जा सकता है? उनका रचनाकाल ही आप जान सकते हैं जीवनकाल नही। इसी तर्क को पुरस्सर करते हुए डब्ल्यू० पी० केर ने कहा है कि 'हम साहित्य के इतिहास की आवश्यकता ही नहीं है क्योकि उसकी रचनाएँ शाश्वत होती है—सदा विद्यमान रहती हैं। और इस तरह उनका कोई इतिहास ही नही होता। टी० एस० इलियट भी लगभग इसी मत के पोषक हैं। वे किसी कृति का अतीत मानते ही नही हैं। शापनआवर के शब्दो म 'कला सदा ही अपना लक्ष्य प्राप्त करती रही है इसम विकास नही होता और न ही इसे अतिक्रान्त (सुपरसीड) किया जा सकता है और न दुहराया ही जा सकता है। इस पर टिप्पणी करते हुए आस्टिन वारेन कहता है इस बात से इनकार नही किया जा सकता कि राजनीतिक इतिहास मे और कला के इतिहास म अन्तर है। जो ऐतिहासिक और विगत है उसमे तथा प्राचीन म जो ऐतिहासिक

होने के साथ ही साथ किसी-न किसी क़दर इस समय भी वतमान है, फर्क तो है ही।" इतिहास उन घटनाओं का वर्णन या पर्यालोचन है, जो घट चुकी हैं। उनकी वैसी ही पुनरावृत्ति नहीं होती। साहित्य उन कृतियो का रूप है जो किसी काल म उत्पन्न भले ही हो गया हो, पर उसका न तो विनास होना है और न अन्त। यहाँ हम शुद्ध साहित्य (उत्कृष्ट साहित्य) की चर्चा कर रहे हैं। दुर्भाग्य यह है कि साहित्य के इतिहासों म प्रचार या दलगतता के कारण घटिया साहित्य भी स्थान पा जाता है और शुद्ध साहित्य उपेक्षित कर दिया जाता है। एक लेखक ने ठीक ही कहा है कि साहित्य के नहीं, साहित्यकार के इतिहास लिखे जा रहे हैं। जो इतिहास लिखे गये हैं, वे या तो साहित्यकार के जीवन-काल क्रमानुसार हैं जिनमें उनकी रचनाओ की या तो तालिका है या तालिकाएँ और आलोचनाएँ हैं। वे काल विशेष की प्रवृत्ति विशेष को लक्ष्य कर भी लिखे गए हैं और उन्हें आदि, मध्य और वतमान काल नाम दे दिया गया है। साहित्य पर समय का प्रभाव पडे यह आवश्यक नहीं है और इसलिए उसकी पृष्ठभूमि मे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक आदि का विस्तारपूर्वक वणन देना बहुत जरूरी नहीं है। छायावाद युग का हम उदाहरण ले सकते हैं। यह देश म राजनीतिक-सामाजिक सघर्ष का काल था। छायावादी रचनाओं को पढ़कर हमें काल की बाह्य उथल पुथल का पता नही चलता। प्रत्युत उससे विपरीत स्थिति की कल्पना होती है। जान पडता है, देश की जनता शान्त वातावरण का सुख भोग रही है—इसीसे कवि गगनविहारी हो रहा है, प्रेम के मधुर गीत गा रहा है, अन्तर्मुख हो रहस्य की भूमिका मे प्रविष्ट हो रहा है। ऐसी स्थिति म इस युग के साहित्य के इतिहास की पृष्ठभूमि मे सामाजिक राजनीतिक उथल-पुथल की चर्चा का कोई अर्थ ही नही है। तो फिर क्या साहित्य का इतिहास लिखा ही न जाय ? क्या वर्तमान साहित्य पर अतीत म रचे गए साहित्य का कोई प्रभाव नहीं खोजा जा सकता? यदि किसी भाषा के साहित्य का इतिहास लिखा जाय तो ऐसे व्यक्ति के द्वारा लिखा जाय जो साहित्य की परम्परा से खूब परिचित हो अन्यथा वह आलोच्य साहित्य के स्रोत मूल को पकड़ नहीं पायगा। प्रभाव खोजते समय केवल किसी कवि या लेखक पर कुछ शब्द या भाव की छाया का दिग्दर्शन पर्याप्त नही होगा। क्योंकि प्रतीक और बिम्ब किसी काल मे प्रचलित होकर सर्वग्राह्य हो जाते हैं। "खिंचे हैं हृदय बीन के तार" पंक्ति यदि किसी काव्य म है तो उसे 'पन्त' का प्रभाव नही समझ लेना चाहिए यह तो तत्कालीन कविता की सामान्य भाव सम्पत्ति है। हाँ काव्य का अधिकांश अश इसी स दभ म ग्रहण किया जाय तो आप उसे प्रभाव या चौर्य कम की सज्ञा दे सकते हैं। साहित्य-इतिहासकार का अपनी साहित्य-परम्परा के अतिरिक्त अय साहित्यो की गतिविधि का भी

ज्ञान होना चाहिए। यदि अंग्रेजी साहित्य का अध्येता केवल अंग्रेजी-साहित्य का ज्ञाता होगा तो वह उसके साहित्य मे फ्रांस, जर्मनी, नार्वे से आयातित साहित्य प्रवाहो के स्रोतो को कैसे पहचान सकेगा ? हम यह मानना होगा कि 'साहित्यिक कृतियो की पूरी प्रणाली है, जिसके आन्तरिक सम्बन्ध नयी कृतियों की रचना के साथ निरन्तर परिवर्तित होते जा रहे हैं, जो पूरी-की-पूरी एक चिर परिवर्तनशील जीवधारी की तरह बढ़ रही है ?'[1] साहित्य विकास के साथ जविक या विकासवादी सिद्धान्त लागू नही होगा। जविक विकास मे तो जीव का आदि और अन्त है, पर साहित्य का आदि है, अन्त नही है। हिन्दी मे यद्यपि गद्य-काव्य की विधा 'नयी कविता' के गद्यमय हो जाने से रुक-सी गयी है या उसका ह्रास हो गया है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि भविष्य म गद्य-काव्य लिखा ही नही जायेगा।

"साहित्य-कृतियो के बीच स्पष्ट सम्बन्धो, स्रोतो और प्रभावों का विवेचन प्राय किया जाता रहा है और यह परम्परागत पाण्डित्य की एक शाखा रहा है। यद्यपि इसे सकीर्ण अर्थ मे साहित्य का इतिहास नही कहा जा सकता परन्तु लेखकों के बीच साहित्यिक सम्बन्ध स्थापित करना इस तरह का इतिहास लिखने के लिए एक नितान्त महत्त्वपूर्ण तयारी रहा है।—रैमण्ड हेवेन्स की 'मिल्टन्स इन्फ्लुएन्स आन इग्लिश पोयट्री' जसी पुस्तक मे, जो मुख्य रूप से एक साहित्यिक अध्ययन है, न केवल अठारहवी शताब्दी के कवियो द्वारा मिल्टन के विचारो की स्वीकृतियो को एकत्र करके, अपितु पुस्तकों का अध्ययन करके और साम्यो तथा समान्तर उक्तियो का विश्लेषण करके मिल्टन के प्रभाव के बहुत प्रभावोत्पादक साम्य जुटाये गये हैं।'[2] हिन्दी मे स्वर्गीय प० पद्मसिह शर्मा ने बिहारी के दोहो के भाष्य में इसी प्रकार का अध्ययन प्रस्तुत किया है। पूववर्ती कवियो से बिहारी ने कितने अश मे क्या ग्रहण किया है, इसे साहित्यिक और तुलनात्मक शली मे प्रस्तुत किया गया है। इतिहास-लेखन की इस तुलनात्मक पद्धति में चाहे कुछ दोष भले ही हों, पर यह भी एक पद्धति है और जीवन्त पद्धति है इससे इनकार नही किया जा सकता।

'किसी परम्परा मे प्रत्येक कृति की सही स्थिति निश्चित करना साहित्यिक इतिहास का पहला काम है।—कलात्मक कृतियो मे सबसे पहली और सबसे प्रकट शृखला एक लेखक द्वारा लिखी गयी कृतियो की है।—हम किसी एक कृति या कृतियो के समूह को उसकी परिपक्व रचना मान सकते हैं और शेष कृतियो से इस दृष्टि से विचार कर सकते हैं कि वे इस टाइप की कृति या

---

1 रेनेवेलक और आस्टेन वारेन, साहित्य-सिद्धान्त, पृष्ठ 338

2. वही, पृष्ठ 342

कृतियों से कितना निकट पडती हैं।"[1] व्यक्ति की कृतिया का समग्र अध्ययन न करके साहित्य के किसी एक तत्व को लेकर भी अध्ययन किया जा सकता है और उसके विकास की दिशा खोजी जा सकती है। जैसे हिन्दी-कविता में छन्दों का विकास या आधुनिक कविता मे प्रतीक या बिम्बयोजना की साहित्यिक विधाओं का विकास प्रस्तुत किया गया है और उनका स्रोत तथा विकास भी खोजा गया है, पर ऐसा काय पर्याप्त अध्ययन की माँग करता है क्योकि 'विधाओं के इतिहास की समस्या समूचे इतिहास की समस्या है। अर्थात् सन्दभ की किसी क्रमबद्ध योजना को ध्यान म रखे बिना हम इतिहास का अध्ययन नहीं कर सकते। हिन्दी में पवनदूत-काव्य के अध्ययन के लिए हमे कालिदास के 'मेघदूत तक पीछे जाना होगा। इसी तरह कृष्ण-कविता मे 'राधा माधव विलास का इतिहास' तब तक अधूरा रहेगा जब तक हम सिद्धों की सहज साधना से परिचित नही होंगे। हमारा विश्वास है कि यदि जयदेव और विद्यापति को समझना है तो हमे सिद्ध-साहित्य और दशन से अवगत होना होगा। किसी साहित्य विधा का इतिहास लिखने के पूव इतिहासकार को उसके सभी अनिवाय तत्वा को हृदयगम कर लेना चाहिए। उसके पश्चात् ही वह निश्चित कालवद्धता के दायरे म लिखित साहित्य से उन तत्वा की खोज कर सकेगा। इतिहास-लेखक को आलोच्य साहित्य की भूमिकाओ से लेखक या कवि के विचारा, उसके अपने साहित्य के वर्गीकरण, आदि पर भी ध्यान देना चाहिए और उसके काव्य से सम्बद्ध उसी के वर्गीकरण को स्वीकार कर लेना चाहिए। इससे उसके दृष्टिकोण को समझने और उस पर अपना मत व्यक्त करने मे सहायता हो जायगी।

साहित्यिक इतिहास का काल विभाजन एक ऐसी समस्या है जो कभी हल नही हो पायगी। इग्लण्ड म भी रोमेण्टिसिज्म, सिम्बेलिज्म, रिनेसाँ आदि शब्दो की व्याख्या ही विवाद का विषय बनी हुई है। इन शब्दा का अथ विकास होता रहा है। अत आरम्भ मे ये जिन अर्थों म प्रयोग म आए उन्ही अर्थों को लेकर आज के साहित्य को परखना, भूल होगा। कहा जाता है, किसी भाषा के साहित्य का इतिहास राष्ट्र के समस्त साहित्य से सयुक्त किया जाना चाहिए जिससे राष्ट्र की चित्तवत्ति का अध्ययन किया जा सके, पर यह काय आसान नहीं है। हिन्दी मे हिन्दीतर भाषा-साहित्यो की विधाओ के अध्ययन का श्रीगणेश हो गया है। इन अध्ययनो का, व्यवस्थित रूप रेखा बनाकर, यदि पुन अध्ययन और विश्लेषण किया जाय तो भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक इतिहास लिखा जा सकता है, पर इसके लिए समय, धय और अध्यवसाय की आवश्यकता है।

---

1 रेनेवलक और आस्टेन वारेन, साहित्य सिद्धान्त, पृष्ठ 342

इतिहास लेखन और उसकी शोध प्रविधि

लेखन—'इतिहास' शब्द द्वि-अर्थी है—एक अर्थ में वह अतीत की घटनाओं के वर्णन का द्योतक है दूसरे अर्थ में स्वयं घटनाओं का। इतिहास में ये दोनों बातें रहती हैं। इतिहास राजाओं के जन्म मरण और उनके कार्यों का काल-क्रमानुसार वर्णन नहीं है न कोरी काल घटित घटनाओं का संग्रह मात्र। इतिहास तो जाति (नेशन) के उदय उत्थान तथा अवसान की, विश्व की बहुमुखी प्रगति के परिप्रेक्ष्य में आलोचना है उसमें मानव सभ्यता के विकास का लेखा-जोखा होता है। जो इतिहास को केवल घटनाओं का कालक्रम-बद्ध संचयन समझते हैं वे मानव मन के विकास की उपेक्षा करते हैं। संसार में घटनाएँ घटती हैं, पर वे अनायास नहीं घटती, उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध होता है।

प्रसिद्ध इतिहासकार टायनबी का मत है कि घटनाएँ किसी विशिष्ट पैटर्न से घटती हैं और उनमें एक लयात्मकता भी खोजी जा सकती है। अतीत में होनेवाली मार काट की घटनाओं से हम उस युग के प्रति वितृष्णा का भाव नहीं धारण कर लेना चाहिए। ऐतिहासिक क्रम में सब मिलाकर प्राकृतिकता (Naturalness) और नैतिक वैचाय भी निहित रहता है। यूरोप में और भारत में भी मानव इतिहास पर धार्मिकता का रंग चढ़ा रहता था। लोगों का विश्वास था कि किसी राष्ट्र या जाति का उत्थान पतन परमात्मा की इच्छा पर निर्भर रहता है। इस दार्शनिक पृष्ठभूमि पर लिखे इतिहासों में घटनाओं का कार्य-कारण भौतिक सम्बन्ध से नहीं देखा जाता था पर वैज्ञानिक युग में इतिहास धार्मिक मान्यताओं को ग्रहण कर नहीं लिखे जाते। अब तो घटनाओं का निरीक्षण परीक्षण तर्कबुद्धि से किया जाता है और निष्कर्ष निकाले जाते हैं। सामाजिक विचार धारा के उदय के साथ यह सोचा जाने लगा कि इतिहास को किसी राष्ट्र तक सीमित न रहकर उसे विश्वव्यापी दृष्टि से देखा जाय, उसे दर्पण बनाया जाय। घटनाएँ परमात्मा द्वारा थोपी नहीं जाती, वरन मनुष्य के कर्मों का परिणाम होती हैं। मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता होता है। इस विचार को लेकर घटनाओं का कार्य कारण सम्बन्ध खोजा जाना चाहिए। मिल, मार्क्स, एंजिल इतिहास लेखन की वैज्ञानिक पद्धति के प्रस्तुतकर्ता माने जाते हैं। अठारहवीं शताब्दी के इतिहासकार विको और हर्डर का मत है कि प्राकृतिक जगत के निरीक्षण परीक्षण से जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है वह मानव कृत्या, सर्जना तथा संस्थाओं से अर्जित ज्ञान से भिन्न प्रकार का है। अतः यह ज्ञान मनुष्येतर माध्यम से प्राप्त ज्ञान की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ अधिक विश्वसनीय है। राष्ट्रों का संसार मनुष्य की सृष्टि है। अतः वही इतिहास का विषय हो सकता है और मनुष्य उसी के प्रति जिज्ञासु हो सकता है प्राकृतिक

जगत परमात्मा की सृष्टि है। उसका इतिहास जनसामान्य के लिए अधिक रुचिकर नहीं हो सकता। विको इसी से अतीत की मानव-आत्मा को कल्पित करने पर बल देता है। उस युग में मानव-मन की क्या प्रवृत्ति थी, उसे उद-घोषित करने की इतिहासकार को आवश्यकता है। विको मानव इतिहास के चक्राकार सिद्धान्त (Cycle Theory) का पक्षपाती है। उसके मत से 'स्टेज' मानव मन का एक एतिहासिक उपकरण है जो बँधी लीक पर न चलकर समय समय पर परिवर्तित दिशा ग्रहण करता रहता है। हम एतिहासिक शोध प्रक्रिया से उसका मूल्यांकन करने म समय होते हैं।

जमन लेखक हुड का मत है कि मनुष्य के कृत्यों को देश-काल तथा राष्ट्रीय चरित्र की दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। भूतकालीन मानव कृत घटनाओं को विश्वव्यापी निरपेक्ष सावभौम सावकालिक नियम का निदशन नही मानना चाहिए। मानव-मन गत्यात्मक होता है, इसे विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए। प्राकृतिक नियम सावकालिक, सवदेशीय हाते हैं, उन्हें ऐतिहासिक घटनाओं पर लागू करना अनुचित होगा। समाज विशेष से सम्बद्ध मनुष्य पर जटिल और व्यापक प्रभाव पडते रहत हैं। वे ही ऐतिहासिक काल में मनुष्य के विचार तथा आचरणों के ढग की अभिव्यक्ति का निर्धारण करते हैं। जमन दाशनिक हेगल ने भी लगभग ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं। इतिहास को क्या होना चाहिए, इस सम्बन्ध में चिन्तकों का मतभेद समाप्त नही हुआ है और न होगा। सक्षेप में, हम यही कह सकते हैं कि इतिहास का देश-काल की सामाजिक, सास्कृतिक राजनीतिक, धार्मिक आदि प्रवत्तियों का दपण होना चाहिए।

प्रविधि—इतिहास की शोध प्रविधि अन्य विषयों की शोध प्रविधि से विशेष भिन्न नहीं है। शोधार्थी को काय प्रारम्भ करने के पूव शोध की वैज्ञानिक प्रविधि से अवगत हो जाना चाहिए। उसके पश्चात उसे उसके विषय पर किए गए शोध-काय का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। उसे पाण्डुलिपियों को एकत्र कर उसे पढने की कला से परिचित होना चाहिए, शोधपत्रियों (cards) को सूचीबद्ध करने सामग्री का वर्गीकरण करने और सन्दभ-ग्रन्थों आदि से अवगत हो जाना चाहिए। ज्ञात तथ्यों से अज्ञात तथ्यों तक पहुचा जा सकता है। जो इतिहासकार शोध के विषय पर काय कर चुके हैं उनसे सम्पक स्थापित करने की आवश्यकता होती है। शोधार्थी में प्रलेखों की सामग्री से काम की बात तुरन्त छांट लेने की क्षमता होनी चाहिए। प्राप्त तथ्यों की व्याख्या भी आवश्यक होती है। जिस काल का शोध करना हो, उस काल का यदि कोई व्यक्ति जीवित हो तो उससे सम्पक स्थापित करना आवश्यक होगा। इतिहास के शोधार्थी को अपने विषय के ज्ञान के अतिरिक्त नतत्त्व विज्ञान, अथशास्त्र, भूगोल, दशन, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, विविध भाषाओं के साहित्य का

इतिहास आदि का भी ज्ञान सम्पादित करना होगा क्योंकि इतिहास घटनाओं का कालक्रमानुसार वर्णन न होकर राष्ट्र और जाति का सम्पूर्ण चित्र होता है।

इतिहास की सामग्री के मुख्य स्रोत दो हैं—1 लिखित और 2 परम्परा। लिखित स्रोत को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—साहित्य (आन्तरिक), शासकीय (बाह्य)

साहित्यिक स्रोत से हम उन घटनाओं का पता कर सकते हैं जो साहित्यकार द्वारा देखी-सुनी गई हैं और जिन्हें उसने अपनी कृतियों में अंकित किया है। दूसरे विभाग में वे शासकीय प्रपत्र आते हैं जिनमें व्यक्ति, समाज और राष्ट्र से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का वर्णन रहता है। भारत का शासन अंग्रेजों ने किस प्रकार भारतीयों को सौंपा, इसका वर्णन इण्डिया हाउस लन्दन के रिकार्ड से ज्ञात होता है। पार्लियामेंट की कारवाई से समय-समय पर पारित विधि नियम आदि का ज्ञान होता है। परम्परा स्रोत से प्राप्त सामग्री तो पीढ़ी दर-पीढ़ी सुनी-सुनाई बातें (घटनाएँ) होती हैं। लोक-साहित्य (गीत, कथा आदि) में अतीत की घटनाएँ बहुत कुछ अंश में संचित रहती हैं। राजस्थान का अधिकांश इतिहास कर्नल टाड ने परम्परा से प्राप्त लोक-साहित्य के आधार पर लिखा था।

परम्परा या अन्य स्रोतों से प्राप्त तथ्यों की अन्य स्रोतों से प्राप्त तथ्यों से तुलना करने पर ही उनकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता जानी जा सकती है। कई तथ्य प्रस्तर-लेखों से भी ज्ञात होते हैं। अतः शोधकर्ता को उनका भी उपयोग करना होता है। कभी-कभी पत्थर का काल जानना भी आवश्यक होता है। ऐसी दशा में उसे किसी भूगर्भ विशेषज्ञ तथा पुरातत्त्व विशेषज्ञ से, जो लिपि ज्ञाता भी हो, सहायता लेनी होती है। इतिहासकार का कार्य तथ्यों का संकलन या सम्पादन मात्र नहीं है, उसे उनका उपयोग अपने इतिहास लेखन में करना चाहिए। स्रोत सामग्री का उपयोग कैसे किया जाय यह शोधार्थी के चातुर्य पर निर्भर है। उसे जाति या राष्ट्रप्रेम के कारण राष्ट्रीय तथ्यों की तोड़-मरोड़ नहीं करनी चाहिए।

इतिहास के शोधकर्ता के सामने एक कठिनाई आती है। विद्वानों ने इतिहास क्या है—और क्या होना चाहिए ? इस प्रश्न पर विविध मत व्यक्त किए हैं। अतः वह यह नहीं निर्णय कर पाता कि इतिहास की किस धारणा को अंगीकार कर अपनी प्रविधि निर्धारित करे।

इतिहास को साहित्य माननेवाले उसमें आत्मपरकता (सब्जेक्टिविटी) को प्रविष्ट कर देते हैं। इस प्रकार के इतिहास में भाषा और कल्पना सौन्दर्य की प्रधानता हो जाती है। तथ्य गौण हो जाते हैं। इतिहास के साथ नैतिकता को जोड़ देने से निष्कर्षों के जीवन-मूल्य आधार बनने लगे।

इसके विपरीत वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के साथ वैज्ञानिक प्रविधि से इतिहास लिख जाने लगे थे। पर यह प्रणाली अधिक प्रचलित नहीं हो पाई। इतिहास को प्रचार बनाने की दिशा को भी सत्य का हनन समझा जाना चाहिए। कुछ देशों में इतिहास प्राय इसी दृष्टिकोण से लिखे जाते रहे हैं। ऐसे वणन 'इतिहास' क अन्तगत नही आने चाहिए। क्योंकि इसमें बौद्धिक भ्रष्टाचार दिखाई देता है। इतिहास में सत्यान्वेषण होना चाहिए, सत्य विकृति नही। प्राचीन इतिहासकारो ने ऐसे अटल सिद्धान्त बना रखे थे कि जिनके अनुसार लिखे गए वणन ही 'इतिहास' कहे जाते थे पर दुर्भाग्य से उन सिद्धान्तो की आज मान्यता समाप्त हो गयी है।

ऐतिहासिक अनुसधान अवैज्ञानिक

इतिहास के शोध को वैज्ञानिक विधि सम्मत माना जाय या नहीं इस सम्बन्ध मे मतभेद है। ऐतिहासिक शोध को वैज्ञानिक प्रयास तो माना जा सकता है परन्तु यदि शोध की विवेचनात्मक प्रणाली की कसौटी पर उसे कसा जाय तो वह वैज्ञानिक नही कहा जा सकता। वैज्ञानिक शोध के तीन मुख्य अग हैं (1) तथ्यों का सग्रह, (2) तथ्यों की व्याख्या, और (3) निष्कष तथा उनका सामान्यीकरण। मोले का मत है कि ऐतिहासिक शोध उपयुक्त तीन कसौटियो पर खरा नही उतरता और इसके लिए उसने निम्नलिखित कारण दिये हैं—

(1) तथ्यो के सग्रह के आधार पर सामान्य निष्कष निकाले जाते हैं, परन्तु जो तथ्य एकत्रित किए जाते हैं उनके स्रोतों की प्रामाणिकता प्राय सदिग्ध रहती है। भौतिक विज्ञान के तथ्यो के समान ऐतिहासिक तथ्य प्रत्यक्ष ज्ञातव्य या प्रयोग साध्य नहीं होते। उनकी सत्यता अनुमान-आधारित होती है। जो घटना एक बार घट गई वह उसी रूप मे दुबारा नही घटती। अत इतिहासकार आलोच्य काल की प्रमुख घटनाओ के आधार पर ही अपना निष्कष निकाल सकता है, जो अनुमानित ही हो सकता है। हम मोले की आपत्ति के तक को असगत नही कह सकते। प्रागैतिहासिक काल की घटनाओ को जिन्हें इतिहासकारो ने तथाकथित शोध के बल पर 'तथ्य' मान लिया है क्या वे निविवाद सिद्ध हो पाती हैं? उदाहरणाथ, आर्यों का आदिदेश भारत था या वे बाहर से आकर बसे थे, यह प्रश्न इतिहास के अनुसधान से अभी तक हल नही हो पाया। कुछ विद्वानो का मत है कि आय न तो मध्य एशिया से आय, न उत्तरी ध्रुव या यूरोप के किसी अन्य स्थान से, वे तो भारत के ही मूल निवासी हैं। अपने इस निष्कष के लिए अन्य प्रमाणो के साथ विदेशी यात्रियों—विशेषकर अल्बरूनी और मेगास्थनीज—के मतो का भी सहारा लेते हैं। अल्बरूनी आर्यों का आदि-

निवास—हिमालय मानता है और मेगास्थनीज भारतवर्ष। मेगास्थनीज लिखता है, 'कहा जाता है कि भारत मे विभिन्न जातियो के लोग बसते हैं। उनमे से एक भी विदेशी वशज नही है। न तो भारत ने कही उपनिवेश बनाये और न बाहर की जातियो ने भारत को अपना उपनिवेश बनाया।' अलबरूनी ने सुनी सुनाई बातें लिखी हैं 'ऐसे प्रमाण मिले हैं, जिनसे ज्ञात हुआ है कि भारतीय बाहर जाते थे, दक्षिण पूर्वीय देशो म उनका विशेष रूप से प्रचार होता था।' पुराणो म ययाति के पुत्र के वशज पश्चिम म गए और म्लच्छ हो गए। भविष्यपुराण मे शाकद्वीप स मगो के आने का उल्लेख है। बौद्ध-साहित्य के पालिग्रन्थो के अनुसार चक्रवर्ती राजा चारो महाद्वीपों पर राज्य करता है। वह क्रमश पूर्व, दक्षिण पश्चिम और उत्तर में जाकर पूर्व विदेह, जम्बूद्वीप, अपर-गोपाल और उत्तरकुरु को जीतता है (यहाँ बोधिवश और बुद्धवस अटठकथा द्रष्टव्य है)। प्रथम कल्प मे मान्धाता ने इसी प्रकार दिग्विजय की थी। उस समय अन्य तीन महाद्वीपों के लोग भी जम्बूद्वीप म आ बसे थे और उन्ही के नाम पर विदेह राष्ट्र, कुरु राष्ट्र और अपरान्त राष्ट्र नाम के प्रदेश हो गये थे। पूर्व विदेह डॉ० हेमचन्द्र रायचौधरी के अनुसार पूर्वी तुर्किस्तान या उत्तरी चीन है।

डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल और डॉ० हेमचन्द्र रायचौधरी ने उत्तर कुरु को साइबेरिया से मिलाया है।

अपरगोपाल को पश्चिमी तुर्किस्तान स मिलाया गया है। अत प्रागैतिहासिक काल मे इन देशा से भारत म विदेशी जातियो का आना सिद्ध होता है।'[1] जिन घटनाओं को ऐतिहासिक युग की कहा जाता है उनकी सत्यता भी कहाँ निर्विवाद सिद्ध हो पाती है? उदाहरण के लिए, सन् 1857 के अग्रजो के प्रति हुए देश व्यापी विद्रोह को स्वाधीनता-आन्दोलन कहा जाय या सिपाही विद्रोह? झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने देशभक्ति से प्रेरित हो शस्त्र ग्रहण किए थे या अपने राज्य की रक्षा के प्रतिशोध में विद्रोह किया था? ऐसे कई तथ्यों के आगे प्रश्नवाचक चिह्न लगाए जा सकते हैं।

(2) ऐतिहासिक शोध को अवैज्ञानिक कहने का दूसरा कारण यह है कि भौतिक विज्ञान के शोध प्रयोगात्मक होने से विश्वसनीय होते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों की परीक्षा तर्क के आधार पर ही हो सकती है। वे किंवदन्तियो, पत्रो, डायरियो, यात्रा-वर्णन ग्रन्थों आदि से एकत्र किए जाते हैं जिनका विश्लेषण कठिन होता है। इतिहासकार को उक्त स्रोतों म वर्णित अधिकांश तथ्यो को सत्य मानकर ही तर्क करना पड़ता है। पर लिखित घटनाएँ कभी-कभी आलंकारिक, प्रतीकात्मक या व्यंग्यात्मक शैली में भी प्रस्तुत की जाती हैं जिनका

---

1 धर्मदूत वर्ष 35, अक 9, पृष्ठ 226-227

वास्तविक अर्थ तत्कालीन युग की जनता के लिए सहज ग्राह्य होता है, वर्तमान युग का विश्लेषक तो अपनी ही बुद्धि से उनका अनुमान लगा सकता है।

पुराणों की ऐतिहासिक घटनाएँ प्रतीक और आलंकारिक भाषा के कारण ही रहस्यमय हो गई हैं। अन्ततोगत्वा इतिहासकार को अपने तर्कों के परिणाम को अनिश्चित शब्द 'सम्भावना' के साथ ही प्रस्तुत करना पड़ता है। बहुत प्राचीन काल की बात छोड़ भी दें तो वर्तमान काल के प्रथम यूरोपीय महायुद्ध का कारण इतिहासकार ठीक-ठीक नहीं बता पाये। कुछ इतिहासकार आर्क ड्यूक फर्निनड की हत्या मानते हैं, पर युद्ध इसी एक कारण से नहीं हो सकता। अन्य कारण भी उससे सम्बद्ध हो सकते हैं। कई बार तो ऐतिहासिक निष्कर्ष ऐसे होते हैं जैसे किसी दम्पती के सम्बन्ध विच्छेद (तलाक) का कारण विवाह को माना जाय। यह तो वही तर्क हुआ कि "न होता बाँस, न बजती बाँसुरी।' सम्बन्ध विच्छेद के कारण गम्भीर सैद्धान्तिक मतभेद क्रूरता, चरित्रहीनता आदि भी हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि ऐतिहासिक शोध में निष्कर्ष अनुमानित होने के कारण शुद्ध वैज्ञानिक नहीं कहे जा सकते। भौतिक विज्ञान के शोध के निष्कर्ष परिस्थिति विशेष के लिए 'नियम' का रूप धारण कर लेते हैं। पर इतिहास सम्बन्धी शोध के निष्कर्ष अनिर्णीत तथ्य मात्र रह जाते हैं। इसलिए इतिहास के शोध वैज्ञानिक प्रविधि का अनुसरण नहीं करते।

जो शोध केवल प्रलेखों (डाक्यूमेंटस) पर-आधारित होते हैं, उन्हें बहुत विश्वसनीय नहीं माना जाना चाहिए। एक शोध प्रबन्ध में प्रलेखों के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया कि एशियाई देशों में बच्चों की मृत्यु संख्या पाश्चात्य देशों की अपेक्षा अधिक है पर शोधकर्ता का, यदि व्यक्तिगत अनुभव होता तो बहुत से एशियाई देशों में बहुत बार बच्चों के जन्म-मृत्यु को दर्ज नहीं कराया जाता। भारत के आदिवासी क्षेत्रों में तो यह बात सामान्य है।

इतिहास के क्षेत्र में अनुसंधानकर्ता को अपने विषय के चुनाव में बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए। उसे ऐसा विषय नहीं लेना चाहिए जिस पर पर्याप्त विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध न हो सके। इतिहास के शोधकर्ता को भी एकाधिक भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है। मध्यकालीन समस्या को समझने के लिए फारसी का ज्ञान अपेक्षित है क्योंकि मुगलकालीन दस्तावेज इसी भाषा में मिलते हैं। प्राचीनकालीन समस्या बिना संस्कृत, पालि आदि भाषाओं के ज्ञान के समझ में ही नहीं आ पाती। अनूदित ग्रन्थों पर अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि वे मूल स्रोत न होकर गौण स्रोत होते हैं।

ग्रियसन की भाषा सर्वेक्षण-प्रणाली

ग्रियसन ने सरकारी कर्मचारियों की सहायता से भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण की जो प्रणाली अपनाई उसे सर्वे के प्रथम भाग के हिन्दी रूपान्तर से संक्षेप में यहाँ दिया जाता है। सन् 1921 की जनगणना के अनुसार भारतीय साम्राज्य में 188 भाषाएँ थी, बोलियां की संख्या इससे पृथक थी।

ग्रियसन ने सर्वप्रथम देश में प्रचलित भाषा-सम्बन्धी सूची तैयार की। स्थानीय सूचियों के आधार पर प्रान्तीय सूचियाँ तैयार की गयी और उन्हें दो वर्गों में बाँटा गया। पहले वर्ग में उन बोलियों को रखा गया जो किसी विशेष भाग में बोली जाती थी दूसरे वर्ग में उन्हें रखा गया जिन्हें विदेशी लोग बोलते थे। सर्वेक्षण में प्रथम वर्ग की भाषा या बोलियों पर ही ध्यान दिया गया। विदेशियों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं को छोड दिया गया। इसके बाद प्रत्येक जिले के अधिकारी को उसके जिले में बोली जाने वाली भाषा या बोली के तीन-तीन नमूने भेजने को कहा गया और यह निर्देश दिया गया कि नमूने एकत्र करने में पर्याप्त सावधानी बरती जाय। प्रथम नमूना बाइबिल के अपव्ययी पुत्र की कथा का अनुवाद था। इसके 65 पाठान्तर किये गए। ऐसा अनुमान किया गया कि जिन्हें अंग्रेजी का ज्ञान नहीं है उन्हें भी सर्वेक्षण के लिए नमूना तैयार करते समय, इस संग्रह के किसी-न किसी पाठ से अपनी भाषा अथवा बोली में अनुवाद करने में सहायता मिल जायगी। द्वितीय नमूने के सम्बन्ध में इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं हुई क्योंकि इसके चुनाव का भार स्थानीय लोगों पर था लेकिन इसके सम्बन्ध में आदेश थे कि नमूना प्रचलित लिपि में दिया जाय और साथ ही उसे रोमन लिपि में भी दिया जाय तथा प्रत्येक पंक्ति का अनुवाद अच्छी अंग्रेजी में दिया जाय। अधिकारियों को यह भी आदेश दिया गया था कि अनुवाद साहित्यिक भाषा में न हो। इन नमूनों का लक्ष्य यह था कि प्रत्येक अनुवादक अपनी परिभाषा में, चाहे वह असंस्कारी भाषा ही क्यों न हो, अनुवाद करे। तीसरे नमूने में आदर्श शब्द तथा वाक्य थे जिन्हें छपे हुए फार्म के रूप में पुस्तकाकार तैयार किया गया था।

नमूने का सम्पादन

जब प्रत्येक अञ्चल से भाषा और बोलियों के नमूने प्राप्त हो गए तब उनके सम्पादन की समस्या आयी। वर्गीकरण की सामान्य पद्धति निश्चित करना आवश्यक हो गया। प्राप्त नमूनों की गणना उन्होंने नहीं की क्योंकि उन्होंने जान-बूझकर अधिक नमूने मँगाये थे। अत महत्त्वपूर्ण नमूनों को चुना

गया। हिमालय तथा असम प्रदेश की सीमा की कतिपय अलिखित बोलियों के एक एक नमूने ही प्राप्त हुए थे। इन बोलियों को लिखने में असावधानी की भी कल्पना थी। पर सीमान्त के अधिकारियों से पत्राचार करके उन्होंने शंकाओं का निवारण किया। नमूनों को शुद्ध रूप देने में ग्रियर्सन को बड़ी कठिनाई हुई। हिन्दूकुश पर्वत में हिमपात होने से एक नमूने के संशोधन में छह मास से अधिक समय लग गया। इसका कारण यह था कि पामीर की एक बोली के लिए कोई दुभाषिया नहीं मिल सका था। हिन्दूकुश की काफिर बोलियों के बोलने वालों में से एक बोली के किसी प्रतिनिधि से सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका। अन्त में बड़ी खोज के बाद एक गडरिये के लड़के को काफी प्रलोभन देकर चित्राल लाया गया, पर वह वज्रमूर्ख और भयभीत भी था। वह अपनी मातृभाषा ही जानता था। संयोग से एक शेख मिल गए जो गडरिये की और चित्राल की भाषा जानते थे, उनके सहयोग से 'कथा' का अनुवाद हो सका। पर अनुवाद की भाषा शुद्ध है यह निश्चय नहीं हो पाया। प्रत्येक बोली की परीक्षा करने के बाद ही उसके एक अथवा अनेक उदाहरण प्रकाशन के लिए चुने जाते थे। इन नमूनों से ही व्याकरण तथा अन्य विशेषताओं की संक्षिप्त रूप रेखा तैयार की जाती थी। इसके बाद बोलियों का भाषाओं के अन्तर्गत वर्गीकरण किया जाता था और प्रत्येक भाषा के सम्बन्ध में एक विस्तृत भूमिका दी जाती थी, जिसमें उसके बोलनेवालों की संख्या तथा स्वभाव आदि, प्रत्येक बोली की विशेषताएं तथा अन्य बोलियों से उसका सम्बन्ध, भाषा का प्राचीन इतिहास और अन्य भाषाओं के साथ उसके सम्बन्ध का भी उल्लेख किया जाता था। इसके साथ ही यदि उस बोली में साहित्य हो तो उसका विवरण तथा उसमें उपलब्ध ग्रन्थों की पूर्व सूची एवं उसके व्याकरण की संक्षिप्त रूपरेखा भी दी जाती थी।

तथ्यों का संग्रह

सर्वेक्षण के कार्यों को सम्पन्न करते समय इस बात पर सदैव विशेष ध्यान दिया गया कि जो भी परिणाम निकलें वे सिद्धान्त रूप में न हों, अपितु वे तथ्यों का संग्रह हों। इसके लिए भाषा को किसी न किसी क्रम में रखना पड़ा और तब उनके वर्गीकरण की आवश्यकता हुई।

इसके बाद सिद्धान्तों का सहारा लेकर उनका पारस्परिक सम्बन्ध निर्धारित करना पड़ा पर सर्वेक्षण को भाषाशास्त्र का विश्वकोष बनाने का उद्देश्य नहीं था। (यद्यपि भाषा विज्ञानियों ने ग्रियर्सन के सर्वेक्षण का भरपूर उपयोग किया है—लेखक)।

सर्वेक्षण का कार्य करते समय यह कठिनाई हुई कि वास्तव में एक कथित

भाषा स्वतन्त्र भाषा है अथवा अन्य भाषा की बोली है—इसका निर्णय करना कठिन है। भाषा और बोली में इतना ही सम्बन्ध है जो पहाड़ और पहाड़ी में है। किन्तु इन दोनों की विभाजक रेखा खींचना कठिन है। कई बोलियाँ अँग्रेज़ी की भाँति विश्लेषणात्मक हैं किन्तु अन्य जर्मन की भाँति संश्लेषणात्मक हैं। इनमें से कुछ का व्याकरण अत्यन्त सरल है किन्तु कुछ ऐसी हैं जिनका व्याकरण जटिल है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से इन सभी बोलियों को एक भाषा विशेष की बोली मानना वैसा ही असंगत है जैसा जर्मन भाषा को अँग्रेज़ी की बोली मानना। सर्वेक्षण में प्रत्येक बोली को जिनका व्याकरण एक दूसरे से भिन्न है स्वतन्त्र भाषा के रूप में स्वीकार किया गया। बोलियों अथवा भाषाओं में भेद केवल पारस्परिक वार्ता सम्बन्ध पर ही निर्भर नहीं करता। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्यों को भी दृष्टि में रखना आवश्यक है। सर्वप्रथम उनके व्याकरणिक गठन को दृष्टि में रखना होगा। भेदकरण को प्रभावित करनेवाला एक तथ्य और है और वह है जातीयता। असमिया भाषा को लोग स्वतन्त्र भाषा मानते हैं पर यदि इसके व्याकरणिक रूपों एवं शब्द-समूह पर विचार किया जाय तो इसे बंगला की एक बोली मानना होगा। फिर भी इस बात से कोई इन्कार नहीं करता कि असमिया एक स्वतन्त्र भाषा है। बोधगम्यता से भाषा-परिवार स्थिर नहीं होता। व्याकरण रूप, जातीयता और साहित्य की दृष्टि से भी अन्तर देखा जाना चाहिए।

परिशिष्ट

परिशिष्ट 'क'

कोश

हिंदी-पद्य रूपी कोश

हिंदी मे संस्कृत कोशो के अनुकरण पर कोशो का निर्माण मध्यकाल मे पद्य रूप म हुआ। उन सात कोशो के नाम नीचे दिए जाते हैं—

(1) अनेकार्थमंजरी नन्ददास
(2) अनभ प्रबोध गरीबदास (1616 ई०)
कर्णाभरण (1781 ई०) हरचरणदास
(3) अल्लाखुदाई (1688 ई०)
(4) खालिक बारी (1) अमीर खुसरो
(5) तुहफ्तुल हिन्द मिर्जा खाँ
(6) भाषा चातुमाला (1) लजित
(7) भाषा शब्द सिंधु (1713 ई०)
(8) डिंगलकोश।

ब्रिटिश कम्पनी-काल मे प्रकाशित कोश

(1) हाब्सन-जाबसन—कनल हेनरी यूले और ए० सी० बर्नेल
(2) डिक्शनरी ऑव मुहम्मडन ला—एस० रूसो
(3) ग्लासरी ऑव इंडियन टर्म्स—(1842) प्रो० विलसन
(4) सप्लीमेंट टू दी ग्लासरी ऑफ इंडियन टर्म्स—(1869) इलियट
(5) मोर्लेज एनालिटिकल डायजेस्ट—ग्लासरी ऑव नेटिव टर्म्स (1850)
(6) जिला डिक्शनरी—(1852) (चार्ल्स ब्राउन)
(7) ग्लासरी ऑव जूडीशियल एण्ड रेवेन्यू टर्म्स—(1855)
(8) कचहरी टेकनिकल्टीज—(1877, पोडक बानगी)
(9) ग्लासरी ऑव इंडियन टर्म्स—1877
(10) ग्लासरी आव रिफ़रेंस—(1878 एच० ए० गाईल्स)
(11) ग्लासरी ऑव वर्नाक्यूलर टर्म्स—1879
(12) एंग्लो इण्डियन डिक्शनरी—1885 जार्ज क्लिफर्ड

(10) Vocabulary English Hindustani Dictionary—हैजेल ग्रीव
(11) The New English Hindi Dictionary—डॉ० सूर्यकान्त
(12) Twentieth Century English Hindi Dictionary—सुखसम्पत्तिराय भण्डारी
(13) English Hindi Vocabulary of General Psychology—पी० विद्यार्थी
(14) English Arabic, Persian, Sanskrit Vocabulary—पीटर ब्रीटन

साहित्य तथा विविध विषय सम्बन्धी कोश

(1) साहित्य कोश (भाग 1)
(2) साहित्य काश (भाग 2) } सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा
(3) साहित्यिक शब्दावली—डा० प्रेमनारायण टडन
(4) साहित्यशास्त्र पारिभाषिक शब्द कोश—राजेन्द्र द्विवेदी
(5) हिन्दी उपन्यास कोश—गोपाल राय
(6) पुराण सन्दर्भ कोश—मेनन
(7) हिन्दी विश्वकोश (बारह भाग)—काशी नागरी प्रचारिणी सभा
(8) साहित्य समीक्षा कोष—केन्द्रीय हिन्दी तकनीकी आयोग प्रकाशन
(9) मानविकी पारिभाषिक कोश—डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित
(10) मानविकी पारिभाषिक कोश (दर्शन)—नरवणे

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित कोश

(1) मानविकी शब्दावली (i)—इतिहास, पुरातत्व और राजनीतिशास्त्र
(2) मानविकी शब्दावली (ii)—दर्शन, मनोविज्ञान शिक्षा
(3) मानविकी शब्दावली (iii)—समाज विज्ञान समाज मनोविज्ञान और समाज कार्य
(4) मानविकी शब्दावली (i)—दर्शन, मनोविज्ञान, शिक्षा
(5) मानविकी शब्दावली—भाषा विज्ञान
(6) आयुर्विज्ञान शब्दावली (i ii)
(7) इंजीनियरिंग शब्दावली—भाग 1 2, 3, मुख्य यान्त्रिकी, द्रव-यान्त्रिकी, रेल इंजीनियरिंग, सिंचाई-इंजीनियरी

(8) विज्ञान शब्दावली—अंग्रेजी हिन्दी
(9) विज्ञान शब्दावली—हिन्दी-अंग्रेजी
(10) कृषि शब्दावली—भाग 1
(11) वाणिज्य शब्दावली—भाग 1 (अंग्रेजी हिन्दी)

इंग्लिश हिन्दी कोश के अतिरिक्त अन्य भाषा-कोश

(1) मलयाल्म हिन्दी व्यावहारिक कोश—न० ई० विश्वनाथ अय्यर
(2) रूसी हिन्दी-कोश—ब्रस्कोव्नी (मास्को)
(3) उर्दू हिन्दी शब्दकोश—रामचन्द्र वर्मा
(4) उर्दू हिन्दी शब्दकोश—मुहम्मद मुस्तफा खाँ मदार, 'अहमक'
(5) बंगला हिन्दी शब्दकोश—गोपालचन्द्र चक्रवर्ती
(6) हिन्दी तलुगु कोश—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
(7) हिन्दी मलयाल्म कोश
(8) हिन्दी कन्नड-कोश
(9) हिन्दी-तमिल-कोश—नेनो तथा जोशी
(10) हिन्दी मराठी-कोश—श्री कृष्णलाल वर्मा
(11) हिन्दी तलुगु-कोश (शब्द सिन्धु)—स० सा गि सत्यनारायण
(12) अल्फाज ए फारसी औ हिन्दी—हिन्दुस्तानी प्रस कलकत्ता
(13) रूसी हिन्दी कोश—वीर राजेन्द्र ऋषि

विविध कोश

(1) ए सस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी—मोनियर विलियम्स
(2) इंग्लिश सस्कृत डिक्शनरी—मोनियर विलियम्स
(3) सस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी (भाग 1 2, 3)—प्रिंसिपल वी० एस० आप्टे
(4) वाङ्मयार्णव—प० रामावतार शर्मा
(5) हलायुध कोश (अभिधान रत्नमाला)—सपा० जयशकर जोशी
(6) प्रेक्टिकल हिन्दी इंग्लिश डिक्शनरी—महेन्द्र चतुर्वेदी
(7) भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोश—सिद्धश्वरी शास्त्री चित्राव
(8) विधि शब्दावली—राजभाषा आयोग, भारत सरकार नई दिल्ली
(9) मीमासा कोश (भाग 1 6)—केवलानन्द सरस्वती
(10) राजस्थानी शब्दकोश (खण्ड 1 5)—सीताराम लालस
(11) वाचस्पत्यम् (भाग 1 6)—तारानाथ तर्कवाचस्पति
(12) भारतीय व्यवहार कोश—विश्वनाथ दिनकर नरवण

(13) नेपाली डिक्शनरी कम्परेटिव एण्ड एटिमालाजिकल डिक्शनरी ऑव द नेपाली लैंग्वेज—सपा० डोरोथी, आर० टनर
(14) शिक्षा विनान कोश—सीताराम जायसवाल
(15) शब्दार्थक ज्ञान कोश—रामचन्द्र वर्मा
(16) कहावत-कल्पद्रुम—दर्यावसिंह (1897 म प्रकाशित)
(17) हिन्दी मुहावरा कोश—डा० भोलानाथ तिवारी
(18) क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू माइथालोजी एण्ड रिलीजन, जाग्रफी हिस्ट्री एण्ड लिट्रेचर—जान डॉसन
(19) नीति-सूक्ति-कोश—डॉ० रामसहाय
(20) *राजनीतिकोश—सुभाष काश्यप एव विष्णुप्रसाद गुप्त*
(21) शब्दार्थ दशन—रामचन्द्र वर्मा
(22) भापाशास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश—राजेन्द्र द्विवेदी
(23) भाषाविनान-कोश— डॉ० भोलानाथ तिवारी
(24) कहावत-कोश—डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र
(25) भारतीय चरिताम्बुधि कोश—चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

कवि-कोश

हिन्दी के कवियो ने अपनी रचनाओ म जिन शब्दो का प्रयोग किया है *उनके भी कोश प्रकाशित हो रहे हैं। नीचे कुछ कोशो के नाम दिये जाते हैं—*

(1) तुलसी शब्द-सागर
(2) ब्रजभाषा सूर-कोश—प्रेमनारायण टडन
(3) प्रसाद साहित्य-कोश (बाहरी)
(4) प्रसाद-काव्य कोश—सुधाकर पाण्डे
(5) निराला शब्दकोश—नलिन
(6) कामायनी की पारिभाषिक शब्दावली—वेदन आर्य
(7) वाल्मीकि रामायण-कोश—रामकुमार राय
(8) महाभारत कोश—रामकुमार राय

परिशिष्ट 'ख'

लोक साहित्य सन्दभ ग्रन्थ-सूची

आयर डब्ल्यू० जे० तथा सक्टाप्रसाद भोजपुरी ग्राम्यगीत
आनन्द प्रकाश जैन तेलगाना की लोक-कथा
ईश्वर बराल नेपाली और उसका साहित्य
उदयनारायण तिवारी भोजपुरी भाषा और उसका साहित्य
उमाशंकर शुक्ल बुन्देलखण्ड के लोक गीत
उमेश मिश्र मथिली और उसका साहित्य
कन्हैयालाल सहल राजस्थानी कहावतें
कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोकगीत
कृष्णदेव उपाध्याय लोक साहित्य की भूमिका
कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी और साहित्य
कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन
कृष्णलाल 'हस निमाडी लोक-कथा भाग 1 2
कृष्णानन्द गुप्त ईसुरी की फागें
गोपालकृष्ण कौल अवध की लोक कथाएँ
गोविन्द चातक नेपाल की लोक-कथाए
गिरधारीलाल शर्मा राजस्थानी प्राचीन गीत
चन्द्रकुमार अग्रवाल छत्तीसगढ की लोक-कथाए
चिन्तामणि उपाध्याय मालवी लोक गीत
चिन्तामणि उपाध्याय मालवी भाषा एक शास्त्रीय अध्ययन
जगदीश चतुर्वेदी बघेली लोक-साहित्य
जगन्नाथ शर्मा आबू की लोक-कथाएँ
जगन्नाथ शर्मा जमनी की लोक कथाएँ
जगन्नाथ शर्मा काजल रेखा
जगदीश त्रिगुणायत बाँसुरी बज रही और उसका साहित्य
जनक अरविन्द भारत के आदिवासी
तजकुमार कालिदास की लोक-कथाएँ
तजकुमार विक्रम की लोक-कथाएँ

तेजकुमार ग्रामीण कहावतें
तेजकुमार मध्यप्रदेश की लोक-कथाएँ
तेजकुमार मालवी लोक-कथाएँ
दुर्गाप्रसादसिंह भोजपुरी लोकगीतों मे करुण रस
देवीलाल परमार राजस्थानी लोक-कला 1 3 भाग
देवीलाल परमार राजस्थानी लोक सगीत
देवीलाल परमार राजस्थानी लोकानुरजन
देवीलाल परमार राजस्थान के लोक नृत्य
देवेन्द्र सत्यार्थी बाजत आवे ढोल
देवेन्द्र सत्यार्थी चट्टान से पूछ लो
देवेन्द्र सत्यार्थी क्या गोरी, क्या सावरी
देवेन्द्र सत्यार्थी धीरे वहो गगा
देवेन्द्र सत्यार्थी धरती गाती है
देवेन्द्र सत्यार्थी बेला फूले आधी रात
देवेन्द्र सत्यार्थी 'आजकल' का 'आदिवासी अक'
देवेन्द्र सत्यार्थी 'आजकल' का 'लोक-कथा अक'
द्रोणवीर कोहली लोककथाएँ
नरेन्द्र धीर मैं धरती पजाव की
नरेन्द्र धीर धरती मेरी बोलती
नरेन्द्र धीर लोक साहित्य पर्यवेक्षण
नरोत्तमदास स्वामी राजस्थान
नन्दलाल चत्ता कश्मीर की लोक कथाएँ
नन्दलाल चत्ता मनोरजक लोक-कथाएँ
नन्दलाल चत्ता केसर-क्यारी
प्यारेलाल उज्जैन की लोक-कथाएँ
प्यारेलाल सिंध की लोक-कथाएँ
प्यारेलाल विदर्भ की लोक कथाएँ
पुरुषोत्तम मेनारिया राजस्थान की लोक कथाएँ
प्रवासीलाल वर्मा सौराष्ट्र की लोक कथाएँ
प्रीतमसिंह पछी पजाव की लोक-कथाएँ
वशीलाल डोगरी लोक-कथा
बसन्तलाल मालवी की लोक कथाएँ
भगवतीप्रसाद शुक्ल वघेलखण्डी लोक साहित्य
मन्मथनाथ गुप्त बगाल की लोक-कथाएँ

माधव स्वर्ग पर चढ़ाई
महेन्द्र मित्तल ग्राम लोक कथाएँ
महेन्द्र मित्तल पूर्वी भारत की लोक-कथाएँ
माताप्रसाद गुप्त मुल्ला दाऊद की लोक कथा
रमेश मटियानी कुमाऊँ की लोक-कथाएँ
रतनलाल मेहता मालवी कहावत
रमेशचन्द्र प्रेम बर्मा की लोक कथाएँ
रहबर जापान की लोक कथाएँ
रहबर चीन की लोक कथाए
रहबर रूस की लोक कथाएँ
राधावल्लभ शर्मा मगही संस्कार गीत
रामइकबाल सिंह मैथिली लोक गीत
रामकिशोरी श्रीवास्तव हिन्दी लोक गीत
रामनरेश त्रिपाठी मारवाड़ के मनोहर गीत
रामनरेश त्रिपाठी कविता-कौमुदी, भाग 5
रामनरेश त्रिपाठी कविता-कौमुदी ग्रामगीत
रामनरेश त्रिपाठी हमारा ग्राम साहित्य
रामनरेश त्रिपाठी ग्राम साहित्य, भाग 1, 2, 3
रामनरेश त्रिपाठी मोरी धरती मया
रामनरेश त्रिपाठी बघेलखण्डी और बुन्देलखण्डी कहावतें
श्रीकान्त व्यास महाराष्ट्र की लोक कथाएँ
श्रीकान्त व्यास गुजरात की लोक कथाएँ
श्रीकान्त व्यास आसाम की लोक-कथाएँ
श्रीकृष्ण और रमेशकुमार तिब्बत की लोक-कथाएँ
श्रीकृष्णदास हमारी नाट्य-परम्परा
सन्तराम पंजाबी गीत
सन्तराम वत्स्य हिमाचल की लोक-कथाएँ
सन्तराम वत्स्य बाहर कहाँ खोजे बन्दे
सावित्रीदेवी वर्मा उत्तर भारत की लोक-कथाएँ
सत्यप्रिय शान्त मुलतानी लोक कथाएँ
सत्यव्रत सिन्हा भोजपुरी लोक गाथा
डॉ॰ सत्येन्द्र ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन
डॉ॰ सत्येन्द्र ब्रज की लोक-कहानियाँ
कन्हैयालाल मुंशी जाहर पीर गुग्गा

कन्हैयालाल मुन्शी ब्रज लोक संस्कृति
सूर्यकरण पारिख राजस्थानी लोक गीत

अंग्रेजी में लोक-साहित्य

अबाट जे० दी कीज आव पावर
विनयकुमार सरकार फोक एलीमेंटस इन हिन्दू कल्चर
क्रिश्चियन जे० बिहार प्रावस ऐन इंट्रोडक्शन टू फोकलोर
डे० एल० बी बंगाल पीजेण्ट लाइफ
डेसल्ड ए० पेक्मर्डी इण्डिया मीथ एण्ड लीजेण्ट
एलविन सांग्ज ऑव फारेस्ट
एलविन फोक सांग्ज आव माइकल हिल्स
एलविन फोक टेल्स आव महाकोशल
एलविन फोक टेल्स आव छत्तीसगढ
एलविन लीज्ज फ्रॉम दी जंगल
गांगुली फोक टेल्स आव इण्डिया
ग्रियर्सन बिहार पीजेण्ट लाइफ
ग्रियर्सन मरिया गोंड आव बस्तर
हिस्लाप एस० पेपर्स रिलेटिंग टू दि एबोरिजिनल ट्राइब्ज आव सेंटल प्राविंसेज
मिनाइव जे० पी० कण्टेंपोरेरी इण्डियन फोकलोर
नरेन्द्र धीर क्लासिफिकेशन ऑव पंजाबी फोकलोर
पटेल एम० बी० सम एस्पोटस आव गुजराती फोक सांग
दुनीच द शर्मा देवर भाभी इन कांगडा फोक सांग
थर्सटन ओमेन्स एंड सुपरस्टिशन्स आव सदर्न इण्डिया

परिशिष्ट 'ग'

पाठालोचित प्रमुख ग्रन्थ-सूची

अपभ्रंश ग्रन्थ (जिनमें हिन्दी के विकास का आभास मिलता है।)

1 कीर्तिलता (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) डॉ० बाबूराम सक्सेना
2 पाहुड दोहा (जैन ग्रन्थमाला करंजा) डा० हीरालाल जैन
3 प्राकृत पैंगलम्
4 दोहा कोश बागची
5 सन्देश रासक श्री मुनि जिनविजय
6 सन्देश रासक डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
7 हिन्दी काव्यधारा राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी ग्रन्थ

1 अर्धकथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त
2 अर्धकथानक श्री नाथूराम प्रेमी
3 अक्षर अनन्य की प्रेमदीपिका लाला सीताराम
4 अक्षर अनन्य अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव
5 आलम केलि लाला भगवानदीन
6 अनुराग बाँसुरी चन्द्रबली पाण्डेय
7 इन्द्रावती डा० श्यामसुन्दर दास
8 कबीर-सागर वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
9 कबीर-वचनावली हरिऔध
10 कबीर वचनावली डा० श्यामसुन्दर दास
11 कबीर ग्रन्थावली पारसनाथ तिवारी
12 कबीर तथा कबीर पदावली डॉ० रामकुमार वर्मा
13 केशव-ग्रन्थावली प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
14 घनानन्द विश्वनाथप्रसाद मिश्र
15 घनानन्द का सुजान शतक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
16 (रसखान और) घनानन्द नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
17 चन्द्रसखी-पदावली श्रीमहावीरसिंह गहलोत

18 चन्द्रसखी और उनका काव्य श्रीमती शबनम
19 चन्द्रसखी की जीवनी और भजन प्रभुदयाल मीतल
20 चन्द्रसखी के भजन और लोकगीत प्रभुदयाल मीतल
21 चतुर्भुजदास विद्या विभाग, काँकरौली प्रकाशन
22 छीत स्वामी विद्या विभाग काँकरौली प्रकाशन
23 ठाकुर ठसक लाला भगवानदीन
24 तानसेन और उनका काव्य नर्मदेश्वर चतुर्वेदी
25 दीनदयाल गिरि-ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा काशी
26 दूलह-कविकुल-कण्ठाभरण मिश्रबन्धु
27 देवसुधा मिश्रबन्धु
28 देव-ग्रन्थावली मिश्रबन्धु
29 देवकृत भावविलास भारतजीवन प्रेस, काशी
30 देवकृत अष्टयाम भारतजीवन प्रेस, काशी
31 देवदर्शन इण्डियन प्रेस, प्रयाग
32 नन्ददास (भाग 1, 2) प० उमाशंकर शुक्ल
33 नन्ददास-ग्रन्थावली श्री ब्रजरत्नदास
34 नागरीदास नागर समुच्चय ज्ञानसागर छापाखाना, बम्बई
35 नरोत्तमदास कृत सुदामाचरित प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
36 पद्मावत-सजीवन भाष्य वासुदेवशरण अग्रवाल
37 पद्मावत नवलकिशोर प्रेस लखनऊ
38 पद्मावत चन्द्रप्रभा प्रेस, वाराणसी
39 पद्मावत मौल्वी अली हसन
40 पद्मावत शेख अहमद अली
41 पल्टूदास-ग्रन्थावली हरिमोहन मालवीय
42 पदावली (विद्यापति) स० रामवृक्ष बेनीपुरी
43 पदावली (विद्यापति) मित्र' और मजूमदार
44 पदावली (मीराँ) विष्णुकुमार 'मंजु
45 पदावली (मीराँ) प० परशुराम चतुर्वेदी
46 पजनेश प्रकाश नकछेदी तिवारी
47 पद्माकर-पचामृत प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
48 पद्माकर प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
49 परमानन्द सागर विद्या विभाग, काँकरौली (राजस्थान)
50 परमानन्द-सागर गोवर्धनदास शुक्ल
51 पृथ्वीराज रासो रॉयल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता

52 पृथ्वीराज रासो ई० जे० लाजरस एण्ड कम्पनी, वाराणसी
53 पृथ्वीराज रासो नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी
54 संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा नामवरसिंह
55 पृथ्वीराज रासो (लघु संस्करण) डॉ० बी० पी० शर्मा
56 पृथ्वीराज रासो साहित्य सदन चिरगाँव
57 पृथ्वीराज रासो के दो समय डॉ० भगीरथ मिश्र
58 भक्त कवि व्यासजी श्री वासुदेव गोस्वामी
59 भाषा भूषण जसवंतसिंह (काशी विज्ञान काशी)
60 भिखारीदास ग्रन्थावली मिश्रबन्धु
61 भक्तमाल प० रघुबर शर्मा
62 भक्तमाल श्री सीताराम शर्मा
63 भक्तमाल नवलकिशोर प्रेस
64 मलूकदास ग्रन्थावली हरिमोहन मालवीय
65 मधुमालती डॉ० जयगोपाल मिश्र
66 मधुमालती डॉ० माताप्रसाद गुप्त
67 माधवानल काम-कन्दला हिन्दुस्तानी एकाडमी, प्रयाग
68 रामचरितमानस इण्डियन प्रेस, प्रयाग
69 रामचरितमानस बंगवासी प्रेस कलकत्ता
70 रामचरितमानस भारती भण्डार प्रयाग
71 रामचरितमानस गीता प्रेस गोरखपुर
72 रामचरितमानस बल्वेडियर प्रेस, प्रयाग
73 रामचरितमानस खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर (डॉ० ग्रियर्सन)
74 रामचरितमानस भागवतप्रसाद खत्री
75 रामचरितमानस डॉ० माताप्रसाद गुप्त
76 रामचरितमानस काशिराज संस्करण (प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र)
77 तुलसी ग्रन्थावली हिन्दुस्तानी एकाडमी, प्रयाग
78 तुलसी-ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (प० रामचन्द्र शुक्ल)
79 रसलीन का रस प्रबोध नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
80 रसलीन का अंग दर्पण नकछेदी तिवारी
81 रसखान और उनका काव्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
82 रसखानि प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
83 रामचन्द्रिका नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
84 लखनसेन पद्मावती कथा नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

85 बीसलदेव रासो नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
86 बीसलदेव रासो हिन्दी परिषद प्रयाग
87 सेनापति का कवित्त रत्नाकर प० उमाशंकर शुक्ल
88 सतसई (बिहारी) डॉ० ग्रियसन
89 सतसई (बिहारी) भारतजीवन प्रेस, काशी
90 सतसई (बिहारी) स्व० प० पद्मसिंह शर्मा
91 बिहारी-बोधनी लाला भगवानदीन
92 बिहारी रत्नाकर जगन्नाथप्रसाद रत्नाकर
93 सूरसागर नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
94 सूरसागर वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
95 सूरसागर नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
96 (क) सूरसागर गो० व्रजभूषण शर्मा
(ख) सूरसागर के० एम० हिन्दी संस्थान, आगरा विश्वविद्यालय
97 सूरसारावली कृष्णानन्द व्यासदेव
98 सूर सारावली प्रभुदयाल मीतल
99 सूर सारावली डॉ० प्रेमनारायण टण्डन
100 साहित्य-लहरी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
101 सुन्दर सार नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
102 सुन्दर सार प० हरिनारायण शर्मा
103 सुन्दर-ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
104 सुन्दर-ग्रन्थावली हरिनारायण शर्मा
105 हित हरिवंश का हित सुधासागर श्री नारायणदास
106 हरिराम व्यास की व्यासवाणी राधाकिशोर गोस्वामी
107 कृपाराम की हिततरंगिणी जगन्नाथदास रत्नाकर
108 कवित्तरत्नाकर (सेनापति) प० उमाशंकर शुक्ल
109 गोरखवाणी डा० बड्थ्वाल
110 जायसी-ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
111 जायसी-ग्रन्थावली हिन्दुस्तानी एकाडमी, प्रयाग
112 चित्ररेखा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी
113 चित्ररेखा श्री शिवसहाय पाठक
114 जायसी ग्रन्थावली लूजक एण्ड कम्पनी, लन्दन—(डॉ० लक्ष्मीधर)
115 बृजनिधि ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
116 वेलिकिशन रुक्मिणी री रामसिंह तथा पारिख

117 बेलिकिशन रुक्मिणी री विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी—
(आन दप्रकाश दीक्षित)
118 ढोला मारू रा दोहा नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
119 दादू ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
120 दादूदयाल प० परशुराम चतुर्वेदी
121 दादू ज्ञान प्रबोधिनी स्वामी जीवान द
122 टीका सहित अनभवाणी आन द भिक्षु
123 दादूदयाल की वाणी च द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी
124 दयाराम सतसई श्री अम्बाशकर नागर
125 नानक डा० जयराम मिश्र
126 रहिमन शतक लाला भगवानदीन
127 रहीम रत्नावली मायाशकर याज्ञिक
128 मीरा माधवी ब्रजरत्नदास
129 मीरा बहृत पद सग्रह सुश्री पद्मावती शबनम
130 कुम्भनदास विद्या विभाग काँकरोली

परिशिष्ट 'घ'

स्वीकृत शोध प्रबन्ध

1	लक्ष्मीधर	मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत का सटिप्पण सम्पादन और अनुवाद—16 वीं शताब्दी की हिन्दी भाषा (अवधी) का अध्ययन
2	लक्ष्मीधर शास्त्री	ऋषि बरकत उल्लाह प्रेमी के 'प्रेम प्रकाश का अनुसधान सम्पादन और अध्ययन
3	पारसनाथ तिवारी	कबीर की कृतियो के पाठ और समस्याओ का आलोचनात्मक अध्ययन
4	वणीप्रसाद शर्मा	'पृथ्वीराज रासो के लघुतम सस्करण का अध्ययन और उसके पाठ का आलोचनात्मक सम्पादन
5	तारकनाथ अग्रवाल	बीसलदेव रास-पाठ, अध्ययन एव विवेचन
6	लक्ष्मीधर मालवीय	देव के लक्षण-ग्रन्थो का पाठ तथा तत्सम्बन्धी पाठालोचन की समस्याएँ
7	मोहिउद्दीन कादरी	हिन्दुस्तानी ध्वनियो का अनुसधान
8	नानकशरण निगम	हिन्दी भाषा का ध्वनिमूलक अनुसधान
✓9	उमा माडवेल	हिन्दी म शब्द और अर्थ का मनोवैज्ञानिक अध्ययन
✓10	हरदेव बाहरी	हिन्दी अर्थ विज्ञान
✓11	शिवनाथ	हिन्दी-अर्थ विचार
–12	ओमप्रकाश गुप्त	हिन्दी मुहावरे
✓13	रामचन्द्र राय	राजस्थान के हिन्दी-अभिलेखो (सन 1150-1750) का पुरालिपि सम्बन्धी (पैलियोग्राफिकल) और भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
14	डी० एन० श्रीवास्तव	आरम्भिक हिन्दी गद्य का ऐतिहासिक वाक्य-विचार

15	रघुवीरशरण	हिन्दी भाषा का रूप-वैज्ञानिक तथा वाक्य वैज्ञानिक अध्ययन
16	एम० एल० उप्रति	हिन्दी म प्रत्यय विचार
17	केशवराम पाल	हिन्दी म प्रयुक्त सस्कृत शब्दो का अर्थ वैज्ञानिक अध्ययन (सस्कृत विभाग)
18	बाँकेलाल उपाध्याय	सस्कृतमूलक हिन्दी गणिनीय शब्दावली का ऐतिहासिक, सास्कृतिक तथा भाषाशास्त्रीय अध्ययन
19	रामसिंह	कृषि तथा ग्रामोद्योग की शब्दावली—एक अध्ययन
20	शिवनन्दन	परिनिष्ठित हिन्दी म प्रयुक्त सस्कृत शब्दो का अर्थ-परिवर्तन
21	कैलाशचन्द्र भाटिया	हिन्दी म अँग्रेजी के आगत शब्दो का भाषा-तात्त्विक अध्ययन
22	बाबूराम सक्सेना	अवधी का विकास
23	देवीशकर द्विवेदी	बसवाडी का शब्द सामर्थ्य
24	अमरबहादुरसिंह	अवधी और भोजपुरी के सीमा प्रदेश की बोली का अध्ययन
25	धीरेन्द्र वर्मा	ब्रजभाषा
26	शिवप्रसादसिंह	सूरपूर्व ब्रजभाषा (और उसका साहित्य)
27	कनिका विश्वास	ब्रजबुली (ब्रजभाषा और ब्रजबुली का तुलनात्मक अध्ययन)
28	कपिलदेव सिंह	गत सौ वर्षों म कविता के माध्यम के लिए ब्रजभाषा-खडीबोली सम्बन्धी विवाद की रूपरेखा
29	गेंदालाल शर्मा	ब्रजभाषा और खडीबोली के व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन
30	सितकठ मिश्र	खडीबोली का आन्दोलन
31	हरिश्चन्द्र शर्मा	खडीबोली (बोली रूप) के विकास का अध्ययन
32	श्रीराम शर्मा	दक्खिनी का रूप विन्यास
33	उदयनारायण तिवारी	भोजपुरी भाषा की उत्पत्ति और विकास
34	विश्वनाथप्रसाद	भोजपुरी ध्वनियो और ध्वनि प्रक्रिया का अध्ययन

35	नलिनीमोहन सान्याल	बिहारी भाषाओ की उत्पत्ति और विकास
36	सुभद्र झा	मैथिली भाषा का विकास
37	हीरालाल माहेश्वरी	राजस्थानी भाषा और साहित्य (11वी से 16वी शती)
38	कन्हैयालाल सहल	राजस्थानी कहावतो की गवेषणा और वैज्ञानिक अध्ययन
39	शकरलाल शर्मा	कन्नौजी बोली का अनुशीलन तथा ठेठ व्रज से तुलना
40	सी० वी० रावत	मथुरा जिले की बोलियाँ
41	गुणानन्द जुयाल	मध्य पहाडी भाषा (गढवाली कुमाऊँनी) का अनुशीलन और उसका हिन्दी से सम्बन्ध
42	जनार्दनप्रसाद काला	गढवाली भाषा और उसका साहित्य
43	हरिदत्त भट्ट	गढवाली का शब्द-सामर्थ्य
44	गोविन्द सिंह कन्दारी	गढवाली बोली की रावल्टी उपबोली उसके लोकगीत और उसमे अभिव्यक्त लोकसस्कृति
45	मोहनलाल शर्मा	खुरपल्टी पदरूपाश तथा वाक्य
46	जगदेवसिंह	बागरू भाषा का वर्णनात्मक व्याकरण
47	रामस्वरूप चतुर्वेदी	आगरा जिले की बोली का अध्ययन
48	शालिग्राम शर्मा	इलाहाबाद जिले की कृषि सम्बन्धी शब्दावली का अध्ययन
49	कृष्णलाल हस	निमाडी और उसका लोक-साहित्य
50	रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल	बुन्देली भाषा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
51	भालचन्द्र राव तैलग	भारतीय आर्यभाषा परिवार की मध्यवर्तिनी बोलियाँ (छत्तीसगढी, हल्बी, भतरी)
52	हरिहरप्रसाद गुप्त	आजमगढ जिले की फूलपुर तहसील के आधार पर भारतीय ग्रामोद्योग सम्बन्धी शब्दावली का अध्ययन
53	अम्बाप्रसाद 'सुमन'	कृषक-जीवन-सम्बन्धी शब्दावली (अलीगढ क्षेत्र की बोली के आधार पर)
54	विद्याभूषण विभु	हिन्दी प्रदेश के हिन्दू पुरुषो के नामो का अध्ययन
55	नामवरसिंह	रासो की भाषा

98	भाग्यवती सिंह	तुलसी की काव्यकला
99	वचनदेव कुमार	तुलसी के भक्त्यात्मक गीत
100	नरेन्द्रकुमार	तुलसीदास के काव्य में अलंकार-योजना
101	रघुराजशरण शर्मा	तुलसीदास और भारतीय संस्कृति
102	राजाराम रस्तोगी	तुलसीदास—जीवनी और विचारधारा
103	जे० एन० कार्पेण्टर	तुलसीदास का धर्मदर्शन
104	बल्देवप्रसाद मिश्र	तुलसी दर्शन
105	रामदत्त भारद्वाज	तुलसी दर्शन (दर्शन विभाग)
106	उदयभानुसिंह	तुलसी दर्शन मीमांसा
107	विष्णुशर्मा मिश्र	तुलसी का सामाजिक दर्शन
108	महेशप्रसाद चतुर्वेदी	तुलसी का समाज-दर्शन
109	बी० डी० पाण्डेय	रामचरितमानस की अन्तर्कथाओं का आलोचनात्मक अध्ययन
110	राजकुमार पाण्डेय	रामचरितमानस का शास्त्रीय अध्ययन
111	सी० वोल्वील	रामचरितमानस के स्रोत और रचनाक्रम
112	सीताराम कपूर	रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत
113	विजयबहादुर अवस्थी	रामचरितमानस पर पौराणिक प्रभाव
114	शम्भूलाल शर्मा	रामचरितमानस के विशिष्ट सन्दर्भ में तुलसीदास का शिक्षा-दर्शन
115	लुइजि पिओ तस्सितोरी	रामचरितमानस और रामायण का तुलनात्मक अध्ययन
116	विद्या मिश्र	वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन
117	रामप्रकाश अग्रवाल	वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस का साहित्यिक दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन
118	शिवकुमार शुक्ल	रामायणेतर संस्कृत काव्य और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन
119	रामनाथ त्रिपाठी	कृत्तिवासी बंगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन
120	कमलमाया माइन्दन	महाकवि भानुभक्त की नेपाली रामायण और गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन

121	सु० शकर राजू नायडू	कम्ब रामायणम और तुलसी रामायण का तुलनात्मक अध्ययन
122	ओमप्रकाश दीक्षित	जैनकवि स्वयभु के 'पउमचरिउ' (अपभ्रश) तथा तुलसीकृत रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन
123	अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	तुलसी के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण
124	जगदीशनारायण	रामचरितमानस और रामचन्द्रिका का तुलनात्मक अध्ययन
125	एम० जाज	तुलसीदास और रामभक्ति सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मलयालम कवि एडुतच्छन का तुलनात्मक अध्ययन
126	मोहनराम यादव	रामलीला की उत्पत्ति तथा विकास (विशेषत मानस की रामलीला)
127	धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी	बिहार के सन्तकवि दरिया साहब
128	धमपाल अष्टा	दशम ग्रन्थ का कवित्व
129	रतनसिंह	दशम ग्रन्थ में पौराणिक रचनाओ का आलोचनात्मक अध्ययन
130	नगेन्द्र नगाइच	रीतिकाल की भूमिका मे देव का अध्ययन
131	अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	द्विजदेव और उनका काव्य
132	केदारनाथ दुबे	हित ध्रुवदास और उनका साहित्य
133	फैयाज अली खाँ	नागरीदास की कविता से सम्बन्धित प्रभावा एव प्रतिक्रियाओ का अध्ययन
134	व्रजनारायण सिंह	पद्माकर और उनके समसामयिक
135	रेवती सिंह	पद्माकर तथा उनके रचित ग्रन्थो का आलोचनात्मक अध्ययन
136	गोवधनलाल शुक्ल	कविवर परमानन्द और उनका साहित्य
137	श्यामशकर दीक्षित	परमानन्ददास —जीवनी और कृतिया
138	राजेश्वरप्रसाद गुरु	प्रमचन्द—एक अध्ययन (जीवन चिन्तन और कला)
139	शकरनाथ शुक्ल	उपन्यासकार प्रेमचन्द—उनकी कला, सामाजिक विचार और जीवन दशन
140	गीता लाल	प्रेमचन्द का नारी चित्रण तथा उसको प्रभावित करनेवाले स्रोत

141 महेन्द्र भटनागर — समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द (प्रेमचन्द के समस्यामूलक उपन्यास)

142 गंगा पाठक — प्रेमचन्द और रमणलाल वसन्तलाल देसाई के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन

143 भगवतीप्रसाद सिंह — उन्नीसवीं शती का रामभक्ति-साहित्य—विशेषतः महात्मा बनादास का अध्ययन

144 रवीन्द्रकुमार जैन — कविवर बनारसीदास—जीवनी और कृतित्व

145 राजेन्द्रप्रसाद शर्मा — पं० बालकृष्ण भट्ट—उनका जीवन और साहित्य

146 नत्थनसिंह — बालमुकुन्द गुप्त—उनका जीवन और साहित्य का अध्ययन

147 रामसागर त्रिपाठी — मुक्तक काव्य-परम्परा के अंतर्गत बिहारी का विशेष अध्ययन

148 गणपतिचन्द्र गुप्त — हिन्दी-काव्य में शृंगार परम्परा और बिहारी

149 नारायणदास खन्ना — आचार्य भिखारीदास

150 रामप्रसाद मिश्र — सूफी कवि मंझन और उनका काव्य

151 महेन्द्रकुमार — मतिराम—कवि और आचार्य

152 त्रिभुवनसिंह — *मध्यकालीन अलंकृत कविता और मतिराम*

153 पृथ्वीनाथ कमल कुलश्रेष्ठ — हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य—जायसी का विशेष अध्ययन

154 शिवसहाय पाठक — (मलिक मुहम्मद) जायसी और उनका काव्य

155 जयदेव कुलश्रेष्ठ — जायसी—उनकी कला और दर्शन

156 गायत्री मिश्र — पद्मावत में समाज चित्रण

157 त्रिलोकीनारायण दीक्षित — संत कवि मलूकदास

158 उदयभानुसिंह — महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग

159 [illegible] — मीराबाई

160 विमला गौड़ — मीरां के साहित्य के मूल स्रोतों का अनुसंधान

161 उमाकान्त गोयल — मैथिलीशरण गुप्त—कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता

162 कमलाकान्त पाठक — तुलसी का काव्य [illegible]

163 [illegible] वर्मा — [illegible]-साहित्य के सन्दर्भ में [illegible] का [illegible]

164 [illegible] — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—एक अध्ययन

165	रामलाल सिह	आचाय शुक्ल के समीक्षा सिद्धा त
166	अम्बादत्त प त	अपभ्रश का य परम्परा और विद्यापति
167	मुरारीलाल शर्मा	अवधी-कृष्णकाव्य की परम्परा मे भक्त-कवि लालदास और उनका काव्य
168	गोपाल व्यास	चाचा हितव दावनदास और उनका साहित्य
169	शशिभूषण सिहल	व दावनलाल वर्मा के उप यासा का आलोचनात्मक अध्ययन
170	रामच द्र मिश्र	हिन्दी के आरम्भिक स्वच्छ दतावादी काव्य और विशेषत प० श्रीधर पाठक की कृतिया का अनुशीलन
171	रामच द्र गगराडे	स तकवि सिगाजी—जीवन और कृतिया
172	त्रिलोकीनाथ सिंह	सूदन का सुजानचरित और उनकी भाषा
173	महेशच द्र सिघल	स त सु दरदास
174	व्रजेश्वर वर्मा	सूरदास—जीवनी और कृतिया का अध्ययन
175	हरवशलाल शर्मा	सूर और उनका साहित्य
176	मुशीराम शर्मा	भारतीय साधना और सूर-साहित्य
177	मनमोहन गौतम	सूर की काव्य-कला
178	जनादन मिश्र	सूरदास का धार्मिक काव्य
179	हरवशलाल शर्मा	श्रीमदभागवत और सूरदास
180	रामधन शर्मा	सूरदास के (कूट-पदो के विशिष्ट स दभ म) *कूट काव्य का अध्ययन*
181	शिवनारायण वाहरा	भारते दु हरिश्च द्र
182	वीरे द्रकुमार शुक्ल	भारते दु का नाट्य साहित्य
183	अरवि दकुमार देसाई	भारते दु और नमद—एक तुलनात्मक अध्ययन
184	रामशकर शुक्ल 'रसाल	हि दी काव्यशास्त्र का विकास
185	भगीरथ मिश्र	हिन्दी-काव्यशास्त्र का इतिहास
186	रामाधार शर्मा	हिन्दी मे सैद्धान्तिक समीक्षा का विकास
187	सावित्री सिन्हा	व्रजभाषा के कृष्णभक्तिका य मे अभिव्यजना शिल्प
188	सत्यदेव चौधरी	रीतिकाल के प्रमुख आचार्य
189	सुरेशच द्र गुप्त	आधुनिक हिन्दी कवियो के का य सिद्धा त
190	आन दप्रकाश दीक्षित	काव्य म रस
191	तारकनाथ बाली	रस की दार्शनिक और नतिक व्याख्या

192	छलबिहारी गुप्त 'राकेश'	मनोविज्ञान के प्रकाश मे रस सिद्धान्त का समालोचनात्मक अध्ययन
193	राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	हिन्दी-कविता (1600-1850 ई०) म शृगार रस का अध्ययन
194	पूणमासी राय	कृष्ण भक्ति म मधुर रस
195	मिथिलेश कान्ति	हिन्दी भक्तिकाव्य (स० 1300-1700) म शृगार रस
196	व्रजवासीलाल श्रीवास्तव	हिन्दी काव्य मे करुण रस (1400-1700 ई०)
197	तारा कपूर	हिन्दी-काव्य मे करुण रस
198	बरसानेलाल चतुर्वेदी	हिन्दी-साहित्य मे हास्य रस
199	आशा शिरोमणि	हिन्दी-काव्य मे वात्सल्य रस
200	करुणा वर्मा	हिन्दी के मध्यकालीन भक्ति-साहित्य (स० 1500 1700) मे वात्सल्य रस और सख्य का निरूपण
201	श्रीनिवास शर्मा	आधुनिक हिन्दी काव्य मे वात्सल्य रस
202	भोलाशकर व्यास	ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त
203	राममूर्ति त्रिपाठी	लक्षणा और उसका प्रसार
204	रणवीरसिंह	हिन्दी-काव्यशास्त्र के दोष विवेचन
205	कुन्दनलाल जन	हिन्दी रीतिकालीन अलकार ग्र थो पर सस्कृत का प्रभाव (स० 1700 1900)
206	ओमप्रकाश कुलश्रेष्ठ	हिन्दी साहित्य मे अलकार
207	जगदीशनारायण त्रिपाठी	आधुनिक हिन्दी काव्य म अलकार विधान
208	देवेशचन्द्र	आधुनिक काल की हिन्दी-कविता (1850-1950 ई०) म अलकार-योजना
209	छलविहारी गुप्त 'राकेश'	नायक-नायिका भेद
210	पुष्पलता निगम	हि दी महाकाव्यो मे नायक
211	जानकीनाथ सिंह मनोज'	हिन्दी छन्दशास्त्र
212	माहेश्वरीसिंह	मध्यकालीन हिन्दी छन्द का ऐतिहासिक विकास
213	शिवनन्दनप्रसाद	मध्यकालीन हिन्दी-काव्य म प्रयुक्त मात्रिक छन्दो का ऐतिहासिक एव विश्लेषणात्मक अध्ययन
214	पुत्तूलाल शुक्ल	आधुनिक हिन्दी-कविता म छन्द
215	रामभक्तसिंह	हिन्दी-काव्य म कल्पना विधान

216	शैल श्रीवास्तव	आधुनिक हिन्दी-काव्य में कवि-कल्पना का स्वरूप और उसकी विवेचना
217	मधुरमालती सिंह	आधुनिक हिन्दी-काव्य में विरह
218	रमाप्रसाद मिश्र	आधुनिक हिन्दी-काव्य साहित्य में बदलते हुए माना का अध्ययन
219	शकरदेव शर्मा	आधुनिक हिन्दी साहित्य म काव्य रूपो के प्रयोग—एक अध्ययन
220	कैलाशचन्द्र बाजपयी	आधुनिक हिन्दी-कविता का शिल्प विधान
221	मोहनलाल अवस्थी	आधुनिक हिन्दी-कविता का काव्य शिल्प
222	निर्मला जैन	आधुनिक हिन्दी-काव्य मे रूप विधाएँ
223	वीरेन्द्रसिंह	हिन्दी-कविता मे प्रतीकवाद का विकास
224	चन्द्रकला	आधुनिक हिन्दी मे प्रतीकवाद के प्रकार
225	नित्यानन्द शर्मा	आधुनिक हिन्दी-काव्य मे प्रतीक विधान (1875-1935 ई०)
226	रामप्रसाद मिश्र	खड़ीबोली-कविता में विरह-वणन
227	आशा गुप्त	खड़ीबोली हिन्दी-काव्य में अभिव्यवित कला (1920 तक)
228	श्यामनन्दनप्रसाद किशोर	आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यो का शिल्प विधान
229	वीरबल सिंह रत्न	हिन्दी की छायावादी कविता के कला-विधान का विवचन
230	विष्णुस्वरूप	कवि-समय मीमासा
231	रामानन्द तिवारी	सत्य शिव सुन्दरम
232	लालताप्रसाद सक्सेना	हिन्दी-काव्य मे मानव और प्रकृति
233	रामगोपाल शर्मा	हिन्दी-काव्य म नियतिवाद
234	शम्भूनाथ सिंह	हिन्दी मे महाकाव्य का स्वरूप विकास
235	हरिश्चन्द्र राय	हिन्दी-साहित्य म महाकाव्य
236	शकरलाल मेहरोत्रा	हिन्दी महाकाव्यो मे नाटय-तत्त्व
237	शिवमंगल सिंह 'सुमन	गीतिकाव्य का उदगम, विकास और हिन्दी-साहित्य म उसकी परम्परा
238	दयाशकर शुक्ल	हिन्दी का समस्यापूर्ति काव्य
239	रामसिंह चौहान	हिन्दी-कविता म जनवादी प्रवत्तिया
240	टीकमसिंह तोमर	हिन्दी वीरकाव्य (1600-1800 ई०)

241 शान्तिकुमार शर्मा — हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा का विकास
242 किरणकुमार गुप्त — हिन्दी कविता में प्रकृति चित्रण
243 रघुवंशसहाय वर्मा — हिन्दी साहित्य के भक्ति और रीतिकालों में प्रकृति और काव्य
244 एम० एस० प्रचंडिया — हिन्दी का बारहमासा साहित्य—उसका इतिहास तथा अध्ययन
245 दयाशंकर शर्मा — हिन्दी में पशुचारण काव्य
246 शकुन्तला दुबे — हिन्दी काव्यरूपों का उद्भव और विकास
247 ब्रजमोहन गुप्त — हिन्दी काव्य में रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ
248 विद्या सिंह — हिन्दी-काव्य में रहस्यवाद
249 भोलानाथ तिवारी — हिन्दी नीतिकाव्य
250 रामस्वरूप — हिन्दी में नीतिकाव्य का विकास (सं० 1900 तक)
251 देवीशरण रस्तोगी — हिन्दी नीतिकाव्य (आदिकाल से भारतेन्दु-युग तक)
252 समारचन्द्र मेहरोत्रा — हिन्दी काव्य में अन्योक्ति
253 जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव — डिंगल पद्य साहित्य का अध्ययन
254 विद्याभूषण मंगल — मध्ययुगीन और आधुनिक हिन्दी-कविता में पेड़ पौधे और पशु पक्षी
255 जगमोहन राय — हिन्दी का पद साहित्य
256 मुंशीराम शर्मा — वैदिक भक्ति और हिन्दी के मध्यकालीन काव्य में उसकी अभिव्यक्ति
257 सियाराम तिवारी — हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य
258 कपिलदेव पाण्डेय — मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में अवतारवाद
259 सत्यवती गोयल — मध्यकालीन हिन्दी कविता में दोहा
260 ब्रजविलास श्रीवास्तव — मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्धकाव्यों में कथानक रूढ़ियाँ
261 रुद्रपाल सिंह — आदिकालीन हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ
262 शिवशंकर शर्मा — भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में योग भावना
263 ब्रजलाल — निर्गुण और सगुण-काव्य में रहस्यात्मक अनुभूति का स्वरूप
264 प्रेमसागर जैन — हिन्दी के भक्ति-काव्य में जैन-साहित्यकारों का योगदान (सं० 1400-1800)

265	रामबाबू शर्मा	पन्द्रहवी मे सत्रहवी शताब्दी तक हिन्दी के काव्यरूपो का अध्ययन
266	गोविन्द त्रिगुणायत	हिन्दी की निर्गुण-काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि
267	श्यामसुन्दर शुक्ल	हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा मे भक्ति का स्वरूप
268	त्रिलोकीनारायण दीक्षित	चरनदास सुन्दरदास और मलूकदास के दार्शनिक विचार
269	ओमप्रकाश शर्मा	हिन्दी सन्त साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि
270	रामखेलावन पाण्डेय	मध्यकालीन सन्त-साहित्य
271	केशनीप्रसाद चौरसिया	मध्यकालीन हिन्दी सन्त-साहित्य की साधना पद्धति
272	सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि
273	रामपूजन तिवारी	हिन्दी सूफीकाव्य की भूमिका—सूफीमत, साधना और साहित्य
274	विमलकुमार जैन	सूफीमत और हिन्दी साहित्य
275	हरिकान्त श्रीवास्तव	हिन्दू कवियो के प्रेमाख्यान
276	गिरधारीलाल शास्त्री	हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य की पृष्ठभूमि
277	बालमुकुन्द गुप्त	हिन्दी मे कृष्णकाव्य का विकास
278	डी० एम० मिश्र	हिन्दी काव्य मे कृष्ण का चारित्रिक विकास
279	सरोजिनीदेवी कुलश्रेष्ठ	मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य मे कृष्ण (विकासवार्ता)
280	द्वारिकाप्रसाद मीतल	भक्तिकालीन कृष्ण काव्य मे राधा का स्वरूप
281	रूपनारायण	ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य मे माधुर्य भक्ति (1550 1650)
282.	एस० एन० पाण्डेय	हिन्दी कृष्णकाव्य मे माधुर्योपासना
283	शरणविहारी गोस्वामी	हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य मे सखीभाव
284	श्यामसुन्दरलाल दीक्षित	कृष्णकाव्य मे भ्रमरगीत
285	स्नेहलता श्रीवास्तव	हिन्दी मे भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा
286	हरीसिंह	कृष्ण-काव्यधारा मे मुसलमान कवियो का योगदान (1600-1850)
287	उषा गुप्त	हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्णकाव्य मे संगीत

288	राजकुमारी मित्तल	हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्णभक्ति साहित्य मे रीतिकाव्य परम्परा
289	कामिल बुल्के	रामकथा—उत्पत्ति और विकास
290	राम औतार	रामभक्ति और हिन्दी साहित्य मे उसकी अभिव्यक्ति
291	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना
292	सुधा गुप्त	विभिन्न युगो मे सीता का चरित्र चित्रण तथा तुलसीदास म उसकी चरम परिणति
293	रामनिरजन पाण्डेय	भक्तिकालीन हिन्दी-कविता मे दार्शनिक प्रवत्तिया—रामभक्ति शाखा
294	,,	रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि
295	विष्णुशरण इन्दु	हिन्दी साहित्य मे भक्ति और रीति की सन्धिकालीन प्रवत्तियो का विवेचनात्मक अनुशीलन
296	बच्चनसिंह	रीतिकालीन कवियो की प्रेमा व्यजना
297	आर० पी० मित्तल	रीतिकाव्य मे रूप चित्रण
298	देवीशकर अवस्थी	अठारहवी शताब्दी म प्रेम भक्ति (व्रजभाषा-कविता)
299	उमा मिश्र	रीतिकालीन काव्य और सगीत का पारस्परिक सम्बन्ध
300	पजाबीलाल शर्मा	रीतिकालीन निगुणभक्ति-काव्य
301	हरिकृष्ण पुरोहित	आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा (1870-1950)
302	कीतिलता	भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम और उसका आधुनिक हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव
303	शकुन्तला वर्मा	आधुनिक हिन्दी साहित्य म गांधीवाद
304	बलभद्रप्रसाद तिवारी	आधुनिक हिन्दी-साहित्य म व्यक्तिवादी प्रवत्तियाँ
305	सुषमा पाराशर	स्वतन्त्रता क पश्चात हिन्दी साहित्य की प्रवत्तियाँ
306	राजेन्द्रप्रसाद मिश्र	आधुनिक काव्य और काव्यवादो का अध्ययन

307	केसरीनारायण शुक्ल	आधुनिक काव्यधारा
308	रामेश्वरलाल खण्डेलवाल	आधुनिक हिन्दी-कविता मे प्रेम और सौन्दय
309	कमलारानी तिवारी	आधुनिक हिन्दी-काव्य म सौन्दय
310	गोपालदत्त सारस्वत	आधुनिक हिन्दी-काव्य मे परम्परा तथा प्रयोग
311	सुरेशचन्द्र जैन	आधुनिक हिन्दी-काव्य मे राष्ट्रीय चेतना का विकास
312	परशुराम शुक्ल 'विरही'	आधुनिक हिन्दी-काव्य मे यथायवाद (भारतेन्दु युग मे 1950 तक की कविता का अध्ययन)
313	विद्याराम कमल मिश्र	आधुनिक हिन्दी-साहित्य के स्वच्छन्दतावादी काव्य का अनुशीलन
314	गोविन्दराम शर्मा	हिन्दी क आधुनिक महाकाव्य
315	प्रतिपालसिंह	बीसवी शती के महाकाव्य
316	शुभकारनाथ कपूर	बीसवी शताब्दी के रामकाव्य
317	सरोजिनीदेवी अग्रवाल	आधुनिक हिन्दी काव्य मे गीत भावना का विकास
318	जगदीशप्रसाद वाजपेयी	आधुनिक ब्रजभाषा-काव्य का विकास (स० 1900-2000)
319	विश्वनाथ गौड	आधुनिक हिन्दी-काव्य म रहस्यवाद
320	शम्भुनाथ पाण्डेय	आधुनिक हिन्दी-काव्य मे निराशावाद
321	अविनाशचन्द्र अग्रवाल	भारतेन्दुयुगीन हिन्दी-कवि
322	ब्रह्मदत्त मिश्र 'सुधीन्द्र'	द्विवेदी-युग की हिन्दी-कविता का पुनरुत्थान (1901 20 ई०)
323	शिवकुमार मिश्र	छायावाद-युग के पश्चात् हिन्दी-काव्य की विविध विकास दिशाएँ (1936 1958 ई०)
324	शम्भूनाथ चतुर्वेदी	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-कविता
325	राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	आधुनिक कविता की मूल प्रवृत्तियाँ
326	शारदा वन्ल्कार	हिन्दी-गद्य का विकास (1800-1856)
327	कृष्णकुमार मिश्र	हिन्दी गद्य साहित्य का विकास
328	ब्रजमोहन शर्मा	हिन्दी गद्य (भाषा और साहित्य) का निर्माण एव विकास देश के सुधारवादी और राजनीतिक आन्दोलना के प्रकाश मे परीक्षण (अद्यावधि)

375 राजकिशोर क्क्कड — आधुनिक हि दी साहित्य मे समालोचना का विकास (1868 1943)

376 वेंकट शर्मा — आधुनिक हि दी साहित्य मे समालोचना का विकास

377 हरिमोहन मिश्र — आधुनिक हि दी आलोचना

378 रामदरश मिश्र — आधुनिक आलोचना की प्रवत्तिया

379 किशोरीलाल गुप्त — 'शिवसिह-सरोज' मे दिये कवियो-सम्ब धी तथ्यो एव तिथियों का आलोचनात्मक परीक्षण

380 रामकुमार वर्मा — हि दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (स० 750-1700 वि०)

381 शिवस्वरूप शर्मा — राजस्थानी के गद्य साहित्य का इतिहास और विकास

382 जयका त मिश्र — मैथिली साहित्य का सक्षिप्त इतिहास (आदिकाल से लेकर वतमान समय तक) और उस पर अग्रेजी का प्रभाव (अग्रेजी विभाग)

383 आन दप्रकाश माथुर — सोल्हवी सत्रहवी शताब्दियो की अवस्था का हि दी साहित्य के आधार पर अध्ययन (अग्रजी)

384 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — हि दी-साहित्य और उसकी सास्कृतिक भूमिका

385 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — आधुनिक हि दी साहित्य (1850 1900 ई०)

386 श्रीकृष्णलाल — हि दी साहित्य का विकास (1900-1925 ई०)

387 भोलानाथ — हि दी-साहित्य (1926-1947 ई०)

388 कि शोरीलाल गुप्त — हि दी-साहित्य (स० 1649 1945) के इतिहास के विभि न स्रोता का विश्लेषण

389 मीरा श्रीवास्तव — मध्ययुगीन हि दी-कृष्णभक्ति धारा और चत य सम्प्रदाय

390 रामदेव ओझा — नाथ-सम्प्रदाय का मध्यकालीन हि दी भाषा और साहित्य पर प्रभाव

391 शातिप्रसाद च दोला — नाथ सम्प्र दाय क हि दी कवि

392	एन० डी० शर्मा	निम्बार्क-सम्प्रदाय और उसके कृष्णभक्त हिन्दी कवि
393	पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल	हिन्दी-काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय
394	प्रयागदत्त तिवारी	सन्तकवि पल्टूदास और सन्त सम्प्रदाय
395	भगवतीप्रसाद शुक्ल	बावरी-सम्प्रदाय के हिन्दी-कवि
396	भगवद्व्रत मिश्र	सन्तकवि रविदास और उनका पन्थ
397	भगवतीप्रसाद सिंह	रामभक्ति मे रसिक-सम्प्रदाय
398	विजयेन्द्र स्नातक	राधावल्लभ सम्प्रदाय के सन्दर्भ मे हित-हरिवंश का विशेष अध्ययन
399	राधिकाप्रसाद त्रिपाठी	रामसनेही सम्प्रदाय
400	बद्रीनारायण श्रीवास्तव	रामानन्द-सम्प्रदाय तथा हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव
401	गोपीवल्लभ नेमा	रामानन्द-सम्प्रदाय के कुछ अज्ञात कवि और उनकी रचनाएँ
402	दीनदयालु गुप्त	वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियो (विशेषकर परमानन्ददास और नन्ददास) का अध्ययन
403	रामचन्द्र तिवारी	शिवनारायणी-सम्प्रदाय और उसका हिन्दी-काव्य
404	गोपालदत्त शर्मा	स्वामी हरिदासजी का सम्प्रदाय और उसका वाणी साहित्य
405	ब्रजकिशोर मिश्र	अवध के प्रमुख हिन्दी कवियो का अध्ययन (सं० 1700-1900)
406	मोतीलाल मेनारिया	ब्रजभाषा-साहित्य को राजस्थान की देन (राजस्थान का पिंगल साहित्य)
407	सूरजप्रसाद शुक्ल	बसवाडे के हिन्दी कवि
408	मोतीलाल गुप्त	हिन्दी-साहित्य को मत्स्य प्रदेश की देन
409	विमला पाठक	अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि
410	राजकुमारी शिवपुरी	राजस्थान के राजघरानो द्वारा हिन्दी-साहित्य की सेवाएँ तथा उनका साहित्यिक मूल्यांकन
411	विमला पाठक	रीवाँ-दरबार के हिन्दी-कवि
412	महेन्द्रप्रताप सिंह	भगवन्तराय खीची और उनके मण्डल के कवि

413 सरोजिनी श्रीवास्तव — मिश्रबन्धु और उनका साहित्य—एक अध्ययन

414 ललितेश्वर झा — मैथिली के कृष्णभक्त कवियो का अध्ययन

415 अम्बाशकर नागर — गुजरात की हिन्दी सेवा

416 नटवरलाल अम्बालाल व्यास — गुजरात के कवियो की हिन्दी साहित्य को देन

417 विनयमोहन शर्मा — हिन्दी को मराठी सन्तो की देन

418 विमला वाघ्रे — दक्खिनी के सूफी लेखक

419 सोमनाथ शुक्ल — हिन्दी साहित्य के आधार पर भारतीय सस्कृति

420 सुरेन्द्रबहादुर त्रिपाठी — मध्यकालीन हिन्दी कविता म भारतीय सस्कृति (1700 1900)

421 गणेशदत्त — मध्यकालीन हिन्दी साहित्य म चित्रित समाज

422 वेंकट रमण — कवित्रय (कबीर सूर-तुलसी)—सामाजिक पक्ष

423 सावित्री शुक्ल — हिन्दी सन्त-काव्य की सास्कृतिक एव सामाजिक पृष्ठभूमि

424 मोतीसिंह — निर्गुण साहित्य की सास्कृतिक पृष्ठभूमि

425 रामनरेश वर्मा — सगुण भक्तिकाव्य की सास्कृतिक पृष्ठभूमि

426 श्यामेन्द्रप्रकाश शर्मा — अष्टछाप कवियो के काव्य (विशेषकर सूर साहित्य) म वर्णित व्रज सस्कृति

427 मायारानी टण्डन — अष्टछाप-कवियो की कविता का सास्कृतिक अध्ययन

428 रामशरण दत्ता — हिन्दी राम-काव्य की सामाजिक एव दार्शनिक पृष्ठभूमि (16वी तथा 17वी शती)

429 इन्द्रनाथ मदान — सामाजिक वातावरण के विशिष्ट सन्दर्भ म आधुनिक हिन्दी-साहित्य की समालोचना

430 कृष्णबिहारी मिश्र — आधुनिक सामाजिक आन्दोलन एव आधुनिक हिन्दी साहित्य (1900-1950 ई०)

431 गायत्रीदेवी वैद्य — आधुनिक हिन्दी-कविता म समाज (1850-1950 ई०)

432	गौरीशंकर सत्येन्द्र	ब्रज-लोकसाहित्य का अध्ययन
433	सत्या गुप्त	खड़ीबोली के लोकसाहित्य का अध्ययन
434	कृष्णदेव उपाध्याय	भोजपुरी लोकसाहित्य
435	बद्रीनाथ परमार	मालव लोकसाहित्य
436	बी० पी० शुक्ल	बघेली लोकसाहित्य का अध्ययन
437	शकरलाल यादव	हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य
438	चिन्तामणि उपाध्याय	माल्वी लोकगीत
439	स्वर्णलता अग्रवाल	राजस्थानी लोकगीत
440	कृष्णचन्द्र शर्मा	मेरठ जनपद के लोकगीतो का अध्ययन
441	तेजनारायण लाल	मैथिली लोकगीतो का अध्ययन
442	अणिमा सिंह	मैथिली लोकगीत
443	चन्द्रकला त्यागी	बुलन्दशहर के संस्कार सम्बन्धी लोकगीतो का मध्यम वर्ग एव निम्न वर्ग के आधार पर अध्ययन
444	शालिग्राम गुप्त	ब्रज और बुन्देली लोकगीतो मे कृष्णवार्ता
445	सत्यव्रत सिन्हा	भोजपुरी लोकगाथा
446	कृष्णकुमार शर्मा	राजस्थानी लोकगाथाएँ
447	त्रिलोचन पाण्डेय	कुमायू के जनसाहित्य का अध्ययन (नैनीताल अल्मोडा क्षेत्र)
448	प्रभुनारायण शर्मा	राजस्थानी लोकनाटक (ख्याल साहित्य का एक अध्ययन)
449	रामदास प्रधान	बघेलखण्ड की लोकोक्तियाँ मुहावरे और लोककथाएँ
450	सत्यदेव ओझा	भोजपुरी कहावतो का सास्कृतिक अध्ययन
451	गौरीशकर सत्येन्द्र	मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य के प्रेमगाथा काव्य और भक्तिकाल मे लोकवार्ता-तत्व
452	रवीन्द्रनाथ राय	हिन्दी भक्ति साहित्य मे लोकतत्त्व
453	इन्द्रा जोशी	हिन्दी उपन्यासो मे लोकतत्त्व
454	सावित्री सिन्हा	मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रिया
455	श्यामसुन्दर यादोराम व्यास	हिन्दी महाकाव्यो मे नारी चित्रण
456	शान्तिदेवी श्रीवास्तव	मध्ययुगीन साहित्य मे नारी
457	उषा पाण्डेय	मध्यकालीन-काव्य मे नारी भावना
458	गजानन शर्मा	भक्तिकालीन-काव्य मे नारी

459	रघुनाथ सिंह	आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी (1857-1936 ई०)
460	सरलादेवी	आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी
461	बिन्दु अग्रवाल	आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी चित्रण (1850-1950 ई०)
462	शैलकुमारी माथुर	आधुनिक हिन्दी-काव्य (1900 1945 ई०) में नारी भावना
463	लीला अवस्थी	आधुनिक हिन्दी नाटकों में नारी चित्रण
464	शैल रस्तोगी	हिन्दी उपन्यासों में नारी
465	इन्द्रावती ग्रोवर	हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण
466	देवेश ठाकुर	आधुनिक भारतीय समाज में नारी और प्रसाद के नारीपात्र
467	गंगाचरण त्रिपाठी	अवधी, ब्रज और भोजपुरी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
468	श्याम मनोहर पाण्डेय	सूफी और असूफी प्रेमाख्यानों का तुलनात्मक अध्ययन
469	नागेन्द्रनाथ उपाध्याय	नाथ और सन्त साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
470	रामप्रसाद शर्मा	उपनिषदों तथा हिन्दी-काव्यों की निर्गुणधारा का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन (संस्कृत)
471	मालती श्रीखण्डे	हिन्दी और मराठी के सन्त-कवियों का तुलनात्मक अध्ययन
472	प्रभाकर माचवे	हिन्दी और मराठी का निर्गुण-काव्य (11वीं से 15वीं शती—तुलनात्मक अध्ययन)
473	श्रीधर शेष	हिन्दी और मराठी कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
474	शान्तिस्वरूप गुप्त	हिन्दी तथा मराठी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन (1900-1950)
475	मनोहर काले	आधुनिक हिन्दी और मराठी-काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन
476	सुशीला	हिन्दी और गुजराती सन्त-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन

477	जगदीश गुप्त	हिन्दी और गुजराती कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन
478	सुदर्शनसिंह मजीठिया	मध्यकालीन हिन्दी और पंजाबी सन्तों की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन
479	हरवंशलाल शर्मा	हिन्दी तथा पंजाबी के निर्गुण काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन
480	सावित्री सरीन	पंजाबी और हिन्दी के वार्ता साहित्य में अभिप्राय
481	रतनकुमारी	हिन्दी और बंगला के वैष्णव कवियों (16वीं शताब्दी) का तुलनात्मक अध्ययन
482	लालजी शुक्ल	शंकरदेव और माधवदेव के विशिष्ट संदर्भ में हिन्दी और आसामी वैष्णव कविता का तुलनात्मक अध्ययन
483	इलवावुलूरी पाण्डुरंग राव मुरली	आन्ध्र हिंदी रूपक (हिन्दी और तेलुगू का नाटक साहित्य—एक अध्ययन)
484	हिरण्मय	हिन्दी और कन्नड में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन
485	चन्दूलाल दुबे	हिन्दी नाटक साहित्य का विकास तथा कन्नड नाट्य-साहित्य से उसकी प्रासंगिक तुलना
486	के० भास्कर नय्यर	हिन्दी और मलयालम भक्त कवियों का तुलनात्मक अध्ययन
487	एन० ई० विश्वनाथ अय्यर	बीसवीं शताब्दी के हिन्दी-काव्य और मलयालम काव्य का तुलनात्मक अध्ययन (1920 1950)
488	दामोदर	हिन्दी और मलयालम के सामजिक उपन्यास (1900-1960)
489	सरनामसिंह शर्मा	हिन्दी साहित्य पर संस्कृत का प्रभाव
490	इन्द्रावती सिन्हा	हिन्दी-साहित्य पर पौराणिकता का प्रभाव
491	शशि अग्रवाल	हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य पर पौराणिक प्रभाव (संस्कृत)
492	सदानन्द मदान	भक्तिकालीन कृष्णभक्ति काव्य पर पौराणिक प्रभाव
493	विश्वनाथ शुक्ल	श्रीमद्भागवत का हिन्दी-कृष्ण साहित्य पर प्रभाव

494	विश्वम्भरनाथ	सत वष्णव-काव्य पर तान्त्रिक प्रभाव (1400 1700)
495	शील्वती मिश्र	हिन्दी सन्तों (विशेषतया सूरदास तुलसीदास और कबीरदास) पर वेदान्त पद्धतियों का रूप (दशन)
496	किरणकुमारी गुप्त	विशिष्टाद्वत और उसका हिन्दी के भक्ति-काव्य पर प्रभाव (सस्कृत)
497	सरलादेवी	हिन्दी के मध्ययुगीन साहित्य पर बौद्ध धम का प्रभाव
498	रामसिंह तोमर	प्राकृत अपभ्रंश का साहित्य और उसका हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव
499	धन्यकुमार जन	प्राचीन हिन्दी साहित्य पर जन साहित्य का प्रभाव
500	कमलसिंह सोलकी	हिन्दी के निगुण सन्त-कवियों पर नाथ पन्थ का प्रभाव
501	वीरेन्द्र कुमार	रीतिकाव्य पर विद्यापति का प्रभाव
502	रामकरन मिश्र	बीसवी शताब्दी की सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ और उनका हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव (1900 1936)
503	रमशकुमार शर्मा	रीतिकविता का आधुनिक हिन्दी कविता पर प्रभाव
504	ज्ञानवती दरबार	हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास म भारतीय नेताओं का योगदान तथा प्रभाव (1857 1957)
505	धमपाल	हिन्दी-साहित्य पर राजनीतिक आन्दोलनों का प्रभाव (1906-1947)
506	ब्रह्मानन्द	बगला (भाषा और साहित्य) पर हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रभाव
507	ब्रह्मानन्द	आधुनिक हिन्दी-साहित्य पर बगला साहित्य का प्रभाव
508	विश्वनाथ मिश्र	हिन्दी नाटकों और उपन्यासों पर पाश्चात्य (आंग्ल, रूसी तथा फ्रांसीसी) प्रभाव
509	विश्वनाथ मिश्र	अंग्रेजी का हिन्दी भाषा और साहित्य पर प्रभाव

510	रवीन्द्रसहाय वर्मा	आधुनिक हिन्दी काव्य और आलोचना पर अँग्रेजी प्रभाव
511	शिवस्वरूप सक्सेना	हिन्दी-साहित्य पर मार्क्सवाद का प्रभाव
512	श्रीपति शर्मा	हिन्दी-नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव
513	धर्मकिशोर लाल	अँग्रेजी नाटकों का हिन्दी नाटकों पर प्रभाव
514	उषा सक्सेना	हिन्दी-कथा साहित्य के विकास पर आंग्ल प्रभाव (1885 1936 ई०)
515	एम० एन० गणेशन	हिन्दी उपन्यासों पर पाश्चात्य प्रभाव
516	एस० टी० नरसिंहाचारी	हिन्दी-साहित्य और आलोचना में अभिरुचि का विकास
517	सत्यवती महेन्द्र	हिन्दी-नाममाला साहित्य
518	सुषमा नारायण	भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी-साहित्य म अभिव्यक्ति (1920-1937)
519	सरोज अग्रवाल	प्रबोधचन्द्रोदय और उसकी हिन्दी-परम्परा
520	हरिहरनाथ टण्डन	वार्ता साहित्य का जीवनीमूलक अध्ययन
521	प्रेमनारायण शुक्ल	हिन्दी-साहित्य मे विविध वाद
522	चन्द्रावती सिंह	हिन्दी-साहित्य मे जीवनचरित का विकास—एक अध्ययन
523	नेमिचन्द शास्त्री	हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन
524	हरिशंकर शर्मा	आदिकाल का हिन्दी-जैन साहित्य
525	लक्ष्मीनारायण गुप्त	हिन्दी साहित्य को आयसमाज की देन
526	के० सी० डी० यजुर्वेदी	ध्रुवपद और हिन्दी साहित्य
527	हरिवंश कोछड	अपभ्रंश साहित्य
528	देवेन्द्रकुमार जन	अपभ्रंश साहित्य
529	धर्मवीर भारती	सिद्ध साहित्य
530	हरभजन सिंह	गुरमुखी लिपि मे हिन्दी साहित्य (17वीं-18वी शती)
531	सुरेन्द्रमनोहर माथुर	हिन्दी का यात्रा साहित्य
532	रामरतन भटनागर	हिन्दी समाचारपत्रों का इतिहास
533	रामगोपाल चतुर्वेदी	हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास

534	विमला रानी	हिन्दी साहित्य और भाषा के विकास म पत्रिकाओं का योगदान
535	अचलानन्द जाखमोला	हिन्दी-कोशसाहित्य (1500 1800 ई०) का आलोचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन
536	मुदमगलसिंह	अग्रजी शासकों की शिक्षानीति और हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास म उनका योग
537	ओमप्रकाश	हिन्दी गद्य साहित्य म प्रकृति चित्रण
538	लक्ष्मीदेवी सक्सेना	सिंहासन बत्तीसी और उसकी हिन्दी परम्परा का लोक साहित्य की दृष्टि से अध्ययन
539	बाबूराम सक्सेना	अवधी का विकास
540	पीताम्बरदत्त बडथ्वाल	हिन्दी काव्य म निर्गुण-सम्प्रदाय
541	धीरेन्द्र वर्मा	ब्रजभाषा
542	रमाशकर शुक्ल रसाल	हिन्दी काव्यशास्त्र का विकास
543	बलदेव प्रसाद मिश्र	तुलसी दर्शन
544	हरिहरनाथ शुक्ल	रामचरितमानस के विशिष्ट सन्दर्भ म तुलसी की शिल्पकला—एक विश्लेषण
545	माताप्रसाद गुप्त	तुलसीदास—जीवनी और कृतियों का समालोचनात्मक अध्ययन
546	केसरीनारायण शुक्ल	आधुनिक काव्यधारा
547	जगन्नाथप्रसाद शर्मा	प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन
548	दीनदयालु गुप्त	वल्लभ सम्प्रदाय क अष्टछाप कवियो (विशेषकर परमानन्ददास और नन्ददास) का अध्ययन
549	सुभद्र झा	मथिली भाषा की रूपरचना
550	उदयनारायण तिवारी	भोजपुरी भाषा की उत्पत्ति और विकास
551	हरदेव बाहरी	हिन्दी अर्थ विज्ञान
552	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	हिन्दी साहित्य और उसकी सास्कृतिक भूमिका
553	नगेन्द्र नगाइच	रीतिकाल की भूमिका म देव का अध्ययन
554	राजपति दीक्षित	तुलसीदास और उनका युग
555	ओमप्रकाश	हिन्दी मुहावरे
556	सी० बाल्वील	रामचरितमानस के स्रोत और रचनाक्रम
557	शिवमगलसिंह	गीतिकाव्य का उद्गम विकास और हिन्दी साहित्य म उसकी परम्परा

558	छैलबिहारी गुप्त	नायक-नायिका भेद
559	रामखेलावन पाण्डेय	मध्यकालीन स त साहित्य
560	हरवशलाल शर्मा	सूर और उनका साहित्य
561	मुशीराम शर्मा	वदिक भक्ति तथा हि दी के मध्यकालीन का य म उसकी अभिव्यक्ति
562	त्रिलोकीनारायण दीक्षित	चरणदास, सु दरदास और मलूकदास के दाशनिक विचारा का अध्ययन
563	गोवि द त्रिगुणायत	हि दी की निगुणमार्गी काव्यधारा और उसकी दाशनिक पृष्ठभूमि
564	गौरीशकर सत्ये द्र	मध्ययुगीन हि दी साहित्य के प्रेमगाथा काव्य और भक्ति-काव्य म लोकवार्तातत्त्व
565	भगवतीप्रसाद सिंह	रामभक्ति म रसिक सम्प्रदाय
566	शिवन दनप्रसाद	मध्ययुगीन हि दी-काव्य मे प्रयुक्त मात्रिक छ दो का ऐतिहासिक एव विश्लेषणात्मक अध्ययन
567	रामदत्त भारद्वाज	गोस्वामी तुलसीदास—रत्नावली की जीवनी और रचना एव सूकरक्षेत्र के तादात्म्य तथा इतिवत्त के विशिष्ट परिचय से सम वित गोस्वामी तुलसीदास के ज मस्थान, आविर्भाव काल, परिवार व्यक्तित्व आदि का आलोचनात्मक अध्ययन
568	मगलबिहारी शरण	सिद्धा की सधा भाषा
569	विश्वनाथ मिश्र	हि दी नाटको और उप यासो पर पाश्चात्य (आग्ल, रूसी और फ्रासीसी) प्रभाव
570	उदयभानु सिंह	तुलसी दशन मीमासा
571	सावित्री सि हा	ब्रजभाषा के कृष्णभक्ति-काव्य में अभि-व्यजना शल्प
572	प्रेमनारायण शुक्ल	भक्तिकालीन हि दी-स त साहित्य की भाषा (स० 1375 1700)
573	कि रणकुमारी गुप्त	विशिष्टाद्वत और उसका हि दी के भक्ति का य पर प्रभाव (सस्कृत)
574	श्यामन दनप्रसाद किशोर	आधुनिक हि दी महाकाव्यो का शिल्प विधान
575	राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	आधुनिक कविता की मूल प्रवृत्तियाँ

576	किशोरीलाल गुप्त	हिन्दी साहित्य (स० 1649 1945) के इतिहास के विभिन्न स्रोतो का विश्लेषण
577	अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	तुलसी के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण[1]

डी० लिट्०, पी एच० डी० के लिए स्वीकृत विषय-सूची

इन्दौर विश्वविद्यालय (सन 1970 तक)

डी० लिट०

1	आर० सी० कौशल	गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य मे व्यक्त राजनीति का अध्ययन
2	कु० शकुन्तला ठाकुर	आधुनिक हिन्दी कविता मे व्यक्त राजनीतिक विचारधाराएँ
3	ए० जी० क्रिस्टोदास	हिन्दी उपन्यासो की परम्परा और बीसवीं शताब्दी के सप्तम दशक उपन्यास (1960-1970)
4	कु० सुदेश काशव	श्रीमती महादेवी वर्मा, जीवन साहित्य एव दर्शन
5	सी० एस० पाठक	हिन्दी-कविता पर शाक्त प्रभाव (750 से 1700 तक)

विक्रम विश्वविद्यालय (उपाधि प्राप्त विषय)

डी० लिट०

1	डा० रामप्रतिपाल मिश्र	मध्ययुगीन सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर तुलसी काव्य चिन्तन

पी एच० डी०

1	के० एस० सोलकी	हिन्दी के निर्गुण सन्त कवियो पर नाथ पन्थ का प्रभाव
2	श्याम भटनागर	द्विवेदी युग का अनुवाद-साहित्य
3	नमीचन्द जैन	भीली भाषा का शास्त्रीय अध्ययन

---

१ हिन्दी शोध प्रबन्ध' (उदयभानुसिंह स साभार सकलित) इस सग्रह म सन् १९६२—तक उपाधिप्राप्त विषय सम्मिलित हो सके हैं।

4 पवनकुमार मिश्र — पारसी रंगमंच—उसके नाटक और नाटककारों का आलोचनात्मक अध्ययन

5 एस० जी राजवाडे — महाराष्ट्रीय सन्तों की हिन्दी-कविता एवं उत्तरकालीन सन्त कविता से उसका तुलनात्मक भाषा शास्त्रीय तथा साहित्य-विवेचन

6 बाबूराम जोशी — सन्त काव्य में परोक्ष सत्ता का स्वरूप

7 कु० भगवती वर्मा — उपन्यासकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री

8 चन्द्रशेखर भट्ट — हाडोती लोकगीत

9 रामचन्द्र बिल्लोर — जायसी की प्रेम-साधना

10 दुर्गाप्रसाद झाला — आधुनिक प्रगतिशील हिन्दी कविता

11 गुमानसिंह कुशवाहा — आचार्य चतुरसेन शास्त्री का उपन्यासोत्तर साहित्य

12 शुकदेव दुबे — सगुण-भक्त-कवियों के प्रगति काव्य का अनुशीलन (वि० सं० 1601 से वि० सं० 1700 तक)

13 गौरीशंकर शर्मा — महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का कथा-साहित्य (कहानियाँ और उपन्यास)

14 कु० बीना कुदेशिया — हिन्दी प्रदेश की हिन्दू-महिलाओं के नामों का वैज्ञानिक अध्ययन

15 हरिहरप्रसाद शर्मा — सियारामशरण गुप्त—जीवनी और गद्य-साहित्य

16 श्यामसुन्दर चौऋषि — बांकीदास—आचार्यत्व एवं कृतित्व

17 मांगीलाल मेहता — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-कहानी-वस्तु विकास और शिल्प विधान

18 बसन्तीलाल बम — भारतीय लोककथाएँ उद्भव और विकास

19 भवानीशंकर त्रिपाठी — बिहारी सतसई की टीकाओं का आलोचनात्मक अध्ययन

20 बनवारीलाल ऋषीश्वर — प्रसाद पर्यन्त हिन्दी नाटकों पर संस्कृत नाट्य-साहित्य का प्रभाव

21 रामचरणलाल शर्मा — अष्टछाप और हरिवंशीय कवियों का तुलनात्मक अध्ययन

22 शिवदत्त शुक्ल — आधुनिक हिन्दी नाटकों में गीता का स्वरूप-विश्लेषण

23	राधेश्याम द्विवेदी	हिन्दी भाषा और साहित्य म ग्वालियर-क्षेत्र का योगदान (15वीं, 16वीं शताब्दी)
24	विलास गुप्ते	आधुनिक हिन्दी साहित्य को अहिन्दी लेखकों का योगदान (सन् 1900 स वर्तमान समय तक)
25	ओमप्रकाश सिन्हा	हिन्दी-उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अनुशीलन
26	कु० कुमुदिनी व्यास	आकाशवाणी और हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ
27	कु० सरोजिनी रोहतगी	अवधी का लोक साहित्य
28	श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री	स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी-कहानी
29	सम्पूर्णानन्द शास्त्री	डा० गोपालशरण सिंह जीवन और कृतित्व
30	बंशीधर शर्मा	मालवी की उत्पत्ति और विकास
31	प्रभाकर श्रोत्रिय	प्रसाद साहित्य म प्रेम-तत्त्व
32	कु० कौशल्या गिदवानी	हिन्दी भाषा व्याकरण और साहित्य को पाश्चात्य विद्वानो की देन
33	सनतकुमार सिंहल	हिन्दी और अंग्रेजी निबन्ध साहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन
34	फूलचन्द सिंह	प्रसाद पूर्व हिन्दी कथा साहित्य का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन और प्रसाद का कथा साहित्य
35	विमलचन्द जैन	प्रसाद की भाषा
36	जगदम्बाप्रसाद पाण्डेय	प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों मे चरित्र चित्रण का स्वरूप और शैलियों का अनुशीलन
37	मनमोहन दुबे	हिन्दी साहित्य मे ऐतिहासिक उपन्यास
38	नरसिंह चौहान	नूरमोहम्मद काव्य और दर्शन
39	विजय बापट	हिन्दी और मराठी के एकांकी नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन
40	वीरेन्द्रसिंह परिहार	बुन्देली लोकगीतो म प्रेम भावना
41	घनश्यामदास शर्मा	हिन्दी के लघु उपन्यासो का अनुशीलन
42	छैलबिहारी गुप्त	गोरखबानी—एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
43	घमनारायण शर्मा	तुर्रा कलगी साहित्य—एक अनुशीलन
44	यदुवीरप्रसाद भटनागर	आचार्य चतुरसेन शास्त्री और वृन्दावनलाल वर्मा के नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन

45	शान्तिलाल जैन	हिन्दी के यथार्थवादी नाटक और नाट्यशैली
46	रामकिशन माली	सर्वोच्च साहित्य का साहित्यिक मूल्यांकन
47	कु० प्रतिभा चतुर्वेदी	आधुनिक प्रगीत-काव्य में संगीत का योगदान
48	मणिशंकर आचार्य	तुलसी साहित्य में रूपक-योजना
49	हरिहर प्रसाद गोस्वामी	इलाचन्द्र जोशी और उनके उपन्यास
50	विद्याधर चन्द्र	हिन्दी कथा-साहित्य और प्रकृति
51	श्रीमती देवकुमारी कपूरिया	हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेम एवं सौन्दर्य-तत्त्व का निरूपण
52	कृष्णदेव उपाध्याय	रीति निरूपक मध्यकालीन आचार्यों का अलंकार शास्त्र में योगदान
53	कु० मंजुला अग्निहोत्री	पन्त-काव्य का कलापक्षीय अनुशीलन
54	राजाराम तिवारी	घनानन्द की भाषा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
55	कु० रश्मि त्रिपाठी	महादेवी का काव्य : कला और दर्शन सम्यक् अनुशीलन
56	प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी	सूदन तथा भरतपुर के हिन्दी-कवि
57	चन्द्रगुप्त मयंक	युगचेतना के क्रमिक विकास के परिप्रेक्ष्य में श्री मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का अनुशीलन

सागर विश्वविद्यालय, सागर (सन् 1962 से 1970 तक)

पी एच० डी०

1	सुशीला शर्मा	द्विवेदी युग (1900 से 1925) के हिन्दी में सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष
2	आचार्य वाजपेयी	आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धान्त तथा हिन्दी साहित्य पर उनका प्रभाव
3	लक्ष्मीनारायण दुबे	प्रभा तथा प्रताप के कवि और बालकृष्ण शर्मा नवीन का विशेष अध्ययन
4	कृपाशंकर मिश्र निर्द्वन्द्व	आधुनिक साहित्य में सामाजिकशास्त्र और व्यंग्य का स्वरूप
5	चन्द्रभूषण तिवारी	आधुनिक हिन्दी-साहित्य में कला विषयक विवेचन के उपकरण और तत्त्व
6	गुलाबदास गुप्ता	मध्यप्रदेश के क्षेत्र में कबीर मत और उसका विकास

7	गणेश खरे	छायावाद में प्रगीतकाव्य का अनुशीलन
8	सुरेशचन्द्र शुक्ल	प्रतापनारायण मिश्र और उनका साहित्य
9	जोगलेकर	मराठी और हिन्दी के वैष्णव-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
10	रामकुमारसिंह	आधुनिक हिन्दी काव्य की भाषा का अनुशीलन
11	एन० रमन नायर	हिन्दी और मलयालम के भक्तिकालीन काव्य में वात्सल्य रस
12	श्रीमती रानेश्वरी जैन	हिन्दी साहित्य में भावात्मक कहानी और उपन्यास की परम्परा तथा प्रसाद के कथा-साहित्य का अनुशीलन
13	हरिशंकर शुक्ल	अवधी के लोकगीतों का सामाजिक अनुशीलन
14	गंगानारायण त्रिपाठी	हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में गद्य का विकास (1900 से 1950)
15	शिवनारायण चौबे	प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य (1936-50)
16	रामखिलावन तिवारी	आधुनिक हिन्दी राष्ट्रीय काव्य के सन्दर्भ में माखनलाल के काव्य का विशेष अध्ययन
17	के० पी० सुभद्रा अम्मा	हिन्दी और मलयालम के रामकाव्य रूप—तुलनात्मक अध्ययन
18	रामसेवक पाण्डेय	प्रसाद के नाटकों के वस्तु तथा शिल्प-पक्ष का अनुशीलन
19	रामकृपाल शर्मा	सगुण भक्ति कवियों का व्यक्तिगत और सामाजिक आदर्श
20	श्रीमती उर्मिला दीक्षित	आधुनिक काव्य में नारी चरित्र और नारी व्यक्तित्व का स्वरूप
21	कु० शकुन्तला सिंह	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का अनुशीलन
22	एन० आर० इलाङम	हिन्दी और मलयालम में साहित्य समीक्षा के विकास का तुलनात्मक अध्ययन (1900 50)
23	श्रीमती तारादेवी विंदल	हिन्दी उपन्यास में मानव जीवन के स्वरूपों और आदर्शों का अनुशीलन
24	सूर्यनारायण मूर्ति	हिन्दी और तेलुगु के मध्यकालीन राम साहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन

25 राजेश्वर दयाल सक्सेना	स्वच्छन्दवादी समीक्षा और साहित्य चिन्तन
26 रमेशकुमार वाजपेयी	गोस्वामी तुलसीदास के प्रबन्ध और प्रगीत काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
27 जयनारायण मण्डल	हिन्दी उपन्यासो म चरित्र चित्रण की यथार्थवादी परम्परा
28 पी० जाज वबी	हिन्दी और मलयालम की गद्यशलियो का तुलनात्मक अध्ययन
29 व्रजभूषणसिंह आदर्श	हिन्दी के राजनैतिक उपन्यासो का अनुशीलन
30 कु० सरोज ओढेकर	बीसवी शताब्दी के मराठी और हिन्दी नाट्य साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
31 भगवानसिंह ठाकुर	आधुनिक हिन्दी काव्य पर गाधीवादी एव मार्क्सवादी प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन
32 पी० जयरमण	सुब्रह्मण्य भारती और निराला के काव्यो का तुलनात्मक अध्ययन
33 उमाशकर शुक्ल	प्रेमचन्दजी के बाद हिन्दी कहानी का विकास
34 सच्चिदानन्द पाण्डेय	छायावाद के अप्रमुख कवियो का साहित्यिक अध्ययन
35 नरेन्द्र वर्मा	प्रयोगवादी काव्य और साहित्य चिन्तन
36 हरीश वमन	भक्तिकालीन हिन्दी कवियों की श्रृगार-भावना एव अनुशीलन
37 बालकृष्ण शर्मा	मध्ययुग की नीति काव्य-परम्परा और रहीम
38 रामप्रसाद त्रिवेदी	आधुनिक समीक्षा सिद्धान्तो और शलियो के आधार पर प्रगतिवादी समीक्षा सिद्धान्त और शली का सापेक्षिक अनुशीलन
39 चन्द्रभूषण तिवारी	तुलसी-साहित्य म अलकार-योजना
40 रामविशाल चसोरिया	भारतेन्दु युग की काव्य भाषा का अनुशीलन
41 मुरारीलाल दुबे	हिन्दी उपन्यासों म चरित्र-सृष्टि के विविध स्वरूप, एक अनुशीलन
42 शिवप्रसाद मिश्र	सियारामशरण गुप्त और उनकी कृतियाँ
43 प्रकाश वाजपेयी	हिन्दी-उपन्यासों म यथार्थवाद का आरम्भ और विकास—एक अनुशीलन
44 कृष्णकान्त पाण्डेय	प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासो म नारी के स्वरूप और चरित्र का अनुशीलन

45	प्रवीणकुमार नायक	हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि पर चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों का अध्ययन
46	नन्हें सिंह राजपूत	हिन्दी के यथार्थवादी तथा समस्यामूलक नाटकों का अध्ययन
47	वी० आर० कृष्णन नायर	हिन्दी और मलयालम के काव्य रूपों का तुलनात्मक अनुशीलन
48	पवनकुमार तिवारी	हिन्दी कहानी के विकास का अध्ययन
49	वीरेन्द्रपाल श्रीवास्तव	गोस्वामी तुलसीदास सम्बन्धी शोधों एवं समीक्षाओं का अनुशीलन
50	परसो गिदवानी	हिन्दी तथा सूफी कवियों का तुलनात्मक अध्ययन
51	उमेशचन्द्र मिश्र	हिन्दी के छायावादी कवियों के साहित्य-चिन्तन और समीक्षा-कार्य का अनुशीलन
52	कु० गीता पाठक	छायावाद युग की गद्य शैलियों का अनुशीलन
53	रघुनन्दनप्रसाद तिवारी	मध्यकालीन हिन्दी भक्ति और रीतिकाव्य व राजस्थानी चित्रकला की समानताओं और प्रभावों का अनुशीलन
54	श्रीमती रूपकमल पारे	आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों की भूमिका पर कामायनी का अनुशीलन
55	जस्टिन अब्राहम	हिन्दी और मलयालम की छोटी कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन
56	विजयबहादुरसिंह	आधुनिक हिन्दी कविता की बृहत्त्रयी का तुलनात्मक समीक्षण
57	कु० प्रेमलता बाफना	छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि पर पन्त के काव्य का अनुशीलन
58	श्रीमती धनवती	आधुनिक कवयित्रियों की राष्ट्रीय कविता और सुभद्राकुमारी चौहान के राष्ट्रीय काव्य का अनुशीलन
59	मृदुला शर्मा	छायावादोत्तर हिन्दी-काव्य में मानव-व्यक्तित्व की परिकल्पना और स्वरूप
60	वी० पी० वासवदत्ता	आधुनिक हिन्दी के शास्त्रवादी और स्वच्छन्दतावादी साहित्य दर्शन और समीक्षा प्रणालियों का तुलनात्मक अनुशीलन

61	छविनाथ तिवारी	दमोह जिले की बोली के आधार पर बुन्देली के शब्द-सामर्थ्य का अध्ययन
62	वीरेन्द्रप्रसाद मिश्र	हिन्दी की स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय कविता और दिनकर के राष्ट्रीय काव्य का अनुशीलन
63	शशिशेखरानन्द मघानी	जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन
64	श्रीमती सुशीला गुप्त	आधुनिक हिन्दी-काव्य में प्रवृत्तिमूलक दार्शनिकता का विकास
65	कु० पद्मावती के०	हिन्दी और मलयालम के प्रगतिवादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
66	कु० शिवप्रिया महापात्र	हिन्दी के छायावादोत्तर प्रबन्ध-काव्यों के शिल्प-पक्ष का अनुशीलन
67	कृष्णदत्त अवस्थी	कृष्णायन काव्य पर संस्कृत ग्रन्थों के प्रभाव का आलोचनात्मक अध्ययन
68	सि० क्लेमेण्ट मेरी	हिन्दी का स्वातन्त्र्योत्तर विचारात्मक गद्य
69	श्रीमती निमला शर्मा	प्रसादोत्तर एतिहासिक नाटक
70	रामशरण सिंह	उन्नीसवीं शताब्दी की सूफी काव्य परम्परा तथा ख्वाजा अहमद का विशेष अध्ययन
71	कु० वी० सौन्दरवला	हिन्दी और तमिल के आधुनिक गद्य का विकास
72	सत्येन्द्रनाथ शुक्ल	अवधप्रदेश के आधुनिक जन-काव्य का अनुशीलन
73	रमेशचन्द्र जैन	हिन्दी-साहित्य में गीतिनाट्य का उद्भव और विकास
74	कु० शकुन्तला चौरसिया	प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी के काव्य के दार्शनिक पक्ष का अनुशीलन
75	श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय	प्रसादोत्तर हिन्दी नाट्य-साहित्य में नारी-भावना
76	देवेन्द्रनाथ पण्ड्या	शव चेतना और आधुनिक काव्य
77	देवनारायण अवस्थी	संस्कृत नायिका भेदों की विभिन्न परम्पराएँ और रीतिकालीन नायिका भेद—तुलनात्मक अध्ययन
78	श्यामनारायण शुक्ल	प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में यथार्थवादी प्रवृत्तियों का विकास

79 रामनरायणसिंह मधुर — हिन्दी के स्वातन्त्र्योत्तर ऐतिहासिक उपन्यास (1947-67 तक)

80 चलमर्ति सुब्बाराव — हिन्दी और तेलुगु के स्वातन्त्र्य पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन

81 रामधेनाथ द्विवेदी — हिन्दी की प्रगतिवादी काव्यधारा और डॉ० रांगेय राघव का काव्य

82 श्रीमती विमला महेता — हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी कहानी का अनुशीलन

83 नागेन्द्रसिंह — विदेशियों का आधुनिक हिन्दी काव्य—एक अनुशीलन (1900 से 1960)

84 कु० विमल श्रीवास्तव — अवधी के प्रमुख महाकाव्यों का वस्तुगत विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अनुशीलन

85 राजमल सराफ — मध्ययुगीन निर्गुण मार्गी ज्ञानाश्रयी कवियों के सामाजिक और सांस्कृतिक आदर्श

86 उपेन्द्रशरण त्रिपाठी — छायावादी युग के गद्य गीतों का अनुशीलन

87 हीरालाल बाछोतिया — निराला के गद्य साहित्य का अनुशीलन

88 रामाश्रय — नायक और प्रतिनायक के माध्यम से राष्ट्रीय नैतिक चेतना के विकास का अनुशीलन (1900-50 तक)

89 सूर्यप्रकाश मिश्र — हिन्दी साहित्य में रीति और शैली तत्वों का अनुशीलन

90 शशिधरन पिल्ले — स्वच्छन्दतावादी चेतना की भूमिका में निराला और जी० शंकर कुरुप के काव्य का तुलनात्मक अनुशीलन

91 मुरलीधरन पिल्ले — हिन्दी और मलयालम के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रकृति

92 कमलाप्रसाद पाण्डेय — उत्तर छायावादी-काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

93 कु० कमल रजावत — प्रसाद साहित्य में समाज दर्शन का अनुशीलन

94 आदित्यप्रसाद त्रिपाठी — काशिका बोली और उसके लोकगीतों का विवेचनात्मक अनुशीलन

95	आर्याप्रसाद त्रिपाठी	कबीर-साहित्य का सास्कृतिक अध्ययन
96	दसाई वर्गीश	आधुनिक हिन्दी और मल्यालम काव्य मे प्रकृति का उपयोग
97	कु० पी० रुक्मिणी	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और तलगु कविता का तुलनात्मक अनुशील्न
98	रामसेवक शर्मा	श्री रामनरेश त्रिपाठी क समग्र रचनात्मक साहित्य का अनुशील्न
99	रामेश्वरप्रमाद पाडे	आधुनिक हिन्दी कहानियो म यथार्थवादी प्रवतियो का विकास
100	कु० निशा था	प्रमुख छायावादी कवियो की गद्य रचनाओ का अनुशील्न
101	गोवि दप्रमाद राय	प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कलापक्ष का अनुशील्न
102	हमन्तप्रकाश गौतम	कामायनी के पश्चात हिन्दी प्रबन्ध काव्यो का विकास
103	जगन्निवासराम	आधुनिक हिन्दी साहित्य मे महाकाव्य का स्वरूपगत विकास
104	कु० प्रमिला तिवारी	हिन्दी उपन्यास साहित्य मे अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना का अनुशील्न
105	श्यामसुन्दर दुबे	बिहारी सतसई का सास्कृतिक अध्ययन
106	श्रीमती माधुरी मिश्र	भारतीय महाकाव्य-परम्परा मे कामायनी
107	प्रमनारायण अग्निहोत्री	निराला के काव्य का कलापक्षीय परिशील्न
108	कु० एम० राधादेवी	श्रीमती महादेवी वर्मा और श्रीमती बालमणि अम्मा की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय (सन १९६५ से १९७१ तक)

पी एच० डी०

1	डा० प्रभाशकर मिश्र	राहुल साकृत्यायन के कथा साहित्य का अध्ययन
2	डा० कान्तिकुमार	छत्तीसगढी की जनपदीय शब्दावली
3	डा० छविनाथ त्रिपाठी	मध्यकालीन हिन्दी कविता के काव्य सिद्धान्त का अध्ययन (1200 1500)

4	डॉ० चरणदास शास्त्री	तुलसी साहित्य म प्रतिपादित नतिक मूल्यो का अध्ययन
5	डॉ० सुधीन्द्रकुमार	रीतिकालीन शृगार भावना के स्रोत
6	डॉ० कृष्णा शर्मा	हिन्दी और कश्मीरी सूफीतर सतकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन
7	डॉ० सीता बिम्ब्रौ	हिन्दी क निगुण सत काव्य म सगीततत्व (1400-1700)
8	डा० प्रमप्रकाश भट्ट	हिन्दी गद्य को निराला की देन
9	डा० शकुन्तला	पुष्टिमार्गीय वचनामृत-साहित्य — एक अध्ययन
10	डा० जियालाल हण्डू	कश्मीरी और हिन्दी सूफी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
11	डा० शान्तिप्रकाश वर्मा	प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी गद्य को देन
12	डा० जॉन हेनरी आनन्द	पाश्चात्य विद्वानों की हिन्दी भाषा और साहित्य को देन (1800-1900)
13	डा० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव	मालवा की आधुनिक हिन्दी साहित्य को देन (1900 1960)
14	डा० कृष्णमुरारीलाल मघोक	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य को पजाबी लेखको की दन (1900 1960)
15	डा० ब्रजमोहन शर्मा	छायावादी काय का भावात्मक सौन्दय
16	डा० रामफल	हिन्दी उपन्यासो मे वातावरण-तत्त्व
17	डा० जवाहरलाल हण्डू	कश्मीरी तथा खडी बोली (हिन्दी) के लोकगीतो का तुलनात्मक अध्ययन
18	डॉ० शिबनकृष्ण रैना	हिन्दी और कश्मीरी लोकोक्तियो का तुलनात्मक अध्ययन
19	डा० ओमप्रकाश भारद्वाज	दशम ग्रन्थान्तर रामावतार तथा कृष्णावतार का काव्यशास्त्रीय अध्ययन
20	डॉ० रमेश अगीरस	निराला काव्य का मनावज्ञानिक अध्ययन
21	डॉ० पुष्पा शर्मा	बीसवी शताब्दी के हिन्दी काव्य साहित्य मे धम का स्वरूप
22	डॉ० पुष्पलता शर्मा	गाथासप्तशती और रीतिकालीन शृगारी सतसइयो का तुलनात्मक अध्ययन
23	डॉ० कमलकुमारी गुप्त	राजनीतिक, सामाजिक व सास्कृतिक सन्दभ

	मे हिन्दी निबन्ध साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन
24 डा० राजकुमार	छायावादोत्तर काव्य मे प्रतीक एव बिम्ब विधान (1937 65)
25 डॉ० मदनलाल शर्मा	हिन्दी-काव्य मे युद्धवणन वशिष्टय का अन्वेषण (1140 1857)
26 डा० हुक्मचद	हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल म राम और कृष्ण-काव्य मे नवीन जीवन मूल्यो का अन्वेषण (1900 50)
27 बलराज शर्मा	नरहरदास की पौरुषेय रामायण का तुलनात्मक अध्ययन
28 डॉ० पुष्पलता अवस्थी	हिन्दी तथा पजाबी मुहावरा का तुलनात्मक अध्ययन
29 डा० राममूर्ति शर्मा	श्री रामन श त्रिपाठी और उनका साहित्य
30 डा० दामोदर वशिष्ट	कविवर नजीर अकबराबादी के हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन
31 डा० लालच *	नई कहानी पर अस्तित्ववाद का प्रभाव (सन 1950 65)
32 डॉ० उमाशशि सोनी	सन्तकाव्य का सामाजिक पक्ष
33 डा० पवनकुमार जन	रीतिकालीन काव्य विधाओ का शास्त्रीय अध्ययन
34 डॉ० शिवाशकर पाण्डेय	रामस्नेही सम्प्रदाय की दार्शनिक पृष्ठभूमि
35 डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा	नयी कविता व नाट्य-काव्यो का रूप तथा अभिव्यजना की दृष्टि से अध्ययन
36 लक्ष्मणसिंह	हाथरस के हिन्दी सागा का इतिहास और उनकी कला
37 लक्ष्मीनारायण शर्मा	हिन्दी-कविता म पुराख्यान-तत्त्व (1947 67)
38 भीमसिंह मलिक	जायसी-काव्य का सास्कृतिक अध्ययन
39 रामकुमार शर्मा	समसामयिक हिन्दी गीति काव्य-परम्परा और प्रयोग
40 श्रीमती चन्द्रकान्ता सूद	पजाब मे हिन्दी पत्रकारिता का विकास (1900-1960)
41 आशा मोहन्ता	हिन्दी के उपन्यासों म पारिवारिक जीवन-चित्रण

अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय (सन् १९६२ से आगे)

क्रम	नाम	विषय
1	सत्या शर्मा	पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य का सैद्धान्तिक तथा भक्तिपरक अध्ययन
2	मलिक मुहम्मद	कृष्णभक्ति काव्य पर आलवार भक्तों का प्रभाव (9वीं शताब्दी)
3	नजीर मुहम्मद	कबीर के काव्य रूपों का आलोचनात्मक अध्ययन
4	जगदीश्वर वार्ष्णेय	हाथरस के तुलसी साहब और उनका काव्य
5	कुञ्जबिहारी शर्मा	हिन्दी छायावादी कवियों पर अंग्रेजी रोमांटिक कवियों का प्रभाव
6	श्रीमती माजिदा असद	रसखान तथा भक्ति भावना
7	वेल्लायणि अर्जुनन	हिन्दी और मलयालम की समान शब्दावली का अध्ययन
8	जाफर रजा जैदी	17वीं 18वीं शती के बिलग्राम के मुस्लिम कवियों का हिन्दी में योगदान
9	सुभद्राकुमारी	हिन्दी उपन्यास परम्परा और प्रयोग (1937 1962)

हिन्दी इन्स्टीट्यूट आगरा विश्वविद्यालय

क्रम	नाम	विषय
1	एम० जार्ज	तु[illegible] तथा मलयालम के रामभक्त कवि [illegible]
2	गोविन्दम् नेमा	रामानन्द सम्प्रदाय के कुछ भक्त कवि
3	श्रीमती निर्मला भार्गव	भक्ति साहित्य और संस्कृत में भृगु ऋषियों की देन
4	[illegible]	हिन्दी समास रचना का अध्ययन
5	[illegible]कुमार सक्सेना	[illegible] तथा उसकी परम्परा
6	सुशील [illegible]	हिन्दी और गुजराती के निर्गुण-सन्तकाव्य
7	[illegible] मिश्र	[illegible] हिन्दी और [illegible] [illegible]
8	[illegible] त्रिपाठी	[illegible] का अध्ययन
9	[illegible]	[illegible] का भाषा-[illegible] अध्ययन

10	प्रतापसिंह चौहान	आधुनिक हिन्दी-काव्य पर अरविन्द दर्शन का प्रभाव

उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

1	श्रीमती नान अस्थाना	हिन्दी उपन्यास में ग्राम समस्याएँ
2	विद्यासागर	हिन्दी साहित्य में भाषा चित्रकाव्य
3	श्रीमती नागलक्ष्मी	मथिलीशरण गुप्त और सुब्रह्मण्य भारती—तुलनात्मक अध्ययन
4	भीमसेन निमल	तेलुगु के कवि पुरुषोत्तम और उनके हिन्दी नाटक
5	मनोरमा जैन	हिन्दी प्रबन्धकाव्य में नारी भावना
6	रामकुमार खण्डेलवाल	भक्तिकालीन हिन्दी-काव्य में प्रेमभावना
7	वेदप्रकाश शास्त्री	श्रीमदभागवत का सूरदास पर प्रभाव
8	सरला सहगल	सूर का वात्सल्य और शृंगार
9	ललित कुमार पारिख	सूरदास और नरसी मेहता का तुलनात्मक अध्ययन
10	*ललित कुमार पारिख*	*पलटूदास का व्यक्तित्व और कृतित्व*
11	श्रीनिवास आचार्य	प्रेमचन्द और तेलुगु सामाजिक उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन

कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता

1	श्रीमती अणिमासिंह	मथिली लोकगीत
2	श्रीमती प्रतिमा अग्रवाल	हिन्दी मुहावरे—एक अध्ययन
3	प्रशर्मा झा	हिन्दी सन्तकाव्य के दार्शनिक स्रोत
4	सत्तनारायण उपाध्याय	दादूदयाल—जीवन दर्शन और काव्य
5	कृष्णविहारी मिश्र	कलकत्ते की हिन्दी पत्रकारिता का उदभव और विकास
6	कमला सघी	लालदास रचित कृष्णरस सागर का पाठालोचन एवं साहित्यिक अनुशीलन
7	रामेश्वरप्रसाद माथुर	मलिक मुहम्मद जायसी का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन

काश्मीर विश्वविद्यालय

1	डॉ० अयूब खा	निराला के काव्य में दार्शनिकता
2	श्रीमती मोहिनी कौल	लल्लेश्वरी और कबीर का तुलनात्मक अध्ययन

3 अमरनाथ शर्मा — दिनकर और आज़ाद—तुलनात्मक अध्ययन

गुजरात विश्वविद्यालय

1 अम्बाप्रसाद शुक्ल — कृष्णदास का काव्य
2 रमाकान्त शर्मा — आधुनिक हिन्दी-कविता

गोरखपुर विश्वविद्यालय

1 दिलीपनारायण मिश्र — हिन्दी रसशास्त्र का आलोचनात्मक अध्ययन
2 परमानन्द श्रीवास्तव — प्राचीन और नवीन हिन्दी कहानी रचना प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन
3 श्रीमती गिरीश रस्तोगी — हिन्दी नाटको म सगीत
4 त्रिभुवननाथ चौबे — रामचरित मानस की टीकाओ का समालोचनात्मक अध्ययन
5 माहेश्वरदत्त पाण्डेय — आधुनिक हिन्दी तथा बगला नाटको का तुलनात्मक अध्ययन
6 रामदेव शुक्ल — मध्यकालीन हिन्दी कविता मे चित्रित भारतीय सस्कृति—(1400-1600 ई०)
7 श्रीमती तुलसी मिश्र — रामचरित मानस, वाल्मीकि रामायण एव अध्यात्म रामायण के नारी-पात्रो का तुलनात्मक अध्ययन
8 घनेश्वरप्रसाद शुक्ल — म० युगलानन्दशरण और उनकी परम्परा के शृगारी रामभक्त
9 रामनारायण पाण्डेय — रीतिकालीन हिन्दी-कविता पर सस्कृत कविता का प्रभाव
10 विश्वनाथप्रसाद तिवारी — छायावादोत्तर हिन्दी गद्य साहित्य

जबलपुर विश्वविद्यालय

1 डॉ० श्रीनकुमार — तुलसी के काव्य म तत्वदर्शन
2 डॉ० श्रीशकुमार — रीतिकाव्य म शाश्वत तत्व
3 धरमचन्द जैन — निराला की भाषा
4 श्रीमती सुमन — कामताप्रसाद गुरु—व्यक्तित्व और कृतित्व
5 पुरुषोत्तम गुप्त — तुलसीदास के काव्य म नैतिक मूल्य

जोधपुर विश्वविद्यालय

1 महावीरसिंह गहलोत — सूरदास का शृगार-वर्णन

2	अम्याचन्द भण्डारी	राजस्थानी का मध्यकालीन सगुण भक्तिकाव्य
3	कन्हैयालाल कल्ला	हिन्दी काव्य पर योगदशन का प्रभाव
4	पुरुषोत्तमलाल मेनारिया	राजस्थानी साहित्य के सन्दभ म श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी काव्य
5	मदनलाल डागा	आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन (1901 1960)
6	मालतीदेवी माहेश्वरी	मध्यकालीन हिन्दी-काव्य म शृगार-सामग्री
7	शशिप्रभा शास्त्री	हिन्दी के पौराणिक नाटको क मूल स्रोत
8	गोविन्द सीताराम गुर्ये	हिन्दी और मराठी भक्तिकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन
9	नवलकिशोर मिश्र	आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध-काव्यो म पारिवारिक चित्रण
10	नारायणदत्त श्रीमाली	आधुनिक हिन्दी-काव्य म चित्रित सस्कृति की विवेचना
11	मोतीलाल गुप्त	प्रताप रासो का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
12	रामप्रसाद दधीच	महाराजा मानसिह (जोधपुर) व्यक्तित्व और कृतित्व
13	शकुन्तला उपाध्याय	हिन्दी काव्य मे वात्सल्य (1400 1950)
14	ओमप्यारी गहलोत	राजस्थानी कथा साहित्य
15	श्रीमती कृष्णा हुक्कू	हिन्दी साहित्य मे नारी मनोवृत्ति का मनो वैज्ञानिक रूप
16	तारा सापट	राजस्थानी का छन्द विधान
17	नारायण शर्मा	राजस्थानी के सन्त सम्प्रदाय और उनका साहित्य

दिल्ली विश्वविद्यालय (सन 1962 से आगे)

1	नरेन्द्रकुमार	तुलसीदास के काव्य म अलकार योजना
2	बहादुरसिंह	दिल्ली नगर म आजकल प्रयुक्त खड़ी बोली के विभिन्न रूप
3	कलाशपति ओझा	हिन्दी नाटक में त्रासद-तत्व
4	गोपाल शर्मा	सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावली का समीक्षात्मक अध्ययन
5	निर्मल	आधुनिक हिन्दी नाटयधारा व नाटय-सिद्धान्त

6	मान्धाता ओझा	हिन्दी साहित्य म समस्या नाटक
7	सुदर्शन मल्होत्रा	आधुनिक हिन्दी प्रब घ-काव्यो म त्रासद तत्त्व
8	इन्द्रनाथ चौधरी	आधुनिक हि दी और बंगला की काव्यशास्त्रीय तुलना
9	जयनारायण गौतम	उपमा अलकार का विवेचन
10	प्रेम कुमार	रसाभास का विवेचन—हि दी रीतिकाव्य के परिवेश म
11	रा मकुमार च ल	चिन्तामणि त्रिपाठी और उनका काव्य
12	सत्यपाल चुघ	प्रेमच दोत्तर हि दी उपन्यास का शिल्प
13	हरगुलाल	मध्ययुगीन कृष्णकाव्य म सामाजिक जीवन कीअभिव्यक्ति
14	महेन्द्रकुमार	कबीर की भाषा
15	विनयकुमार शर्मा	महाभारत का आधुनिक हिन्दी काव्य पर प्रभाव
16	उषा पुरी	रीतिकालीन कविता म भक्ति-तत्त्व
17	के० ए० जमुना	सूरसागर और नलयर दिव्य प्रब धम म कृष्ण कथा
18	काननबाला मेहर	निगुण काव्य म शा त रस
19	कुसुमलता अग्रवाल	आधुनिक हि दी-काव्य म बिम्ब विधान
20	गिरिराजकिशोरी कौशिक	हि दी काव्य म नखशिख-वर्णन
21	शान्ति दलाल छाबड़ा	महाराज रघुनाथसिंह—व्यक्तित्व एव कृतित्व
22	चन्द्रका त भारद्वाज	हिन्दी म अतुका त छ द योजना का विकास
23	जगदीशकुमार	आधुनिक हिन्दी साहित्य पर बौद्ध प्रभाव
24	जगदीशचन्द्र भारद्वाज	कृष्ण काव्य मे लीला-वर्णन
25	दर्शनलाल सेठी	जायसी का काव्य शिल्प
26	दशरथसिंह भाटी	हि दी म श ब्दालकार विवेचन
27	प्रतिमा प्रियदर्शिनी	छायावाद का काव्य शिल्प
28	ब्रजभूषण शर्मा	मध्यकालीन हिन्दी स त साहित्य म मानवता वादी विचारधारा
29	रमाशकर मिश्र	हिन्दी साहित्य म उपनिवासियो का अध्ययन
30	राजाराम	आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य म प्रगति

31	रामलाल वर्मा	हिन्दी काव्यशास्त्र मे शृगाररस का विवेचन
32	विमला मेहता	निर्गुण कवियो के सामाजिक आदर्श
33	वेन्न आय	कामायनी की पारिभाषिक शब्दावली
34	सन्तोष जैन	निराला का काव्य
35	सरोज जग्गी	हिन्दी साहित्य मे आत्मकथा
36	सावित्री अवस्थी	नन्ददास—उनका जीवन और काव्य

नागपुर विश्वविद्यालय (सन 1962 स आगे)

1	आकारनाथ शर्मा	हिन्दी-साहित्य म निबन्ध का विकास
2	गकर शेप	हिन्दी और मराठी के कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
3	रमशचन्द्र गगराडे	निमाड के सन्त कवि सिंगाजी
4	चन्द्रकुमार अग्रवाल	छत्तीसगढ़ी का लोक साहित्य
5	चन्द्रप्रकाश सिंह	हिन्दी नाटय-साहित्य और रगमच की मीमासा
6	एन० के० पशीन	हिन्दी-काव्य म विरह-वणन
7	एम० माधवराव	हिन्दी उपन्यास और कथाकार चतुरसेन शास्त्री
8	श्यामसुन्दर वर्मा	द्विवदी-युग के पश्चात हिन्दी गद्यशैली का विकास (1921 1950)
9	भारतन्दु सिन्हा	पद्माकर का काव्य
10	रामनारायण सोनी	छायावादी काव्य क दार्शनिक और सास्कृतिक पक्ष का अनुशीलन
11	सोहनलाल शर्मा	विदर्भ-क्षेत्रीय गोंडी बोली का लोक साहित्य

पजाब विश्वविद्यालय (सन 1962 से आगे)

1	धमपाल	हिन्दी-साहित्य पर राजनीतिक आन्दोलनों का प्रभाव (1906-1947)
2	रघुवीरशरण	हिन्दी भाषा का रूप वैज्ञानिक तथा वाक्य वैज्ञानिक अध्ययन
3	रतनसिंह	दशम ग्रन्थ म पौराणिक रचनाओ का अध्ययन
4	विद्यानाथ गुप्त	हिन्दी-साहित्य मे राष्ट्रीयतावाद

7	राजनारायण राय	सूर वर्णित रासलीला का दार्शनिक एव काव्य-शास्त्रीय अध्ययन
8	राम एकबाल साह	वात्सल्य रस के विकास मे सूर का स्थान
9	लक्ष्मीकान्त सिन्हा	हिन्दी उपन्यास-साहित्य का उदभव और विकास
10	विधाता मिश्र	हिन्दी के विशेष सन्दर्भ मे प्राकृत का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन
11	वीरेन्द्र श्रीवास्तव	अपभ्रंश का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
12.	सम्पत्ति आर्याणी	मगही भाषा और साहित्य का अध्ययन
13	अरुण शास्त्री पोद्दार	कबीरकालीन भारतीय समाज
14	रामतवाया शर्मा	तुलसी साहित्य पर सस्कृत के अनाय प्रबन्ध-काव्यो की छाया
15	विमलसिंह कुमार	मधुर रस-स्वरूप और विकास (मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ म)
16	इन्द्रमोहनकुमार सिन्हा	प्रेमचन्द की कहानियो के आधार पर तदयुगीन समाज म जीवन का अध्ययन
17	ब्रह्मदेव मगल	सूर साहित्य में सामाजिक सस्थान
18	रमाशकर श्रीवास्तव	हिन्दी कथा साहित्य मे हास्य और व्यग (1870-1936)
19	रामदीन मिश्र	चित्रकाव्य सैद्धान्तिक विवेचन एव ऐतिहासिक विकास
20	अमरनाथ सिन्हा	आचाय कवि बैजनाथ द्विवेदी जीवनी और साहित्य
21	नन्दकिशोर राय	सन्तमत का आचार दशन
22	परमानन्द पाठक	नन्ददास दशन साहित्य तथा शास्त्रीय तत्त्व
23	बजरग वर्मा	उमापति उपाध्याय और उसका नवपारिजात मगल
24	मातादीन शर्मा	भारतेन्दुयुगीन साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन
25	शोभाकान्त मिश्र	भारतीय काव्यशास्त्र में गुणधारणा
26	श्रीकान्त उपाध्याय	रामचरितमानस पर शव और शाक्त प्रभाव
27	श्रीकान्त मिश्र	सूर-वर्णित कृष्ण कथा का पौराणिक आधार
28	रामचन्द्रप्रसाद	आधुनिक हिन्दी-आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

3 बद्रीनारायण झा — गोविन्दठाकुर तथा उनका काव्य
4 वंशीधर पण्डा — हिन्दी कोश-साहित्य का विकास सिद्धान्त पूर्व परम्परा एव शास्त्रीय विवेचन (1765-1962)
5 कुमारी सुमति वाले — हिन्दी और मराठी निबन्ध साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

बिहार विश्वविद्यालय

1 अरविन्दनारायण सिंह — विद्यापति साहित्य म प्रेम-वर्णन
2 अवधेश्वरप्रसादसिंह 'अरुण' — भक्तिकालीन हिन्दी-कवियो का वात्सल्य
3 श्रीमती आशाकिशोर — आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास वर्णन
4 उमाशंकरसिंह — हिन्दी वीरकाव्य की मुक्तक परम्परा
5 के० सुब्रह्मण्यम् — भारती और भारतेन्दु की कृतियो म राष्ट्रीय धारा—एक तुलनात्मक अध्ययन
6 कामेश्वर शर्मा — भागलपुर जिले की बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
7 कामेश्वरप्रसाद सिंह — प्रसाद की काव्य प्रवृत्तियाँ
8 कृष्णन दन दीक्षित पीयूष — नायिका भेद उद्भव और विकास
9 केदारनाथ लाभ — हिन्दी शवकाव्य—उद्भव और विकास
10 नन्दकुमार राय — छायावादी कवियो का गद्य साहित्य
11 परम मित्र — हेमचन्द्र के अपभ्रंश सूत्रो की पृष्ठभूमि और उनका भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
12 पूर्णानन्ददास — मैथिली लोकगीत
13 प्रेमनारायण सिन्हा — आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य मे सम सामयिक जीवन की अभिव्यक्ति
14 प्रमोदकुमार सिंह — विद्यापति पदावली के आकर-स्रोत
15 बमबमसिंह 'नीलकमल' — अब्दुर्रहीम खानखाना और उनका काव्य
16 बमशम्भुदत्त झा — काव्य-दोषो का उद्भव और विकास
17 भुवनेश्वर मिश्र माधव — राम-साहित्य मे मधुरोपासना
18 महेन्द्र मिश्र मधुकर — उपमा अलंकार का उद्भव और विकास
19 रमाकान्त पाठक — दोहा छन्द का उद्भव और विकास

20	रामदेव त्रिपाठी	भाषा विज्ञान की भारतीय परम्परा और पाणिनि
21	रामान दसिंह	स तों की सहज साधना
22	रामनारायणसिंह	हि दी-उप यास मे आचलिक कथा तत्त्व का विकास
23	विद्यानाथ मिश्र	प्राचीन हि दी-काव्य मे अहिंसा-तत्त्व
24	विनयकुमार	हि दी के समस्या नाटक
25	शुकदेवसिंह	कबीर के बीजक का भाषा शास्त्रीय अध्ययन
26	श्यामन दन प्रसाद किशोर	हि दी महाकाव्यो की शिल्पविधि का विकास
27	सदान दसिंह	आधुनिक हि दी-साहित्य मे सौ दय चेतना
28	श्रीमती सरोजप्रसाद	प्रेमच द के उप यासो म समसामयिक परिस्थितियो का प्रतिफलन
29	सियाशरणप्रसाद	स्वात त्र्योत्तर हि दी-उपन्यास का विहार के स दभ म अध्ययन
?0	सुरे द्रनाथ दीक्षित	भरत की आधुनिक नाटयशास्त्र को देन
31	सुरे द्रमोहन प्रसाद	शाक्त द न और उसका हि दी वैष्णव कवियो पर प्रभाव
32	हरिमोहन मिश्र	आधुनिक हि दी-आलोचना

भागलपुर विश्वविद्यालय

1	बदरीदास	हि दी उपन्यास पष्ठभूमि और परम्परा (1875-1927)
2	रमाशकर तिवारी	सूर का शृगार वणन
3	विष्णुकिशोर झा बेचन	आधुनिक हि दी कथा साहित्य और चरित्र-विकास
4	सिद्धनाथकुमार सि हा	हि दी एकाकी शास्त्रविधि का विकास
5	बटकृष्ण	हि दी की वीरकाव्य धारा
6	राधारमण सिन्हा	भारत दुयुगीन निब ध
7	नागेश्वर शर्मा	मगही लोकगाथाओ का अध्ययन
8	हरिदामो र	आधुनिक हि दी-कविता मे राष्ट्रीयभावना (1857- 947)
9	जग नाथ ओझा	हि दी उप यासों के सिद्धान्त और विनियोग पर शरद्च द्र का प्रभाव

10 नरेन्द्रनाथ सिन्हा — हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप विकास
11 भागीरथप्रसाद मान — कबीर साहित्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली

मद्रास विश्वविद्यालय

1 शरद्गानु नायडू — कंबरामायणम् और रामचरितमानस

महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

1 मदनप्रतापसिंह — भगवन्तराय खीची और उनके मण्डल के कवि
2 माणिकलाल चतुर्वेदी — गुजरात की हिन्दी काव्य-परम्परा तथा आचार्य कवि सारिन्द निरालाई
3 हनुमानदास चकोर — हिन्दी का स्तोत्र-साहित्य
4 रामकुमार गुप्त — हिन्दी साहित्य को गुजरात के सन्तकवियों की देन
5 प्रतापनारायण झा — मैथिलीनाटक—उद्भव और विकास
6 भवरलाल जोशी — सूरदास और नरसी महेता का तुलनात्मक अध्ययन
7 वसन्तभास्कर जोशी — महाकवि निराला—व्यक्तित्व
8 कैलाशचन्द्र शर्मा — भक्तमाल और हिन्दी-काव्य में उसकी परम्परा
9 रमणलाल पाठक — सन्तकवि अखा—जीवनी और हिन्दी-कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन

मैसूर विश्वविद्यालय

1 एम० एस० कृष्णमूर्ति — हिन्दी और कन्नड की साहित्यिक प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन
2 कृष्णस्वामी अयगार — हिन्दी कन्नड अलकारशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन

राजस्थान विश्वविद्यालय

1 क० एल० शर्मा — हाड़ौती बोली और साहित्य
2 एस० डी० शर्मा — काव्य दोष—उद्भव और विकास

3 यू० एस० भटनागर	हेमरतन कृत 'पद्मिणी चौपाई' एक परिपूर्ण आलोचनात्मक सस्करण तथा उसकी भाषा राजस्थानी (वि० स० 1647) का वैज्ञानिक अध्ययन
4 सी० एल० शर्मा	सस्कृत साहित्यशास्त्र और महाकवि तुल्सीदास
5 आर० पी० शर्मा	आचाय श्री परशुराम देव—एक साहित्यिक अध्ययन
6 श्रीमती कमला भण्डारी	मध्यकालीन हिन्दी-कविता पर शवमत का प्रभाव
7 कृष्णकुमार शर्मा	राजस्थानी लोकगाथाएँ
8 प्रेमदत्त शर्मा	प्रसाद-साहित्य की साम्कृतिक पष्ठभूमि
9 भवरलाल जोशी	काश्मीर शव दशन और कामायनी
10 केदारनाथ शर्मा	हिन्दी साहित्य की नयी दिशा मे अनेय की प्रयोगात्मक प्रगति का मूल्याकन
11 नारायणसिंह भाटी	डिंगल गीत साहित्य
12 मनोहरलाल शर्मा	राजस्थानी बाल साहित्य—एक अध्ययन
13 वसन्तकुमार मिश्र	हिन्दी-साहित्य म शिव कथा का उदभव और विकास
14 कन्हैयालाल सीवर	दादूपन्थी काव्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन
15 जयसिंह नीरज'	राजस्थानी चित्रकला (सन 1600-1900) के परिपाश्व म हिन्दी कृष्णकाव्य का अध्ययन
16 नमीचन्द्र श्रीमाल	पश्चिमी राजस्थानी (मारवाडी-मेवाडी) का अथ विचार
17 मन्न केवलिया	हिन्दी खण्डकाव्य—एक अध्ययन
18 राधेश्याम शर्मा	प्रसाद के नाटकीय पात्र—मनोवैज्ञानिक अध्ययन
19 सरनामसिंह शर्मा 'अरुण	कबीर निदशन
20 हरिचरण लाल शर्मा	परम्परा और प्रगति की भूमिका पर नयी कविता का मूल्याकन
21 रमेशचन्द्र शर्मा	हिन्दी साहित्य का कवित्त साहित्य

लखनऊ विश्वविद्यालय

1 अमरपालसिंह	तुल्सी पूव राम-साहित्य

2 इन्द्रपालसिंह — अपभ्रंश साहित्य में शृंगार
3 ओमप्रकाश त्रिवेदी — हरिऔध और उनका काव्य
4 कलाशचन्द्र अग्रवाल — शेखावटी बोली का वर्णनात्मक अध्ययन
5 गिरीशचन्द्र त्रिपाठी — हिन्दी का जासूसी साहित्य
6 चन्द्रशेखर — तुलसी की दार्शनिक शब्दावली का सांस्कृतिक इतिहास
7 जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव — बीसवीं शताब्दी का रामकाव्य
8 दिनेशचन्द्र गुप्त — भक्तिकालीन-काव्य में राग और रस
9 श्रीमती नीलिमा सिंह — आधुनिक हिन्दी कविता में ग्राम्य जीवन
10 प्रकाशनारायण दीक्षित — सन्त-साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि
11 डा० प्रतापनारायण टण्डन — समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की प्रवृत्तियाँ
12 कु० प्रभा शर्मा — प्रेमचन्द के समवर्ती कथा साहित्य में लोक-संस्कृति
13 बुद्धिसागर — कूर्माञ्चलीय कहावतों का अध्ययन
14 भगवतशरण अग्रवाल — हिन्दी उपन्यास और राजनीतिक आन्दोलन
15 भाग्यवती सिंह — हिन्दी रामकथा-काव्य में कला
16 श्रीमती मंजु सिंहल — तुलसीदास और मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में ऐहिक जीवन आदर्श का तुलनात्मक अध्ययन
17 मदनगोपाल गुप्त — 15वीं व 16वीं शती की हिन्दी कविता की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
18 मातीराजू — हिन्दी की विधि शब्दावली
19 रामअँजोरसिंह — तुलसी के काव्य में विशेषणों का प्रयोग
20 रामशंकर शुक्ल — हिन्दी साहित्य में दामिनी-काव्य की परम्परा
21 रुद्रनाथ शर्मा — नेपाल के हिन्दी कवि और लेखक—एक अध्ययन
22 लक्ष्मीकान्त मिश्र निर्मल — हिन्दी में सवैया साहित्य
23 शिवकान्त शुक्ल — हिन्दी के प्रबन्ध काव्य (सं० 1700 से 1900 वि० तक)
24 कु० शकुन्तला सिंह — दो दशक: 1937 ई० से 1947 तक तथा 1947 से 1957 ई० तक हिन्दी साहित्य
25 कु० चन्द्रकुमारी — तुलसी की काव्य प्रतिभा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

26	श्यामसु दर	आधुनिक अवधी का य—एक अध्ययन
27	स तराम 'अनिल'	क नौजी लोकसाहित्य—एक अध्ययन
28	सरयूप्रसाद अग्रवाल	अवध के स्थान-नामा का भाषा-वज्ञानिक अध्ययन
29	सुबोधच द्र	राहुल का कथा-साहित्य
30	सूयप्रसाद दीक्षित	छायावादी कवियो का गद्य साहि य—एक अध्ययन
31	हरनारायण सिंह	छायावादी काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि
32	हरिनाथसिंह तोमर	स त पल्टूदास का सामाजिक द न और काव्य प्रतिभा
33	श्रीमती हेम भटनागर	हि दी साहित्य के शृगार युग म सगीत का य (स० 1700 से 1900 वि० तक)
34	ज्ञानशकर पाण्डेय	अवधी क्रियापद से रचना
35	शशिभूषण सिंहल	हि दी उप यास की प्रवत्तियो का विकास (मुशी प्रेमच द से 1960 ई० तक) (डी० लिट०)

विश्वभारती

1	न दकिशोर सिंह	कुरमाली बोली
2	कु० चचल वर्मा	अपभ्रश कथा साहित्य

श्रीवेंकटश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति

1	पी० आदेश्वरराव	हि दी और तेलुगु स्वच्छ दतावादी कविता का तुलनात्मक अध्ययन
2	जनादनराव चेलेर	व द और उनका साहित्य
3	भारतभूषण	केशव की भाषा
4	राजमल बोरा	भूषण और उनका साहित्य
5	के० रामनाथन	हि दी और तलुगु क वष्णव भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
6	व० वेंकटरमण राव	रीतिकालीन का य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

शिवाजी विश्वविद्यालय (कोल्हापुर)

1	उमा वणिक	हि दी नाटय साहित्य म नारी भावना और मराठी नाटय साहित्य से प्रासगिक तुलना (1850-1950)

सरदार पटेल विश्वविद्यालय

1	ईश्वरलाल देसाई	हिन्दी गुजराती राष्ट्रीय कविता का तुलनात्मक अध्ययन (1920-47)
2	केशरीनन्दन मिश्र	सेठ गोविन्ददास—कला एवं कृतित्व
3	तारा सन्त	हिन्दी की गद्य लेखिकाएँ
4	देवीसहाय गुप्त	श्रीस्वामीनारायण सम्प्रदाय का हिन्दी साहित्य
5	नवीन मेहता	हिन्दी और गुजराती की नयी कविता
6	पूनमचन्द दइया	पन्त' के काव्य में सौन्दर्य एवं दर्शन
7	प्रभातचन्द्र शर्मा	प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास
8	भगतसिंह नेगी	हिन्दी साहित्य को कूर्मांचल की देन
9	मदनकुमार जानी	गुजरात एवं राजस्थान के मध्यकालीन सन्त कवि
10	मन्वीरसिंह चौहान	गुजरात के हिन्दी-कवि दयाराम
11	रमेश पण्डया	हिन्दी कहानी साहित्य विविध रूप
12	रामलखन शुक्ल	साधारणीकरण—शास्त्रीय अध्ययन
13	श्रीराम नागर	हिन्दी की प्रयोगशील कविता और उसके प्रेरणा स्रोत (1943 1960)
14	रघुवीरशरण 'व्यथित'	व्यभिचारी भावों का शास्त्रीय अध्ययन
15	सुरेशचन्द्र त्रिवेदी	रीतिकाव्य और औचित्य-सम्प्रदाय

इलाहाबाद विश्वविद्यालय (1964 से 70 तक)

डी० लिट०

1	भोलानाथ	आधुनिक हिन्दी-साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
2	मीरा श्रीवास्तव	कृष्णकाव्य में सौन्दर्यबोध और रसानुभूति (सं० 1375 1750)
3	राम[illegible] मिश्र	मध्ययुग के हिन्दी सूफी सन्त-काव्य का अप्रस्तुत विधान (1400-1600)
4	सुरेश [illegible]	हिन्दी उपन्यास-साहित्य में मानवतावादी तत्त्वों का अध्ययन

डी० फिल०

1	नित्यानन्द तिवारी	क्रिटिकल स्टडी ऑव द ले आव लौरिक एण्ड चन्दा एण्ड ए च दायन आव मुल्ला दाऊद
2	शीला गुप्त	प्रेमचन्द के उपन्यासों एवं उनकी कहानियों का आलोचनात्मक अध्ययन
3	योगेन्द्र सिंह	हिन्दी वैष्णव भक्ति काव्य में निहित काव्यादर्श तथा काव्य के शास्त्रीय सिद्धान्त (सन् 1400 से 1700)
4	राजेन्द्रकुमार वर्मा	हिन्दी कृष्णभक्तिकाव्य (सन 1700 से 1900 तक)
5	लीला तिवारी	रामचरितमानस के उपमान
6	शान्तारानी	हिन्दी-नाटकों में हास्य-तत्त्व
7	रविशंकर अग्रवाल	करेक्टर टाइप्स आव हिन्दी ड्रामा-क्लसीफिकेशन एल्यूसिडेशन एण्ड डेवलपमेण्ट
8	रामलखन पाण्डेय	तुलसीदास पूर्व हिन्दी राम साहित्य
9	भवानीदत्त उप्रेती	नन्ददास जीवन और कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन
10	रामकिशोर मौर्य	जान कवि के प्रेमाख्यानों का आलोचनात्मक अध्ययन
11	सूर्यदेवसिंह प्रभाकर	भानुभक्त की रामायण और गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस में निहित सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन
12	उषा सक्सेना	हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास
13	विमलेशकान्ति वर्मा	भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्त्व
14	प्रेममोहिनी सिन्हा	आधुनिक हिन्दी-काव्यों में नायक निरूपण
15	सूर्यनारायण पाण्डे	पृथ्वीराज रासो की शब्दावली का सांस्कृतिक अध्ययन
16	गणपति भट्ट	राष्ट्रीय आन्दोलन के सन्दर्भ में हिन्दी और कन्नड उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन
17	भगवतप्रसाद दुबे	कबीर का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
18	ओमप्रकाश सक्सेना	गुजराती हस्तलिखित पत्र-सग्रहों का अध्ययन
19	रक्षा भल्ला	प्रेमचन्द में व्यक्ति और समाज

38	गोविन्दजी	हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों मे इतिहास-तत्त्व का प्रयोग
39	शल्कुमारी अग्रवाल	हिन्दी उपन्यासो म कल्पना के बदलते हुए मानदण्डो का अध्ययन
40	मूल्शकर शर्मा	मिर्जापुर की आर्य बोलियो का वज्ञानिक अध्ययन
41	सवजीतराय	हिन्दी उपन्यासों मे आदशवाद
42	गिरिजासिंह	हिन्दी नाटको की शिल्पविधि
43	ससारदेवी	प्रेमचन्दोत्तर कथा (उपन्यास) के सास्कृतिक स्रोत
44	राधादवी श्रीवास्तव	मैथिलीशरण गुप्त की काव्यभाषा का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
45	योगेन्द्रसिंह	चरनदास का व्यक्तित्व और कृतित्व
46	सुरेशचन्द्र मिश्र	कबीर पन्थ और दरिया पन्थ (बिहार) का तुलनात्मक अध्ययन
47	सिद्धनाथ पाण्डेय	अपभ्रश के आख्यानक काव्य और उनका हिन्दी के आख्यानक काव्यो पर प्रभाव
48	विद्याधर	जायसी साहित्य मे अप्रस्तुत योजना
49	माधुरी पुरी	कबीरदास शब्दावली का सास्कृतिक अध्ययन
50	शीतलाप्रसाद मिश्र	हिन्दी मध्ययुगीन भक्तिकाव्य म पौराणिक सन्दर्भों का अध्ययन
51	मीरा जायसवाल	विद्यापति काव्य का सास्कृतिक अनुशीलन
52	रामकृपाल पाण्डेय	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के साहित्य सिद्धान्त
53	किशारीलाल	प्रेमचन्द कथा-साहित्य म शहरी जीवन
54	सुरेन्द्रनाथ आनन्द	हिन्दी मे अनूदित उपन्यास और उनके साहित्यिक अभिरुचि के विकास पर प्रभाव
55	माया अग्रवाल	उन्नीसवी शताब्दी का कृष्णभक्ति साहित्य
56	गीता गुप्ता	पारसी नाटक
57	लक्ष्मणसिंह विष्ट	प्रेमचन्द-पूव के कथाकार और उनका युग

शोध उपाधिप्राप्त विषयों की सूची

आगरा विश्वविद्यालय (सन् 1962 से आगे)

डी० लिट०

1	डा० कैलाशचन्द्र भाटिया	हिन्दी भाषा म अक्षर तथा शब्द की सीमा
2	डा० ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव	हिन्दी वाक्य रचना
3	डा० एम० जाज	भक्ति आन्दोलन का समालोचनात्मक अध्ययन विशेषत हिन्दी तथा मलयालम साहित्य क सन्दभ म
4	डॉ० इन्दिरा जोशी	भारतीय उपन्यासा म वणनात्मक साम्य और उसका मूल्याकन
5	डॉ० श्रीराम शर्मा	दक्खिनी साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन

पी एच० डी० (हिन्दी)

1	कलाशचन्द्र भाटिया	हिन्दी म अंग्रेजी के आगत शब्दो का भाषा तात्त्विक अध्ययन)
2	चन्द्रभान रावत	मथुरा जिले की बोलियाँ (विवरणात्मक तथा तुलनात्मक अध्ययन
3	रवीन्द्रकुमार जन	कविवर बनारसीदास—जीवनी और कतित्व
4	रामबाबू शर्मा	15वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक हिन्दी साहित्य के काव्यरूपो का अध्ययन
5	श्रीमती विमला गौड	मीरों के साहित्य के मूलस्रोतो का अनुसधान
6	ब्रह्मानन्द	बँगला (भाषा और साहित्य) पर हिन्दी (भाषा और साहित्य) का प्रभाव
7	गगाप्रसाद पाठक	प्रेमचन्द और रमणलाल वसन्तलाल देसाई के उपन्यासो का तुलनात्मक अध्ययन
8	कु० इन्दिरा जोशी	हिन्दी उपन्यासो मे लोक तत्त्व
9	नटवरलाल अम्बालाल न्यास	गुजराती के कवियों की हिन्दी का-साहित्य को देन
10	श्रीमती सत्यवती महेन्द्र	हिन्दी नाममाला साहित्य
11	श्रीराम शर्मा	दक्खिनी का रूप विन्यास
12	श्रीमती सरोज अग्रवाल	प्रेमचन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा
13	हरिदत्त भट्ट (शलेश)	गढवाली का शब्द सामर्थ्य

14	श्रीमती चन्द्रकला त्यागी	बुलन्दशहर के संस्कार सम्बन्धी लोक-गीतों का मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग के आधार पर अध्ययन
15	महेन्द्रसागर प्रचण्डिया	हिन्दी का बारहमासा साहित्य (उसका इतिहास तथा अध्ययन)
16	कु० लक्ष्मी सक्सेना	सिंहासन बत्तीसी तथा उसकी हिन्दी-परम्परा का लोक-साहित्य की दृष्टि से अध्ययन
17	गोपीवल्लभ नेमा	रामानन्दी सम्प्रदाय के कुछ अज्ञात कवि और उनकी रचनाएँ
18	कु० सुशीला धीर	हिन्दी और गुजराती के निर्गुण सन्त-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
19	एम० जाज	तुलसीदास तथा मलयालम के रामभक्त भतृहरि कवि उयुतच्छन का तुलनात्मक अध्ययन
20	सत्यकाम	भतृहरि वाक्यपदीय का भाषातात्त्विक अध्ययन
21	नरेन्द्रकुमार सिन्हा	हकलाने से सम्बन्धित दोषों का भाषातात्त्विक अध्ययन
22	के० एस० मणि	मैथिलीशरण गुप्त और वल्लतोल का तुलनात्मक अध्ययन
23	जयकृष्ण	हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों का आलोचनात्मक अध्ययन
24	प्राणनाथ तृछल	कश्मीरी भाषा का वर्णनात्मक व्याकरण
25	कु० सरोजिनी शर्मा	हिन्दी तथा गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन
26	कणराजशेषगिरिराव	आन्ध्र के लोकगीत
27	एन० एस० दक्षिणामूर्ति	सूरदास और पोतना का तुलनात्मक अध्ययन
28	श्रीमती विद्या टोपा	भारतीय महाकाव्यों की परम्परा में कामायनी
29	श्रीमती जयकिशोरी शिवपुरी	गृहजीवन सम्बन्धी कश्मीरी शब्दावली
30	कु० स्वर्णकान्ता	मेरठ जनपद के संस्कार विषयक लोकगीत
31	श्रीमती ललितासिंह	हिन्दी क्षेत्रीय लोक-कथाओं के कथा-मानक रूप तथा अभिप्राय

32	[illegible] भारद्वाज	हरियाणा की सांस्कृतिक शब्दावली का अध्ययन
33	[illegible]नारायणसिंह	[illegible] की पाँच विकास परक रचनाओं का [illegible]
34	श्रीकृष्ण वार्ष्णेय	मध्यकाल कामकल्पना की परम्परा का अध्ययन
35	श्रीमती आशा शर्मा	ब्रजभाषा की कहानियों का अध्ययन
36	श्री बी० एम० चिन्तामणि	ऐतिहासिक उपन्यासों का और उस सम्बन्ध म विशेषकर हिन्दी म लिखे गए इसी जाति के उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन
37	उमापतिराय चन्देल	मध्ययुगीन हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानक काव्य म पौराणिक आख्यान (1400-1700 ई०)
38	रामावतार शर्मा	हिन्दी साहित्य के विकास म हिन्दी पत्रकारिता का योगदान (सन् 1900)
39	राजेन्द्रसिंह कुशवाहा	अपभ्रंश के आधार पर तत्कालीन समाज एव संस्कृति का अध्ययन
40	के० वी० वी० एल० नरसिंहराव	तेलुगु और हिन्दी लोकोक्तियों का तुलनात्मक एव भाषावैज्ञानिक अध्ययन
41	रामजीवन	हिन्दी साहित्य म प्रयुक्त मुहावरों का तुलनात्मक अध्ययन
42	गोविन्दप्रसाद शर्मा	हिन्दी का फागु और वसन्त-काव्य
43	सरला गोस्वामी	राधावल्लभी सम्प्रदाय के हिन्दी-साहित्य में रस की स्थिति और उसकी भाषा
44	श्रीमती प्रकाश माथुर	हिन्दी म भक्तमाल तथा परिचयी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन
45	शिवराज हेलिखेडे	हिन्दी और मराठी के आधुनिक काव्य म हास्य रस का तुलनात्मक अध्ययन
46	श्रीमती राजकुमारी बुद्धिराजा	देव के काव्य मे अभिव्यक्ति विधान
47	तपेशकुमार चतुर्वेदी	रीतिकाल के हिन्दी लक्षण ग्रन्थो तथा 17वी-18वी शती के आंग्ल-नव्यशास्त्रीय समीक्षा-ग्रन्थो का तुलनात्मक अध्ययन
48	न० वी० राजगोपालन	तमिल और हिन्दी के काव्यशास्त्रो का तुलनात्मक अध्ययन

49	रामबाबू सारस्वत	कहानीकार प्रेमचन्द तथा पन्नालाल पटेल का तुलनात्मक अध्ययन
50	कु० मालती टंडन	हिन्दी साहित्यिक नाटकों के रेडियो रूपान्तरों का शिल्प विधान
51	शंकरसिंह तोमर	आचार्य चतुरसेन शास्त्री और कन्हैयालाल मुंशी के औपन्यासिक कृतित्व का तुलनात्मक अध्ययन
52	ओंकारनाथ कौल	कश्मीरी और हिन्दी रामकथा-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
53	श्रीमती शशिप्रभा जैन	सतसई परम्परा की पृष्ठभूमि में गाथा सप्तशती और बिहारी सतसई का तुलनात्मक अध्ययन
54	परमात्माप्रसाद माथुर	उत्तर प्रदेश के हिन्दी साहित्य और लोक-साहित्य में भरत
55	कु० शिवरानी गर्ग	हिन्दी के ऐतिहासिक चरित-काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन (12वीं से 15वीं शताब्दी ई० तक)
56	कु० सुधा नौटियाल (श्रीमती सुधा चन्दोला)	हिन्दी क्षेत्र के लोक साहित्य में देवी
57	श्रीमती सरोज पाण्डेय	हिन्दी सूफी-काव्य में प्रतीक योजना
58	शारदाकुमारी	नन्ददास की भाषा
59	सुरेशचन्द्र त्यागी	छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन
60	श्रीमती कान्ता शर्मा	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब योजना
61	श्रीमती कमला शर्मा	कुतबन कृत 'मृगावती' की भाषा का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
62	श्री मन्नलाल शर्मा	हिन्दी गद्य साहित्य में लोकोक्तियां और मुहावरे

पी एच० डी० (भाषाविज्ञान)

1	देवीशंकर द्विवेदी	बैसवाड़ी शब्द सामर्थ्य
2	मोहनलाल शर्मा	खुरपल्टी (पदरूपांश तथा वाक्य)
3	मुरारीलाल उप्रेति	हिन्दी में प्रत्यय विचार
4	रमेशचन्द्र जैन	हिन्दी समास रचना का अध्ययन
5	रमानाथ सहाय	पाली क्रिया धातुओं का अध्ययन

6	शशिशेखर तिवारी	भोजपुरी लोकोक्तियों का अध्ययन
7	कु० पुष्पलता	हिन्दी रेडियो नाटकों का शैली-तात्विक अध्ययन
8	अरविन्द कुलश्रेष्ठ	आगरे के लोक-साहित्य का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
9	श्रीप्रकाश कुल	सहारनपुर जिले के स्थान-नामों का सामाजिक भाषाशास्त्रीय अध्ययन
10	सुरेन्द्र कुलश्रेष्ठ	आधुनिक हिन्दी तथा तमिल की समान शब्दावली का अध्ययन
11	जगदीशप्रसाद गुप्त	बांगरू में सामाजिक स्तरों तथा सम्बन्धों की भाषात्मक अभिव्यक्ति (जिला रोहतक के आधार पर)
12	श्यामलाल शर्मा	हमीरपुर तहसील में बोली जाने वाली कांगड़ा घाटी की बोली का वर्णनात्मक अध्ययन
13	जे० पार्थसारथि	आधुनिक तमिल और हिन्दी के व्याकरणिक गठन का तुलनात्मक अध्ययन
14	लक्ष्मीनारायण शर्मा	ब्रज के स्थान-अभिधानों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन
15	लक्ष्मीनारायण मित्तल	हिन्दी में संधि (हिन्दी में संधि संक्रमण तथा सम्बद्ध भाषण में होने वाले ध्वनि परिवर्तनों का यन्त्रीय सहायता सहित अध्ययन)
16	राजेन्द्रकुमार गढ़वालिया	चन्दायन की भाषा
17	जनार्दनसिंह	तुलसी की अवधी भाषातात्विक अध्ययन
18	विश्वजीत नारायण श्रीवास्तव	हिन्दी पदबन्धों का रचनात्मक अध्ययन
19	रामप्रकाश सक्सेना	बदायूं जनपद की बोली का एककालिक अध्ययन
20	रमानाथ सहाय	ए डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल स्टडी ऑफ हिन्दी वर्ब रूप

मगध विश्वविद्यालय

1	गनौरी महतो	रामचरितमानस—नानापुराणनिगमागम सम्मतम्

REFERENCE BOOKS—सन्दर्भ ग्रन्थ

English

1	Beams	Comparative Grammer of Aryan Languages of India
2	Jenker	Field work—An Introduction to the Social Science
3	Hyman	Interviewing Social Science
4	Katre	Introduction to Texual Criticism
5	Grierson	Linguistic Survey of India (Part I & VII)
6	Weber M	Methodology of Social Science
7	Marguret Staney	Method of Social Research
8	Hutt	Methods in Social Research
9	,	Proceedings of Twenty Sixth—International Congress of Orintatists (Vol I)
10	John W Best	Research in Education
11	Moser C A	Survey Methods Social Investigation
12.	Vishvanath Prasad	Survey of Manubhumi
13	Monlv	The Science of Educational Research

हिन्दी

1	डॉ० सत्येन्द्र	अनुसधान
2	सपादक श्रीमती सावित्री सिन्हा	अनुसन्धान की प्रक्रिया
3	स० नरेन्द्र धीर	अन्तर्राष्ट्रीय लोकयानी अनुसन्धाता
4	स० विश्वनाथप्रसाद	अनुसन्धान के मूल तत्त्व
5	कन्हैयासिह	पाठ सम्पादन के सिद्धान्त
6	अनु० उदयनारायण तिवारी	भारतीय पाठालोचन की भूमिका
7	ओमप्रकाश वर्मा	सामाजिक अनुसन्धान
8	डा० उदयभानुसिह	हिन्दी के स्वीकृत शोध प्रबन्ध